❀ श्रीश्रीराधामाधवौ जयति ❀

श्रीश्रीशुकदूतमहाकाव्यम्

श्रीश्रीगीतगोविन्दकाव्यकर्त्तृ-कविमुकुटमणि-
रसिकाचार्य्यश्रीश्रीजयदेवगोस्वामिवंशोद्भवेन,
श्रीश्रीमहाप्रभुगौरांगदेववीथिपथिकेन, श्री-
नित्यानन्दप्रभुशिष्यश्रीरामरायगोस्वामि-
कृपालब्धकाव्यशक्तिकेन, भागवतचन्द्रे-
त्युपाधिना परिभूषितेन महाकविना
श्रीनन्दकिशोरगोस्वामिना
विरचितम् ।

अर्थ-सहायक—

श्रीमती श्रीसरस्वती[illegible]जी रानीसाहिबा (मुंगेर)

♣

तृतीया
[२०१८
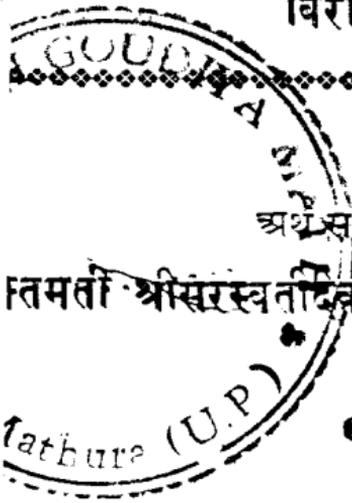
प्रकाशक—
कृष्णदासबाबा,
कुसुमसरोवर निवासी (मथुरा)

समर्पण पत्रम्

★

परमभक्त प्रवर, श्रीश्रीगौराङ्ग महाप्रभु-चरणैकनिष्ठ, नित्यधामप्राप्त, राजा श्री-रघुनन्दनदेव, मुंगेर के पुनीत स्मरणार्थ यह 'शुकदूतमहाकाव्य' प्रस्तुत होकर समर्पित है।

❀ श्रीश्रीराधामाधवो जयति ❀

* श्रीश्रीशुकदूतमहाकाव्यम् *

* श्रीश्रीगीतगोविन्दकाव्यकर्त्ता श्रीश्रीजयदेवगोस्वामि- *
* प्रभुवंशोद्भवेन, श्रीश्रीनित्यानन्दप्रभुशिष्यप्रवर- *
* श्रीरामरायगोस्वामिकृपाशक्तिलब्ध-काव्यश *
* क्तिकेन, भागवतचन्द्रेत्युपाधिना- परिभू *
* षितेन महाकविना- श्रीनन्दकिशोर *
❀ चन्द्रजीगोस्वामि महोदयेन ❀
❀ विरचितमिदं ❀

झूलनतृतीया
सम्बत् २०१७

प्रकाशक—
कृष्णदास
[कुसुमसरोवरवाले]

प्राक्कथनम्

माध्वगौडेश्वरसम्प्रदाये हंसदूतोद्धवसन्देशपदाङ्कदूतशुक-दूताख्यानि चत्वारि काव्यानि सन्ति। हंसदूतं उद्धवसन्देशश्च श्रीरूपगोस्वामिभिः निर्मितं, पदाङ्कदूतं श्रीकृष्णदेवसार्वभौम-विरचितं च वर्तन्ते। शुकदूताख्यं महाकाव्यं तु श्रीजयदेवपरंपरायां प्रादुर्भूतैः नित्यानन्दप्रभोः शिष्यप्रवरैः परमश्रद्धेयश्रीरामराय-गोस्वामिवंशगतश्रीनन्दकिशोरगोस्वामिभिः कृतं वर्तते।

ग्रन्थेऽस्मिन् श्रीकृष्णस्य ब्रजजनविरहशान्त्यर्थं द्वारिकातः शुकं दूतरूपेण प्रेषणं कालिदासनिर्मितं मेघदूतकाव्ये मेघ-बत्वर्तते। शुकः ब्रजजनान् शान्तिं दत्वा पुनः द्वारिकां प्रति अगमत् तथा श्रीकृष्णाय ब्रजवासिदशावर्णनं च कृतवान्। एतत् श्रुत्वा श्री कृष्णः ब्रजं प्रति आजगाम अस्य वर्णनं पद्म-पुराणे वर्तते,श्रीरूपगोस्वामिभिः स्वग्रन्थलघुभागवतामृताख्ये ईदृशं एव सिद्धान्तं कृतं। श्रीजीवगोस्वामिना 'गोपालचम्पू' ग्रन्थस्य उत्तरभागे श्रीकृष्णस्य ब्रजागमनं, तत्रमासद्वयपर्यन्तनिवासं, राधिकया सह विवाहसस्करणं च वर्णितं अस्ति। अस्यैव प्रभावस्य रूपेण ब्रजभाषाकवि यथा चाचा बृन्दावनदास महोदये 'लाड-सागर' ग्रन्थे जीवगोस्वामिनः 'गोपालचम्पू'' एव आश्रयरूपेण गृहीत्वा अस्य सरस वर्णनं कृतं। ब्रजप्रदेशे राधिकया सह श्री-कृष्णस्य पाणिग्रहणं अत्रैव सिद्ध्यति किन्तु ब्रजलीलायां न कस्मिन्नपि आर्षग्रन्थे अस्य प्रमाणं लभते। यदा कृष्णयज्ञोपवीतं द्वारिकायां अभूत् तदन्तर एव विवाहक्रिया सम्भवता।

अतः द्वारिकातः ब्रजागमनं तत्रैव कृष्णविवाहसंस्कारं ब्रज-जनान् नित्यधामबृन्दावने (अप्रकटगोलोकधाम्नि) प्रेषयित्वा पुनः द्वारिकां प्रति आगमनं च कृतं। कथितञ्च ग्रन्थकारैः परिशिष्टे—

पाद्मे यद्यपि वर्णितं मधुरिपोर्गोष्ठंप्रयाणं पुनः
श्रीमद् भागवते च पेशलतया संकेतितं तत्स्थले।
व्याख्यातं च तदेव तत्र रसिकैः श्रीरामरायाभिधैः
काव्येऽस्मिन कथितं मया तु विपुलं तत्तत् कृपातः पुमः॥

निवेदकः— केशव देव शर्मा एम० ए०, शास्त्री (मथुरा)

★ भूमिका ★

श्री मन्माध्वमतमार्तण्ड, गौरचरणानुरागी श्री नन्दकिशोर चन्द्र गोस्वामी का प्रादुर्भाव मार्ग शीर्ष शुक्ला पञ्चमी को श्रीधाम बृन्दावन में हुआ था। आपके पिता का नाम गोस्वामी चुन्नीलाल जी एवं माता का नाम सौ० देवकी जी था। आप गीतगोविन्दकर्त्ता जयदेव कवि से २४ वीं पीढ़ी एवं आदिवाणी कार रामराय प्रभु से ११ वीं पीढ़ी में अवतरित हुए। प्रस्तुत शुकदूत महाकाव्य के मंगला चरण में आपने लिखा है—

स जयति जयदेवो यस्य गोविन्द गीतं।
मधुरसरसगीतं येन केनाप्यधीतं॥
अनुभवनवनीतं सर्वदा तेन नीतं।
न भवति विपरीतं राधिकामाधवीतम्॥

उन श्री जयदेव महाप्रभु की सर्वदा जय हो जिन्होंने मधुर एवं सरस पदावली से युक्त गीत गोविन्द काव्य की रचना की। यथार्थ में जिस किसी ने उस रमणीय काव्य का अध्ययन किया है उसने अनुभव-रूप नवनीत का स्वाद पाया है अधिक क्या कहें-श्री राधामाधव जी उससे क्षणभर भी अन्यथा नहीं होते।

इन्हीं जगत विदित जयदेव कवि की वंश परम्परा में श्री गौरचरणानुगत श्री रामराय गोस्वामी जी का जन्म हुआ था। इन्होंने ब्रह्मसूत्र पर 'गौरविनोदिनी' बृत्ति लिखी जो प्रकाशित हो चुकी है। श्री राधा माधव जी की अन्यन्य भावना एवं सेवा विधान को स्पष्ट करने के लिए ही आपने 'श्री श्री आदिवाणी जी' की रचना की थी। एकाध लेखक ने इन्हें वल्लभ सम्प्रदाय

में घसीटने का प्रयत्न किया हैं जो सर्वदा निराधार है। प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता कवि ने उनके सम्बन्ध में इस प्रकार श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है।

प्रियतमगुणगानं गौरगीतप्रधानं।
विरचित हरिमानं स्वादिवाणीविधानम्।
अभिनवरसपानं साधुसंसेव्यमानं।
प्रणमत कुलजास्तं रामरायाभिधानम्॥

स्वयं श्री रामराय जी भी अपने दीक्षा गुरु का परिचय देते हुए आदिवाणी में लिखते हैं—

आजु मोहि नित्यानन्द मिले।
हृदय सरोवर तरल तरंगित रवि सौ पंकज खिले॥
श्री गौर गोपाल तात तत्व नीकौ सुनत भ्रम भयविले।
श्री रामराय प्रभु के द्वादश शिष्य हूँ गुरु संग चलत प्रेम किले॥

श्री नाथ जी के अधिकारी अष्टछापवर्ती कवि कृष्णदास ने भी लिखा है।

परम रसिक जन मंगल छाये।
नित्यानन्द महाप्रभु पद रज शिष्य प्रसिद्ध जगत हितु आये॥

श्री जीव गोस्वामी ने तोषिणी में रामराय जी की वन्दना करते हुए लिखते हैं।

वन्दे श्री परमानन्दँमहाचार्यरसालयम्।
रामरायं तथा वाणी विलासञ्चोपदेशकम्-

उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट विदित है कि प्रस्तुत ग्रन्थ कर्ता के पूर्वजों में श्री जयदेव और श्री रामराय जी थे।

बत्तीस वर्ष की अल्पायु में ही आपने इस नश्वर देह का परित्याग कर दिया था। जीवन के इस अल्प काल में न केवल संस्कृत ग्रन्थों का प्रणयन किया अपितु हिन्दी भाषा में भी

स्फुट पद एवं बारह खड़ी आदि की रचना की। संस्कृत और हिन्दी के ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है।

१. शुकदूत महाकाव्य २. गौर प्रेमोल्लास ३. श्रीगोविन्द-गुणार्णव नाटक ४. राधा विहार चम्पू ५. श्री मद् भागवत् दर्पण ६. रासपञ्चाध्यायी (शिखरिणी छन्दों में) ७. यमुनाष्टक ८. राधा रमणाष्टक ६. गोविन्दाष्टक १०. संस्कृत द्वादश मास प्रबन्ध ११. हिन्दीमें भागवत पर बाल बोधनी टीका (ब्रज भाषा में)१२. बारह खड़ी महिमा १३. स्फुट पद रचना।

इन सम्पूर्ण ग्रन्थ रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस इस प्रकार है:— श्री गौर प्रेमोल्लास काव्य में लगभग १०० श्लोक हैं जिनमें श्री गौराङ्ग महाप्रभु की महिमा का चमत्कार पूर्ण ढंग से वर्णन किया गया है। गोविन्द गुणार्णव नाटक जिसमें इन्द्र के मान भंग की कथा का वर्णन है। राधा विहार चम्पू में श्री राधिका जी के साथ भगवान कृष्ण नित्य विहार करते हैं। श्रीमद् भागवत दर्पण में आपने भागवत के दुरूह एवं कठिन प्रसंगों पर श्लोकमय विवेचन किया है। रास पंचाध्यायी के ललित प्रसंगों को लेकर शिखरिणी छन्द में यह रचना सरस एवं अनोखी है। यमुनाष्टक, राधा रमणाष्टक, गोविन्दाष्टक इन तीनों अष्टकों की भाषा शैली अत्यन्त कर्ण प्रिय एवं भावा-नुकूल है। ठीक उसी प्रकार से संस्कृत द्वादश मास में बारहों महीनों का वर्णन अत्यन्त हृदयग्राही है।

आपने श्री मद् भागवत की व्रजभाषा में अद्वितीय टीका-की जिसके अनेक स्थल अभी तक 'वत वनई' के नाम से प्रसिद्ध है। इस टीका को बनाकर आपने कहा था कि जो कोई अपढ़ ब्रजवासी बालक इसको याद कर लेगा उसकी कथा–वार्ता तो सहज में हो जाया करेगी।

❀ शुकदूत ❀

आपकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। संस्कृत के दूत काव्यों की शृंखला में श्री कालिदास कृत मेघदूत सर्व प्रथम रचना है। लोकप्रियता ने ही अनेक परवर्ती कवियों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। परिणामतः हंस, चातक, कोकिल आदि को दूत बनाकर अनेक काव्यों का प्रणयन हुआ। यदि इस काव्य शृंखला का विवेचन किया जाय तो यह सिद्धान्त प्रतिपादित होगा कि एक ओर इन काव्यों में वियोग शृंगार का उत्कृष्ट वर्णन हुआ है तथा दूसरी ओर वियोग वर्णन के साथ अथवा स्वतंत्र रूप से भक्ति, ज्ञान एवं विवेक का तत्वमय विवेचन किया गया है। इस प्रकार की इन दो धाराओं का शुकदूत महाकाव्य में समन्वय है। भक्ति मार्ग के अनुसार भाव, कुभाव, आलस्य में होते हुए भी श्री कृष्ण गुणानुवाद गाने से ही इस जीव का उद्धार हो सकता है। नाम, रूप, लीला, धाम भगवान की भक्ति के आधार भूत मार्ग हैं।

कथानक

काव्य की प्रस्तावना में कवि ने स्वयं लिखा है कि श्री-मद्भागवत में श्री ब्रजेन्द्रनन्दन की लीला का तीन प्रकार से निरूपण है गोकुल, मथुरा और द्वारिका उन तीनों लीलाओं को रसिक जीवों के सुख के लिए इस काव्य में एक स्वरूप से निरूपण करता हूँ? इससे यह प्रकट है कि कवि का मुख्य आधार श्री मद्भागवत ही है और यह स्वाभाविक भी है क्योंकि आप भागवत् के अद्वितीय वक्ता थे।

धीरललित नायक श्रीकृष्णचन्द्र द्वारिका पुरी में विद्य-मान हैं। आपके यहाँ किसी वैभव की कभी कमी नहीं है परन्तु श्री राधिका का स्मरण उनके हृदय को विगलित कर

देता है परिणामतः शरीर की सम्पूर्ण इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। विरह की इस चरमावस्था से चैतन्य होने पर अपने महल के स्वर्ण-पिञ्जरस्थित शुक को दूत बनाकर श्री राधिका के पास भेजा। पुनः शुक सन्देश प्राप्तकर भगवान् कृष्ण व्रज में पहुंचे। और वियोग पीड़ित समस्त व्रजवासियों को आनन्दित किया।

संपूर्ण कथानक ११ सर्ग में बिभक्त है। दूत काव्यों की शृङ्खला में यह प्रथम महाकाव्य है जिसमें महाकाव्य के समस्त लक्षणों का निर्बाह किया गया है। श्लोक संख्या लगभग १००० है। इसके पारायण से यह अनुभब होता है कि १६ वीं शताब्दी में सरस लक्षणों से युक्त ऐसी अन्य कोई रचना नहीं है।

शब्दों के औचित्य पूर्ण प्रयोग एवं हृदय की सच्ची अनुभूति से उसका जो सामञ्जस्य हुआ है वह वर बस गीत गोविन्द की भावमय कोमलकलितपदावली का स्मरण करा देता है।

विकचमुकलवाले सालवाले रसाले
कलयति कलमुच्चैः कोकिलानां कलापः ॥

उत्तर भाग को पढ़ने से वर्णनातीत आनन्द की प्राप्ति होती है। माधुर्य का निवेश, प्रसाद गुण की स्निग्धता, पदोंकी कोमल शय्या, अर्थ गाम्भीर्य, अलङ्कारों का मञ्जुल सामञ्जस्य सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। उपमा, यमक, अनुप्रास आदि अल-ङ्कारों का भव्य प्रयोग चार चांद लगा देता है।

यत्र तत्र सूक्तियों का प्रयोग भी द्रष्टव्य है। "ना नन्दयति गतरत्नवित्तं नरं पथि प्राप्य वराटिकेव"।

आपने इस काव्य में सन्देश वाहक शुक को बनाया गया है। आपके जीवन की घटनाओं से इसका सामञ्जस्य है। श्री शुकदेव मुनि ने आपश्री को दर्शन दिये थे। बाल्यावस्था में आप

अत्यन्त चंचल थे। श्री मदनमोहन जी के मन्दिरमें बंगाल के श्री मुखर्जी महाशयके समीपसे इन्हें विद्याध्ययनके लिए भेजा। परन्तु वे स्वयं भी नहीं पढ़ते थे और दूसरों के पढ़ने में बाधा करते थे। मं० जी ने यह बात इनके पिता को बताई जिससे इनके पिता को बड़ा क्रोध आया और इन्हें भर्त्सना दी। कोमल हृदय भावुक होने के कारण रोते हुए कालिय-हृद पर पहुंच गये। वहाँ साक्षात् शुकदेव जी ने सङ्कर्षणदास महात्मा के रूप में दर्शन दिये। उनका हाथ पकड़कर इनके पिता के पास लाकर कहा आपने इन्हें क्यों दुखी किया है? इनके पिताने कहा–"महाराज! जयदेव वंश में ऐसा कोई नहीं हुआ" महात्मा जी ने कहा यह सत्य है"तुम्हारे वंशमें ऐसा कोई नहीं हुआ!" यह कहकर आपके माथे पर मालाझोली रखकर आप अन्तर्ध्यान हो गये। उस दिन से आपने अखिल शास्त्रोंको कण्ठस्थ सुनाना प्रारम्भ कर दिया। पुन: श्री शुकदेवजी ने स्वप्न में आज्ञा दी कि मेरा स्वरूप-विग्रह कालीय हृदमें है। आप बालक थे। अत: अपने पितृत्व श्रीतुलसी दास जी (सन्त) से कहकर निकलवाया जो अद्यावधि विद्यमान है। उन्हीं की कृपा से श्री मद्भागवत के अद्वितीय वक्ता हुए। तत्कालीन राधारमण गोस्वामी श्रीसखालाल जी श्री-गोपीलाल जी आदि विद्वानों का यहाँ तक कथन है कि श्री नन्द-किशोर से पूर्व कथा कहने की क्या शैली थी? कोइ नहीं कह सकता। उपरोक्त सम्पूर्ण विचारोंका आधारभूत प्रमाण राधा रमणचरणैकशरणविद्यावारिधी श्री राधाचरण गोस्वामी द्वारा लिखित छप्पय से भी मिलता है।

श्री कालिय हृद निकट व्यास सुत दर्शन दीयो।
भाव अर्थ गंभीर प्रेम परि पूरण कीयो॥
करि प्रबन्ध कल्पना कथा की :प्रथा चलाई।

वशीकरण सम कियो चित्र श्रोता समुदाई ॥
भयौ न कोई होयगौ वक्ता त्रिभुवन रंध्रमा।
श्रीनन्दकिशोर पूरणकला भये भागवत चंद्रमा ॥

इन्हीं भागवत चन्द्रमा श्री नन्दकिशोर जी को काशी के समस्त विद्वानों ने उनके पांडित्य,शरीर सौष्ठव, बोलने की मधुरता, वस्त्रों के धारण की प्रणाली और वैभव को देखकर यह श्लोक भेंट किया:—

विद्यया वपुषा वाचा वस्त्रेण विभवेन च।
वकारैः पञ्चभि ब्र्रह्मन् शोभते भगवान् भवान्॥

आप स्वाभिमानी विद्वान थे। कालीय-हृद के ऊपर आपकी कथा को सुनकर दतिया नरेश श्रीविजयबहादुर सिंह ने अपने महल में कथा कराई जिसमें राजासाहबने सवालाख रुपया भेट किया और कहा "कहिये महाराज मेरे जैसा श्रोता आपको कहीं मिला" आपको यह बात सहन न हुई और पास में खड़े हुए अपने कुल पुरोहित को सम्पूर्ण धन का संकल्प कर दिया। तथा राजा को उत्तर दिया—"हमारे जैसा वक्ता भी देखा? आपके जीवन के अनेक प्रसंग विख्यात है स्थानाभाव के कारण संकेत मात्र कर दिया है।

अपने वंश की परम्परा को सुस्थिर रखने के लिए श्री बृन्दावन धाम में अपने पूर्वजों से सेवित श्रीराधामाधवजी के मन्दिर का निर्माण कर आचार्य कुल रीति से सेवा स्थापन की। उन्तीस वर्ष की आयु में आपके जीवन में ऐसी घटना घटी जिससे आपको चरम वैराग्य हो गया। अपने कनिष्ठ पुत्र श्रीसोहनलालजी के विवाह के अवसर पर अपने हाथ से उनकी पाग सम्हाल रहे थे। इसी बीच आपके दर्शन के लिए कुछ साधू आये और उन्होंने आकर महाराज श्री को साष्टाङ्ग

प्रणाम किया । आपने कहा—"यह उलटी गङ्गा कैसे ? महात्मा बोले कि आपकी कथा से ही यह वैराग्य हमें मिला है। ये शब्द सुनकर सम्भवतः भक्त-कवि के हृदय में अत्यन्त अधिक ग्लानि हुई होगी कि मेरी कथा सुनकर इन्होंने गृहस्थ छोड़ दिया और मैं उसी कीचड़ में फँसा हूँ। आगे उसी के परिणाम स्वरूप उस भयङ्कर गर्मी (अक्षय तृतीया) में घर का पूर्ण रूप से परित्यागकर रमनरेती में स्थित "राधामाधव वाटिका" में चले गये। उनसे घर लौट चलने के अनेक आग्रह किये परन्तु सब निष्फल गये। उन्होंने कहा—

अब हम लागी हरि सों डोर ।
कच्चौ रंग छाड दुनियां को रंग रंग्यो सरबोर ।
खिन्न भये कहा होय लाल जू जब जागे तब भोर ॥
श्री शुकदेव राधिकामाधव विनती कर अब जोर ।
श्री जयदेव कृपा सो पाई जह गति नन्दकिशोर ॥

और इस प्रकार अपने जीवन के अन्तिम तीन वर्ष तीव्र तम वैराग्य में व्यतीत किये। एक दिन रासलीला की कथा में यह श्लोक वर्णन करते मूर्छित हो गये—

वंशीशंसितहर्षिताव्रजवधूविस्तार श्चेतो हरे
नानावर्णशिखण्डखण्डरचितैर्मौलिं दधानोलिके ॥
कालिन्दीकमनीयकूलकलभक्रीड़ाकलाकोविदः ।
कोयं नूतननीलनीरदसमो मच्चितमाकर्षति ॥

और इस असार संसार का परित्याग कर निकुञ्ज धाम पधारे। आपकी निधन तिथि भाद्रपद कृष्ण पक्ष १० वीं सम्वत् १६१२ है। परन्तु यथार्थ में वे अद्यावधि हमारे मध्य में है। वे

रससिद्ध एवं पुण्यात्मा कवि धन्य है जिनकी यश-रूप काया में जरा-मरण का भय नहीं है।

जयन्ति ते सुकृतिनः रस सिद्धा कवीश्वरा।
नास्ति येशां यशः काये जरामरणजं भयम्॥

इस ग्रन्थ की रचना को शताब्दी से ऊपर हो चुका है इतने दीर्घकाल के उपरान्त आज इस रूप में यह आपके संमुख उपस्थित है। यह सब परम श्रद्धास्पद प्रातः वन्दनीय मेरे पूज्य पिता आचार्य श्री यमुनावल्लभ जी गोस्वामी की महती कृपा का फल है जिन्होंने पूर्वजों के इस कोष को अनेक संकटों में अत्यन्त श्रम से सम्हाल कर रक्खा। महाराज श्री नन्दकिशोर चन्द्र जी के सम्बन्ध का सम्पूर्ण विवरण आपकी कृपा से ही प्राप्त हुआ। अन्यथा जैसे और अनेकों ग्रन्थों के समान यह भी कीटादिकों का भक्ष्य हो जाता।

महाकवि श्री नन्दकिशोर चन्द्र जी के गौर प्रेमोल्लास, बारह खड़ी, संस्कृत द्वादश मास, बारह मासा आदि कई ग्रन्थों के प्रकाशन आपने बहुत दिन पूर्व कर दिया परन्तु श्री शुकदूत महा काव्य के प्रकाशन का अवसर ही न मिला। संयोग से गौरचरणानुरागी बाबा कृष्णदास जी कुसुम सरोवर वालों ने यह कार्य भार अपने ऊपर सम्हाला। उनके सम्बन्ध में कुछ कहना तो सूर्य को दीपक दिखाना है। विद्वत समाज इसका अवलोकन कर हमारी त्रुटियों की ओर ध्यान न देकर इसके काव्यमय महान गौरव युक्त रस का रसिक होकर रसास्वादन करेंगे ऐसी अभिलाषा है।

विनीत—

श्री नन्दकिशोर गोस्वामी के प्रपौत्र
आचार्य देवकीनन्दन गोस्वामी
एम० ए०, साहित्य रत्न

राधा माधव मन्दिर
१ कालीदह मार्ग
श्री धाम वृन्दावन.

पूर्वैर्यद्यपि वर्णितः कविजनैः सामान्यलोके रसो ।
नास्ति स्निग्धमिदं घृणास्पदतया वन्धप्रदत्वात्तथा ॥
अस्माभिस्तु रसस्वरूप सुभगः संसार मोक्षप्रदो ।
नित्योनित्य गुणः प्रियागुणवृते राधाधवः सेव्यते ॥

यद्यपि पूर्व कवियों के द्वारा रस की स्थिति सामान्य जनों में बतलाई गई है, परन्तु कवि कर्णपूर श्री रूप गोस्वामी ने इस मत को मनोहर नहीं बताया, क्यों कि साधारण लोग में निरन्तर विभवादी बैरूप्य जनित घृणादि उत्पन्न होती है जो कि वन्धन रूप माना जाता है । उनके मतानुयायी हम सब संसार मोक्षप्रद, नित्य स्वरूप, नित्य गुण विशिष्ट प्रियागण से परिवृत्त रसराज श्री राधिका माधव की सेवा करते हैं ।
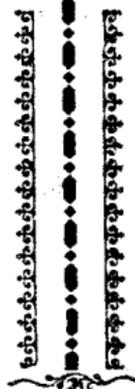
❀ श्रीराधाकुंजविहारिणे नमः ❀

श्रीमद्गोस्वामि श्रीनन्दकिशोरचन्द्रप्रभुप्रणीतं

श्रीशुकदूतमहाकाव्यं प्रारभ्यते

प्रथमः सर्गः

मालामालापलीलामधुरमुखरुचिर्वैजयन्तीं च विभ्रत्
पद्मापद्माभपाणिद्वयमृदुलदलस्पर्शसेवार्चितांघ्रिः ।
राजीराजीवनेत्रः स्फुरदमलरुचा मण्डयन् मण्डनानि
गोपीगोपीनकारी जयति रसनिधिः सुन्दरः कृष्णचन्द्रः ॥१॥

सन्देश सुधा

श्रीराधामाधव नमत श्री गौराङ्ग सरूप
'कृष्णदास' टीका लिखी सुधा सन्देश अनूप (१)

श्री पद्मावती जी के कोमल लाल कमल के समान दोनों श्री हस्तों की अंगुली दलों से संवाहनादि सेवा द्वारा सेव्य कोमल चरण कमल वाले, कमल-दल लोचन, अपने श्री अंग की शोभा से आभूषणों की शोभा बढ़ाने वाले, एवं दिव्य वैजयन्ती माला को पहिने हुए, गाने के समय मधुर मुख कान्ति युक्त, श्री गोपीजन के प्राण पोषक रससिन्धु सुन्दर श्रीकृष्णचन्द्र एवं श्रीजयदेव महाप्रभु की जय हो । (१)

वंशीचुम्बनचातुरीचपलदृक् हंसात्मजारोधसि
श्रीराधापदपद्ममत्तमधुपश्चाभीरनारीवृतः ।
रासश्रीलसितः सुरेशजयकृत् कन्दर्पसन्दर्पहा
बृन्दारण्यपुरन्दरोविजयते श्रीमाधवोधीरधीः ॥२॥

श्री यमुना तीर पर वंशी चुम्बन चातुरी से चपल नयन, श्री राधिका चरण कमलों के मतवाले मधुप, गोपाङ्गनाओं से परिवेष्टित रास लक्ष्मी से शोभित, इन्द्रविजयी कन्दर्पदर्पहारी बृन्दावन के पुरन्दर गंभीर बुद्धि वाले धीर ललित नायक श्री माधव लाल जी की जय हो। (२)

बृन्दारण्ये केलिकुञ्जाधिराजं,
रासक्रीडानित्यशोभासमाजम्।
कृष्णाकूले कल्पमूले विराजं
वन्दे राधामाधवं भावभाजम् ॥३॥

श्रीबृन्दावन केलि कुंज के मालिक, रासलीला की नित्य-शोभा के समुदाय, श्रीकालिन्दी कूल पर कल्प बृक्ष के मूल में विराजमान भाव मात्र से सेवित श्रीराधामाधव जी की वन्दना करता हूं। (३)

मंजुगुंजदलिपुंजवनस्रक्
कंजगञ्जनदृगञ्जनशोभः।
कुंजकुंजकृतखञ्जनलीलो
मद्हृदि स्फुरतु नीरदनीलः ॥४॥

मनोहर गुंजायमान भ्रमर पुंजों से वेष्टित वनमाला को धारण करने वाले, नील कमलों को गंजन करने वाले नेत्र अन्जन की शोभा वाले, कुंज २ में खंजन पक्षी की भाँति लीलाकारी अर्थात् सभी कुंजों में विहार करने वाले मेघ श्याम श्री कुंज विहारी लाल मेरे हृदय में प्रकाश करें। (४)

सजयति जयदेवोयस्यगोविन्दगीतं
मधुरसरसगीतं येन केनाप्यधीतम्।
अनुभवनवनीतं सर्वथा तेन नीतं
न भवति विपरीतं राधिका माधवी तम् ॥५॥

अत्र ग्रन्थकार निज पूर्व पुरुष 'रसिकाचार्य श्री जयदेव महाप्रभु का गुण गान करते हैं ।

जिनका गीत गोविन्द काव्य जगत् प्रसिद्ध है उसे कौन नहीं जानता है जो मधुर सरस गानावली से परिपूर्ण है । जिसने उस काव्य का अध्ययन किया है उसने सर्वथा अनुभव रूप नव-नीत (मक्खन) का स्वाद पद २ में पाया है । श्री राधा माधव जी उससे क्षण भर भी अन्यथा नही होते हैं, उन श्री जयदेव महाप्रभु की सदा जय हो । (५)

नित्यानन्दरसार्णवं स्वचरितै रद्वैत भावास्पदं ।
रामानन्दयुतं सनातनपदं रूपेण विभ्राजितम ॥
लीलालोलगदाधरं करुणया तं श्रीनिवासास्पदं ।
नित्यसिद्ध हरिप्रयाभिलसितं गौरं च कृष्णं भजे ॥६॥

निज मनोहर चरित्रों द्वारा प्रभुवर श्री नित्यानन्द चन्द्र के रस सागर स्वरूप अद्वैत प्रभु के भावों के आधार, श्रीरामानंद राय के साथ श्री सनातन गोस्वामी जी के आश्रय स्थान, श्री रूप गोस्वामी जी के सहित विराजमान, अपनी मधुर लीलाओं से श्री गदाधर पण्डित गोस्वामी को चंचल करने वाले करुणा मय श्री निवास पण्डित के आश्रय नित्य सिद्ध व्रजाङ्गनाओं के द्वारा अभिलषित श्री गौर कृष्ण का हम भजन करते है ।

(पक्षान्तर)

नित्य आनन्द रस सिन्धु अद्वैत स्वरूप, श्री बलदेव जी को आनन्द देने वाले नित्य रूप मनोहर असमोर्द्ध माधुरी परि पूरित लीला से चंचल गदा धारण करने वाले, दया मात्र से श्री लक्ष्मी जी के प्राण वल्लभ, गोपीजन से सेव्य श्री राधा गौर कान्ति मय श्री कृष्णचन्द्र की हम सेवा करते हैं । (६)

प्रियतमगुणगानं गौरगीतप्रधानं
विरचितहरिमानं स्वादिवाणीविधानम् ।
अभिनवरसपानं साधुसंसेव्यमानं
प्रणमत कुलजास्तं रामरायाभिधानम् ।।७।।

अपने अन्य प्रसिद्ध श्री रसिकाचार्य वंशोद्भव श्री योगिराज रामराय गोस्वामी जी का गुणानुवाद करते हैं ।

ब्रह्मसूत्र पर श्रीगौर विनोदिनी वृत्ति तथा श्री गौरगीता आदि ग्रन्थ हैं प्रधान जिनके—श्री राधामाधव जी के गुणगान "श्रीआदिवाणीजी" को ही मान देने वाले, "श्रीआदिवाणीजी" द्वारा श्री जी की सेवा का विधान करने वाले, अभिनव रस के पीने वाले साधुओं की सेवा करने वाले श्री रामराय गोस्वामी जी को हमारे कुलोद्भव प्रणाम करें । (७)

बहुविधभवबाधाक्षीणदीनैकबन्धु
र्निरतिशयसमानापारसौन्दर्यसिन्धुः ।
कृतप्रणतजनालीमानसाभीष्टपूर्ति
र्जयतु जयतु चित्राचन्द्रगोपालमूर्तिः ।।८।।

अनेक प्रकार की संसार बाधाओं से पीड़ित दीन जनों के एक मात्र सहायक, अत्यन्त असमान अपार सुन्दरता के सागर शरणागत जीवों के मनोरथ पूर्ण करने वाले श्री चित्रा सखी जी के अवतार श्री चन्द्र गोपाल प्रभु चरण की बार २ जय हो । (८)

ये गोविन्दगुणालिगीतजसुधास्वादेनपूर्णा दधुः
श्रीबृन्दावननाम्नि धाम्नि यमुनामध्यान्महाभूषणम् ।
राधामाधवरूपमद्भुतचमत्कारेण कण्ठप्रियं
तानारभ्य सुतातपादसहितान्नौमि स्ववंशोद्भवान् ।।९।।

जो श्री गीत गोविन्द रस पान की धुन में पूर्ण भक्ति से श्री बृन्दावन धाम में श्री यमुना के तीर धीर समीर में श्री-राधा माधव जी के स्वरूप को अद्भुत चमत्कार से प्राप्त कर गये उन प्रभुवर श्रीजयदेव जी से लेकर अपने पिता श्री चुन्नीलाल जी गोस्वामी प्रभु पर्यन्त अपने पूर्वजों को नमस्कार करता हूं। (९)

हृदयसरसि यस्य प्रेमपानीयपूर्णे
विलसति हरिलीलाराजहंसी सदैव ।
कठिनतरभवाग्निव्याकुलैकावलंब:
स दिशतु कुशलं श्रीव्यासवंशावतंस: ॥१०॥

अब श्री शुकदेवजी की प्रार्थना करते हैं जिनकी प्रसन्नता के लिये इस महाकाव्य का निर्माण किया है ।

प्रेम जल से परिपूर्ण जिनके हृदय सरोवर में श्री हरि कथा रूपी राजहंसी सदैव विलास करती है, जो कठिनतर भवाग्नि के द्वारा व्याकुल जीवों के एक मात्र अवलम्ब हैं, वे श्री व्यासवंश भूषण श्री शुकदेव जी हमको श्री कृष्णलीला कथन में कौशल प्रदान करें। (१०)

चिरं चान्द्रीधाराधवलितधरामण्डलधनं
वनं बृन्दादेव्या नवलनलिनं चाकलयती ।
स्थली लावण्यानां रसिकरसकल्लोलतरला
सुशीला राधामाधव ललितलीला विजयते ॥११॥

बहुत समय चन्द्रमा की प्रकाश धारा से शुभ्र, भू मण्डल के धन श्री बृन्दावन को नवीन केलि कमलों से पूर्ण करती, सौन्दर्यों की स्थली रसिकों की रस तरंगों से तरल परम सुन्दरी श्रीराधा माधव जी की ललित लीला विजय को प्राप्त हो। (११)

प्रस्तावना

यथाकथंचिद्गुणकीर्तनं हरेः, करोति जीवाघतमोनिवर्तनम् ।
महज्जनाम्रे डितमीदृशात्मकं श्रुत्वा प्रवृतोस्मि दुरन्तसाहसे ॥१२॥

श्री कृष्ण का गुण कीर्तन किसी भी प्रकार से किया हुआ जीवों के पापों का प्रायश्चित करता है। इसलिये महज्जनों से वार २ सुनकर दुरन्त साहस श्री कृष्ण चरित्र में प्रवृत्त हुआ हूं। (१२)

विलासलीलाम्बुनिधिः क्व कृष्णः
फणीन्द्रगीता क्व कथास्तदीया ।
क्व मे मतिस्तुच्छतरा नरस्य
हठस्तथाप्यर्भकवन्ममायम् ॥१३॥

विलास लीला सिन्धु श्री कृष्णचन्द्र कहां, शेष जी के द्वारा गाई गई उनकी कथा कहां, और मुझ मानव की तुच्छतर मति कहां, किन्तु मेरा यह श्री कृष्ण चरित्र वर्णन करने का हठ बालकों की भाँति जानना। (१३)

बिनिःसृतं बालमुखाद्यथावचः
करोति शृण्वज्जनकर्णकौतुकम् ।
तथा ममेयं सरसा सरस्वती
विवेकिनां चित्तहरा भविष्यति ॥१४॥

जिस प्रकार बालक की तोतली बोली सुनने वालों के कानों में कौतूहल करती है वैसे ही मेरी यह रसमयी वाणी विवेकियों के चित्त को चुराने वाली होगी। (१४)

गोकुले मथुरायां च द्वारवत्यां ततः क्रमात् ।
कृष्णलीलास्त्रिधा प्रोक्तास्ता एकीकुरुते जनः ॥१५॥

श्री मद्भागवत् में ब्रजराज कुमार की लीला तीन प्रकार से निरूपण की हैं गोकुल मथुरा तथा श्री द्वारिका की, उन तीनों लीलाओं को रसिक जीवों के सुख के लिये इस काव्य में एक स्वरूप से निरूपण करता हूं। (१५)

कथारम्भः

कामक्रीडासमुदयसुखे काञ्चनीये निशान्ते
माणिक्यानां रुचिररुचिभिः सुन्दरे सन्निविष्टः
श्रीवैदर्भीप्रभृतिमहिषीबृन्दसेवाश्रयोपि
श्रीराधायाः स्मरणविवशः पातु वो द्वारकेशः ॥१६॥

काम क्रीड़ाओं का सुख जहाँ उदय होता है ऐसे माणिक्यों की मनोहर कान्तियों से सुन्दर कनक भवन में विराजमान तथा श्री रुक्मिणी प्रभृति पटरानियों से सेवा किये हुए भी श्री राधा रानी के स्मरण में विह्वल श्री द्वारकाधीश तुम्हारी रक्षा करें। (यहाँ श्री बृषभानु नन्दिनी का सौभाग्य आधिक्य दिखलाया है। (१६)

अमन्दबृन्दारकबृन्दवन्दितः
प्रमोदमूर्तिर्निगमाभिनन्दितः ।
दरस्मितोल्लासिमुखेन्दुमण्डलः
कपोलखेलत्कमनीयकुण्डलः । १७॥

सम्पूर्ण देव बृन्दों से वन्दित, आनन्द मूर्ति, वेदों से स्तुति किये मन्द मुसकान से सुन्दर मुखचन्द्र मण्डल तथा कपोलों पर खेल रहे है कमनीय कुण्डल जिनके। (१७)

रसेश्वरः खंजनलोललोचनो
मणिप्रभास्वद्वलभीविराजिते ।
श्रीद्वारकायामणिमन्दिरोपरि
प्रभासमानो ददृशे पुरीं हरिः ॥१८॥

खंजन पक्षी के समान चंचल लोचन, मणिकान्तियों से शोभित छत्तों वाले श्री द्वारकापुरी के मणि मन्दिर के ऊपर विराजमान, रसराज श्रीकृष्णचन्द्र पुरी का निरीक्षण करने लगे। (१८)

(अथपुरीवर्णनम्)

विचित्रचित्रचित्रितां पतत्पतत्रिपत्रिताम्।
सुवर्णवर्णवर्णितां सुपर्णपर्णरक्षिताम्॥
नितम्बचन्द्रविम्बितां चकोरचञ्चुचुम्बिताम्।
विमानयानमानितां वितानमाननान्विताम्॥
निशान्तकान्तचत्वरां तुरङ्गकर्तृकत्वराम्।
मणीन्द्रमंजुमन्दिरां सुमार्गखेलदिन्दिराम्॥
विचित्रविद्रुमद्रुमां प्रभातमन्द्रचन्द्रमाम्।
महत्सभासभाजितां सुरासुरासराजिताम्॥
मुनीश्वरैर्नमस्कृतां परिच्छदैः सुसंस्कृताम्।
सुवर्णशृंगशोभितां समस्तलोकलोभिताम्॥
उशीरनीरवासिताङ्गनामुखप्रकाशिताम्।
चलत्सुकेतुमण्डितां भवाप्ययेप्यखण्डिताम्॥१९॥

(सन्देश सुधा)

अब श्रीद्वारका पुरी का एकादश श्लोकों से वर्णन करते हैं। विचित्र चित्रों से परिचित्रित चारो तरफ से आये हुए पक्षियों से पटी हुई सुवर्ण की बनी हुई गरुड जी से सुरक्षित चारों ओर चन्द्रशालाओं से जगर मगर कर रही चकोरों के चञ्चु पुटों से—चन्द्रशालाओं में चुम्बित, उड़ते हुए विमानों से वितान (सामयानो) जैसे तने हुए है। महलों में मनोहर आंगन हैं, घोड़ाओं के दौड़ने से मानों नगरी के गमन का परिचय होता है।

यानी पुरी जड़ नहीं चैतन्य रूपा है, इन्द्र नीलमणि के मन्दिरों से मन को हरती है मार्गों में अनेक रूप धारण कर श्री लक्ष्मीजी खेलती रहती है। प्रवाल (मूंगे) के विलक्षण वृक्ष हैं सुन्दरता चन्द्र प्रभा को तिरस्कार करती है। महात्माओं की मण्डली की अद्भुत शोभा जहाँ है चारों ओर देवताओं के नृत्य-गान से शोभित है। मुनीश्वरों से नमस्कार की हुई अनेक अलंकारों से विभूसित अथवा अष्टसिद्धियों द्वारा स्वच्छ बनाई हुई। बड़ी २ सुवर्ण शिखर जग मगा रही हैं अखण्ड ब्रह्माण्ड के जीव जहाँ रहने के लिये लालच करते हैं, चारों ओर खस के जल का छिड़काव हो रहा है सुन्दरियों के मुखों का प्रतिबिम्ब मार्ग २ में शोभित है। हरी पीली लाल गुलाबी ध्वजाओं से मन्दिर २ मंडित हैं। जिस नगरी में निवास करने से अखंड सुख की प्राप्ति होती है—क्योंकि वह श्रीकृष्ण की द्वारका पुरी प्रलय में भी नहीं बिगड़ती अर्थात् नित्यानन्दमयी है। (१९)

रंभास्तंभावलिविलसितद्वारिविन्यस्तकुंभां।
बन्याधन्यामलपरिसरां लोकपालैकमान्याम् ॥
दुष्टादृष्टामनिलशिशिरस्पन्दनानन्दजुष्टां।
पारावाराभिलसिततटां कर्णपीयूषमिष्टाम् ॥२०॥

श्रीद्वारकापुरी के द्वार द्वार पर कदली खंभ एवं सुवर्ण कलसों की शोभा हो रही है वृक्षावलियों के सुन्दर पंचपल्लव वन्दन वारों से मनोहर. अष्ट लोक पालों की पूज्य एवं भगवद्वि मुखों को न दीखने वाली शीतल मन्द सुगन्ध पवन से सेवित-समुद्र से घिरी हुई पक्षियों के मधुर शब्दों से कर्ण प्रिय शब्द वाली। (२०)

कक्षाध्यक्षाधिकृतभवनैर्गोपुरैर्गोगृहैश्च
प्रासादानामखिलसुषमासंचयैस्तुङ्गशृङ्गैः।

प्राकाराणांपरिमितरुचाचन्द्रशालावलीभि
र्देवागारैः कनककलशैरापणैर्भ्राजमानाम् ॥२१॥

द्वारपालों से अधिकार किये भवनों से ऊंचे २ दरवाजों से गोशालाओं से शोभित,ऊंचे शिखर वाले महलों(राज भवनों) के अनल्प शोभा समुदाय से बराबर बने हुये परकोटाओं की-कान्ति से चन्द्रशालावलिओं से, कनक कलश वाले देवालयों से एवं अनेक चौपड़ के बाजोंरों से शोभायमान। (२१)

पतत्पताकांशुविलासभासितां
विहङ्गकर्णस्पृहणीयभाषिताम्।
दिनेपि वालामुखचन्द्रभासितां
समुद्रमध्यावयवेषु भासिताम् ॥२२॥
सुसंस्कृतानीव दिगङ्गनानां
वसन्तलक्ष्म्या वदनानि यत्र।
रसाधिकानीव पिकाननानि
संमार्जितानीव हि काननानि ॥२३॥
तदैव तत्र स्मरकेतनानि
बसन्तशोभासमलंकृतानि।
वनानि पश्यन् कलकूजितानि
सस्मार बृन्दाविपिनं मुरारिः ॥२४॥

श्री द्वारका पुरी रूप रमणी का वर्णन करते हैं कि राज भवनों पर चित्र विचित्र ध्वजा पताकाओं के वायु द्वारा उड़ने से वस्त्रों का परिचय होता है कि वह विविध विलासों वाली है। पक्षियों के भांति २ के कर्ण प्रिय कल कूजित उस रमणी के भाषण है, दिन में नव वालाओं के मुख चन्द्र प्रकाश कर रहे हैं मानों हजारों चन्द्रमा इधर उधर भ्रमण कर रहे हैं। समुद्र की

तरंगों में जिसकी सुवर्ण मयी परछाई पड़ रही है। फुलवाड़ी ऐसी खिल रही है मानो चारों दिशाओं में द्वारों पर वसन्त लक्ष्मी ने शोभा वरसा दी है। अर्थात् वहां सदा बसन्त निवास करता है। चारों ओर काम की ध्वजा फैरा रही है। वसन्त की शोभा से पूर्ण शोभायमान है कोकिल जहां आलाप कर रही है ऐसे श्री द्वारा वती के उपवनों को निरीक्षण कर श्रीकृष्ण मुरारीलाल को श्रीधाम बृन्दावन की याद आगई। (२४)

तत्रत्यानथ रासकेलिकुतुकान् मार्तण्डपुत्रींच तां
तत्तस्याः पुलिनं च सुन्दरशरच्चन्द्रप्रभामण्डितम्।
ता गोपीः प्रणयं च तत्कृतमहो साराधिकां राधिकां
स्मारं स्मारमभूदपूर्वविधुरव्यासक्तचित्तो हरिः ॥२५॥

अनन्तर श्री धाम बृन्दावन में रासलीला से उल्लसित उन स्थानों का तथा श्याम सोहागिनी श्री यमुना जी का और शरद की चन्द्र प्रभा से भूषित श्री यमुना जी की पुलिन का प्रणय शालिनी उन गोपाङ्गनाओं का तथा श्रेष्ठ प्रियतमा-श्री राधिका जी का स्मरण वार वार करते हुए श्रीहरि अभूत पूर्व भारी बियोग से दुःखित होगये। (२५)

अश्रुस्नापितगण्डमण्डलयुगश्चिन्तातिकुण्ठान्तरो
दीर्घश्वाससमीरशुष्कहृदयस्थांभोजसन्मालिकः।
शोकाक्रान्तमलीनदीनवदनोरोमाञ्चराजत्तनु
र्विच्छेदज्वरजर्जरः समगमन्मोहं महान्तं मुहुः ॥२६॥

आंसुओं से जुगल कपोल भीग गये चिन्ता से हृदय कुंठित होगया, लम्बे २ श्वास की पवन से कण्ठ में पहिनी हुई कमल की माला सूख गई, शोक के आक्रमण से मलिन दीन वदन होगया, सम्पूर्ण शरीर में रोमांच होगये वियोग के ज्वर से जर्जर वार वार महान् मोह को प्राप्त हुए। (२६)

स्थितः कथंचिन्मृदुलोपधानं पृष्ठेन चाक्रम्य निवृत्तकृत्यः
श्रीराधिकायाः स्मरणेन शश्वद्बभूव चित्रार्पितवन्मुहूर्तम् ॥२७॥

श्री राधे जू के वियोग में किसी प्रकार तकिया के सहारे बैठ गये आपकी समस्त इन्द्रियों की चेष्टायें रुक गई, क्षण भर के लिये चित्र के लिखे से रह गये, यह वियोग की चरमावस्था है। (२७)

ततः परं किञ्चदवाप्तचेतनः सुगन्धसंमार्जितवायुवीजितः।
हाहारवोद्गारमुखो मुहुर्मुहुरच्चीकरद्व्यग्रहृदा विलापताम् ॥२८॥

इसके वाद होश आने पर सुगन्ध पूर्ण पवन से संमार्जित हुए हाहा शब्दों के उद्गार युक्त मुख वाले व्यग्रहृदय से विलाप करने लगे। (२८)

हा कान्ते शरदिन्दुसुन्दरमुखे मच्चित्तजीवातुके
हा मन्मानसभृंगपुष्पितलते हा फुल्लपद्मेक्षणे।
हा प्रेमामृतदीर्घिके मम हृदुल्लासप्रकाशस्थले
हा हा दर्शय राधिके सकृदपि त्वं चन्द्रविम्वाननम् ॥२९॥

हा प्राण वल्लभे! हा शरद् चन्द्रमा के समान मुखवाली हा मेरी हृदय जीवनाधारे, हा मेरे मन मधुप की फूली लतिके! हा फुल्ल कमल नयनी, हा प्रेमामृत तरङ्गिणि, हा मेरे हृदय में उल्लास प्रकाश की स्थली, हा राधे, हा श्रीराधिके, तुम एकबार श्री मुखचन्द का दर्शन दो। (२९)

वियोगदुःखोद्गमनाशहेतुः स काननं गन्तुमियेष कृष्णः।
वुधा मनुष्यस्य विपद्गतस्य त्यागं पदस्याशु वदन्ति यस्मात्॥३०॥

वियोग दुःख के उद्गम को शान्त करने के लिये वे श्रीकृष्ण चन्द्र बगीचा जाने के लिये तयार हुए। क्यों कि विद्वान् लोग कहते हैं कि विपत्ति में स्थान का शीघ्र ही परिवर्तन कर देवे। (३०)

पुनश्च हर्म्यादवतीर्य तूर्णं रथाधिपं दारुकनामधेयम् ।
दूतेन केनापि तदागतेन कृष्णः शताङ्गानयने ।ददर्श ॥३१॥

फिर महलों से नीचे आकर शीघ्र ही किसी आये हुए दूत से अपने दारुक सारथी को आदेश दिलाया कि रथ ले आवे । (३१)

स स्यन्दनं समधिगम्य सुखोपविष्टो
नागान्तकाङ्कितबृहद्ध्वजमप्रमेयः ।
उद्यानमुत्पुलकितद्रुमसन्निवेशं
वीरैर्वृतः कतिपयैः स हरिर्जगाम ॥३२॥

गरुड़ की ध्वजा वाले रथ को आया जान वे अतुलित बल वाले श्रीहरि सुख पूर्वक बैठ कर वीरों के साथ प्रफुल्लित बृक्षावली वाले बगीचे को पधार गये । (३२)

कटाक्षकक्षापुरसुन्दरीणां श्रीराधिकाया विरहाभिभूतम् ।
नानन्दयत्तं गतरत्नवित्तं नरं पथि प्राप्तवराटिकेव ॥३३॥

मार्ग में पुरसुन्दरियों के किये हुए कटाक्ष दृष्टि पात श्रीराधिका विरही श्रीकृष्ण को सुखी नहीं कर सके, क्यों कि वे श्री प्यारी जी के वियोग में व्याकुल थे जैसे रत्न खोजाने पर पाई हुई कौडी क्या सुख देगी । (३३)

क्रान्त्वा क्रमेण चलनस्य कुशस्थलीं तां
मार्गे नरैः सरभसैः कलितोपहारैः ।
सुश्रूषितः कुसुमभारविनम्रवृक्ष-
मारामम‍ाम्रकलकण्ठकलं ददर्श ॥३४॥

मार्ग में वेग से भेट पूजा लेकर आये हुए लोगों से सेवित क्रमानुसार द्वारका के बाहिर हुए फूलों से लदवदा रहे कोकिल जिन पर आलाप कर रही ऐसे बगीचे को देखा । (३४)

नवांगनानामनुराग एव हृदि स्थितो लक्षतयाहि यत्र ।
पलाशपुष्पोद्गमकैतवेन किंवै वसन्तेन युवत्वमाप ॥३५॥

उस बगीचे में अनेक पलाश बृक्ष प्रस्फुटित थे उस शोभा को देखकर ऐसी प्रतीति होने लगती थी कि मानों वसन्त ने पलाश पुष्पों के बहाने से युवावस्था प्राप्त की हो, उसके हृदय में भीतर जो नवांगनाओं का अनुराग था आज वाहिर प्रकट हो रहा है। (३५)

विरहविवशलोकप्राणनिःसारणार्थं
मधुमदमुदितात्मा यत्र वीणाभकण्ठः ।
बिकचमुकुलमाले सालवाले रसाले
कलयति कलमुच्चैः कोकिलानां कलापः॥३६॥

जहां सुन्दर आलवाल वाले मंजरी से भरे रसाल (आम्र) बृक्ष पर रस पीकर मत्त हुआ वीणा के समान मधुर कण्ठ कोकिलों का समुदाय, विरह से विवश हुए लोगों की प्रान लेने के लिये बड़े ऊँचे स्वरूप कुहू कुहू कर रहा है। (३६)

मुकुलिता कुलिता भ्रमरोत्तमैः
कवलिता वलिता दलसञ्चयैः ।
स्तवकिता चकिता पिकझंकृतै-
र्वनलता ललिता सुरभौ वभौ ॥३७॥

वन की लताएें पुष्पित होने के कारण भ्रमरों से परिवेष्टित हैं हरे हरे पल्लव दलों से ढ़की हुई हैं गुच्छाओं से व्याप्त कोकिलों के झंकारों से शब्दायमान वन की लताएें सुगन्धियों से शोभाय मान हैं। (३७)

अमन्दमाकन्दमरन्दमत्ताः कुहू कलक्वाणितकंठदेशाः ।
यत्र प्रसूनद्रुमसन्निविष्टा गर्वेण गर्जन्ति वसन्तदूताः ॥३८॥

आम्ररस के पान से पूर्ण उन्मत्त, कण्ठ देश में कुहू कुहू शब्द है ऐसे कोकिल बोल रहे हैं प्रफुल्लित लताओं पर वसन्त के दूत बैठकर गर्जना कर रहे हैं मानों विरहीजनों के मारने के लिये आदेश दिया जा रहा है । (३८)

वासन्तीकुसुमस्मितेन शुचिना भृंगभ्रमालोकनै
र्वाक्योत्प्रेक्षितकोकिलाकुहुरितैः शाखाभुजोद्धूननैः ।
किञ्चिद् गुच्छपयोधरप्रकटनैः सौगन्धिकालेपनैः
पर्णैः सद्व्यजनैः प्रियेव दयितं पुष्पाकरं सेवते ॥३९॥

वासन्ती पुष्पों का खिलना, मन्द मुसक्यान है, भौंराओं के इधर उधर जाना उसमें जो पराग झरना यही ऋतु मती भाव है । कोकिलाओं का कूजन मधुर भाषा है, शाखाओं का चलना भुजा उठाना है, नवीन फल स्तन रूप हैं, सुगन्धि युक्त पराग का चन्दन है, पल्लवों के पंखे हैं इस प्रकार सब सामग्री से सज्जित हो बनलता ऋतुराज वसन्त की सेवा करती हैं । (३९)

कलालापी कलापी च कर्णकौतुककारिकाम् ।
केकां कूजति कंठेन कोकिलालीं च काकलीम् ॥४०॥

जहां मधुर बोलने वाले मयूर कानों को कौतुक करने वाले कंठों से केका वाणी बोल रहे हैं वे शब्द कोकिलों के समान मधुर हैं । (४०)

सौगन्ध्य-धैर्य-शिशिर-स्फुटधर्मजुष्टो
मल्लीमरन्दनवहेमरसानुरक्तः ।
यत्रानिलः स्फुरति हंत वसन्तराज-
श्चञ्चज्जयध्वज इव त्रिपतत्पताकः ॥४१॥

जहाँ सुगन्धि युक्त धीर समीर शीतल धर्म को सेवन किये हुए हैं, चमेली लता के नव हेम रस से मिला हुआ पवन चलता

है मानों ऋतुराज वसन्त की त्रिपताकामय ध्वजा फहरा रही है। (४१)

फुल्लावल्लीवलयितनगा मालती चक्रवाला
यूथीवीथीनवकिशलया मंजुला वंजुलाली।
सान्द्रीभूता विलसितहरित्पर्णमालास्तमाला
यत्राभान्ति प्रियपरिमला वा विशाला रसाला ॥४२॥

जहां सुगन्धि से सुन्दर रसालवृक्ष उपस्थित हैं, तथा वृक्षावली प्रस्फुटित लताओं से विभूषित हैं, मालती समूह से नवीन पत्रावली वाली जुहियों से मनोहर निविड हरे हरे पत्ते वाले तमालों से वह उपवन अति रमणीय है। (४२)

इतस्ततः प्राप्तमधूपहारा मन्ये हि यत्र ध्वनिकैतवेन।
इन्दिन्दिराः संसदि वल्लरीणां वसन्तकान्तागमनं वदन्ति ॥४३॥

जहां इधर उधर मधुपान से मत्त मधुप राजी कूजती गुंजार करती घूम रही थी मानों अपने गुंजार से लताओं की सभा में वसन्त कान्त की आगमन वार्ता सुना रही हो। (४३)

पुराणपत्राणि विहाय वल्ली नवीनपर्णाम्बरसम्भृताङ्गी।
फुल्ला वसन्तोदयदर्शनेन बभौ विदेशागतभर्तृकेव ॥४४॥

लताएं पुराने पत्ते डाल कर नवीन वसन रूप पत्र पहिने हुए हैं, मानों परदेश से आये वसन्त रूप पति को देखकर प्रफुल्लित हो गईं हैं। (४४)

कोकिला-कलकलैः कमनीयैर्मन्दमन्दगमनैः पवनैश्च।
रुद्धकर्णविवरा धृतवस्त्रा निःसरन्ति पथिकाः किल यस्मात् ॥४५॥

कोकिलों के कल कल शब्दों से रमणीय मन्द मन्द चलने वाले पवन से रुद्ध कर्ण हुए पथिक वस्त्र धारण कर वाहिर निकलने लगे। (४५)

भृंगोत्तमे शिशिरसेविलसत्परागे
वासन्तिकामुपगते सरसां स्वनाथे।

विभ्रष्टपुष्पहसिता किमु कुन्दवल्ली
यत्रेर्ष्ययैव हि गता गुरुमानिनीत्वम् ॥४६॥

भृगों से उत्तम शीतल पराग राजि से सुशोभित निजनाथ वसन्त के द्वारा वासन्ती लता को रसमयी देख ईर्ष्या से कुन्द-लता पुष्पों के धारण करने के बहाने से मानों हंसने लगी हैं। (४६)

संमार्जितं सरसशीतलमारुतेन
संसिक्तमुत्तमलताविगलन्मरन्दैः।
पुष्पास्तृतं मधुपवन्दिकदम्बगीतं
क्रीडास्थलं वसुपतेरिव शोभितं यत् ॥४७॥

सरस शीतल पवन से सोहनी किया हुआ, उत्तम लताओं के झरते हुए मकरन्दों से छिडकाव किया हुआ, फूलों से आच्छादित तथा भ्रमर रूप वन्दीगण से प्रशंसित यह उपवन तो श्री-कुवेरजी का भंडार ही है। (४७)

परिपुष्टमयूरचकोरशुकाद्भुतचातकचंचलचंचुचयैः।
निजनूतननादविकाशसुखैर्मुखरीकृतशाखिसभा शुशुभे ॥४८॥

चारों ओर से पुष्ट मयूर चकोर शुक अद्भुत-चातकों केचंचल चंचु पुटों के नवीन शब्दों से गुंजार भरी बृक्षों की सभा शोभा पा रही है। (४८)

विच्छेदज्वरजर्जरीकृतहृदां सद्यः फलोद्गारदः
प्राणाकर्षणमंत्रपाठशमकः कन्दर्पदर्पोद्वहः।
कूजत्कोकिलकालकंठकलितः पुष्पाकरस्योदये
यत्राक्रान्तहरिन्मुखः प्रतिपदं कोलाहलः श्रूयते ॥४९॥

ऋतुराज के आगमन से जहां चारों दिशाओं में सर्वत्र मनोहर कोलाहल सुनाई पडता है वह कोलाहल शब्द मानों वियोग के ज्वर से जर्जर हृदय वालों को शीघ्र ही प्रिय संगम फल को

देने वाला है। शब्दायमान कोकिलाओं के मधुर कंठ से व्याप्त कामदेव के अभिमान को उत्पन्न करने वाला एवं प्राण कष्ट में मंत्र पाठ से प्राप्त हुई शान्ति के समान मालूम होता है। (४६)

फलस्तनी चालिकदंबयुक्ता हस्ताग्रनिर्धूतनजातशोभा ।
कर्पूरगन्धा मरुदंगसंगा रंभेव विभ्राजति यत्र रंभा ॥५०॥

जहां केला के बृक्षों की शोभा रंभा अप्सरा के समान मालूम होती है, फल स्तन है, भोंराओं के समूह केशपाश हैं अथवा सैकडों सखी समूह हैं। पत्तों का हिलना हाथों का चलाना है, अप्सरा के शरीर में सुगन्ध है, यहां कपूर की गन्ध है, केला में पवन का संग है, अप्सरा को देवों का संगम है। (५०)

वसन्तसंगीकृतभूरुहाणि पतत्रिणस्तन्मकरन्दपुष्टान् ।
पश्यन् पिकान् पंचमरागरक्तान् द्वारावतीशो विपिनं विवेश ॥५१॥

इस प्रकार वसन्त ऋतु के संगी बृक्षों को तथा उनके रसों से पुष्ट पक्षियों को एवं पंचम राग में गाने वाली कोकिलों को देखते हुए श्रीद्वारकानाथ वन में पधारे। (५१)

तस्मिन् प्रविष्टे यदुवंशनाथे शताङ्गशोभा-समुदाय-शोभे ।
मार्तण्डचण्डद्युतिदुर्विगाह्या लतावली फुल्लतरा बभूव ॥५२॥

रथ की अनेक शोभाओं से शोभित श्रीयदुनाथ को उस वन में प्रवेश करने पर सूर्य की कठोर किरणों से कुमलाई हुई बृक्षा-वली प्रफुल्लित हो गई। (५२)

कृष्णं मत्वा सजलजलदं पीतपट्टं च विद्युत्
निर्घोषं तं रथचलनजंनादमभ्रस्य मत्वा ।
यत्र प्राबृट्समयसुषमा वीक्षणेनैव हृष्टा
केकीकण्ठाः कलितनिनदा नृत्यलीलामकुर्वन् ॥५३॥

उस समय श्रीकृष्ण का दर्शन कर उनको सजल मेघ तथा उनके पीताम्बर को बिजली और रथ के चलन शब्द को मेघ की

गर्जना मान कर वर्षा समय के शोभा का अनुभव कर मयूरगण केकावाणी बोल कर प्रसन्नता पूर्वक नृत्य करने लगे। (५३)

चञ्चरीक इव चञ्चलनेत्रो भृंगसूनुरिव पुष्पसुगन्धम्
आपिबन्मुहुरहो तरुजातं सत्सरोवरमुदैक्षत कृष्णः ॥५४॥

भ्रमर की भांति चंचल नेत्र वाले श्रीकृष्ण ने मधुकर कुमार की तरह पुष्पों की सुगन्ध का पान करते हुए सुन्दर सरोवर देखा। (५४)

मध्यदेशविलसद्युगतीरा वर्तुलाकृतिमनोहरशोभा।
प्रोल्लसद्घनरसातिगभीराऽरण्यनाभिरिव सत्सरसीशा ॥५५॥

उस सरोवर के दो तीर बहुत सुन्दर और गोलाकार शोभायमान थे, अत्यन्त गंभीर तथा स्वच्छ जल से भरी हुई अरण्य-रमणी की नाभि जैसी मालूम पड़ती थी। (५५)

कादम्बानां कदम्बः कलितकलकलः क्रीडते सारसेषु
संघातः सारसानां सरसतररुचिः शोभते यत्र शश्वत्।
कल्लोलानां कलापः कवलयति तटं यत्र सोपान-वीथ्या
भृङ्गी संगीतसंगी सरसयति मनः शृण्वतां कोपि नादः ॥५६॥

उस सरोवर में हंसों का समाज क्रीडा करता हुआ सारसों में कल कल शब्द कर रहा था। सारस समूह निरन्तर शोभित था। सुन्दर सीढियों के मार्ग द्वारा तरंगों का रूप रंग तीरों को डुबाए देता था। भ्रमरों के भारी सङ्गीत का सङ्गी कोई एक ऐसा अद्भुत स्वर था जो सुनने वालों को रसमय बना देता था। (५६)

मदकलकलविङ्की कालकण्ठी च यत्र
तटनिकटमिलन्ती सप्रिया चक्रवाकी।
विलसति रुचिरांगी सारसी सस्वनाथा
मधुर-मधुर-शंसी राजहंसी-कदम्बः ॥५७॥

जिसके तट पर चक्रवाकी अपने प्रिय चक्रवाक के साथ मद पूर्ण शब्द करती शोभित थी, जहां रुचिरांगी सारसी अपने पति के साथ विलास करती थी तथा मधुर-मधुर बोलने वाला राजहंसी समाज शोभायमान था। (५७)

तटपरिसरफुल्लाऽशोकवल्ली प्रसूनै-
स्तदमलकरसङ्गत्यक्तवाद्भिर्विगाह्या।
विलसति सरसी सा कामदा दर्शनेन
नृपवरनवकन्या सेविता देवतेव ॥५८॥

किनारे पर चारों ओर प्रफुल्लित अशोक लताओं के फूलों से अर्थात् उन लताओं के डार ही हाथ हुए, उनसे मानों पुष्पों की वर्षा हो रही है अथवा गिरते हुए फूल मानों कूद-कूद कर नहा रहे हैं जिसमें ऐसी नव राजकुमारियों से सेवित तथा देवों की तरह दर्शन मात्र से मनोरथ पूर्ण करने वाली वह सरोवर शोभित हैं। (५८)

मणिनिकरमरीचिद्योतदर्पप्रकाशा
कनककुसुमशिल्पानल्पशोभाविकल्पा।
तरलतरतरंगा संगरंगांकिताग्रा
सफलयति दृगन्तं यत्र सोपानवीथी ॥५९॥

जिस सरोवर की सीढियां मणि मण्डल की किरणों के प्रकाश से साभिमान थीं तथा तरह २ के कनक कुसुमों की चित्रकारी रचना से सुहावनी, जिन सीढ़ियों का आगे का हिस्सा जल की अत्यन्त चंचल तरंगों के संग रंग से अङ्कित तथा शोभित था। (५९)

संवर्तिकाशोभितपुण्डरीकाः सौगन्धिकागन्धितदिङ्मुखाभाः।
इन्दीवराः फुल्लसहस्रपत्रा भ्राजन्ति यत्रोत्पलपङ्क्तयश्च ॥६०॥

जहाँ असंख्य नव दल वाले लाल कमल हैं वे अपनी लपटों से दिशाओं को सुरभित कर रहे है, नीलकमल, श्वेतकमल, सहस्र दल कमलों की पंक्तियां शोभा दे रही हैं। (६०)

कोकनादाः कोकनदाः कारण्डव-कुलाकुला।
राजन्ते रमणीयाश्च राजीवा रतिकोविदा ॥६१॥

चक्रवाकों के शब्दों के साथ २ हंसराजियों के कुलों से परिपूरित है। रति सुख रसज्ञ (चैतन्य) कमल परम सुन्दर लग रहे हैं। (६१)

स्वच्छस्फटिकसमानं यन्नीरं रचितपान्थसन्मानम्।
शफरीकेलिनिदानं पवनकृतं शैत्यसुखदानम् ॥६२॥

जिस का जल स्वच्छ स्फटिक मणि के समान साफ है, तथा शीतल सुखदायी पवन से युक्त है, पथिक स्नान पान कर जिसे सन्मान देते हैं, रंग बिरंगी मछलियों का मानों केलि मन्दिर है। (६२)

यद्यपि समगतिचारी पवनः सर्वप्रदेशसंचारी।
भवति च धीरविहारी यज्जलसंगान्मनोहारी ॥६३॥

पवन यद्यपि समान गति से सर्वत्र विचरण शील है तो भी उस सरोवर के जल के संसर्ग से परम मनोहर होकर वहां ही धीरनायक का स्वरूप धारण कर विहार करता है। (६३)

चक्रवाकयुगवर्तुलस्तनी फुल्लतामरसमालिकोज्वला।
चारुमीननयनाम्बुजानना सा प्रियेव हरिणी विलोकिता ॥६४॥

श्रीहरि ने उस सरोवर को प्रिया सखी की भाँति मनोहर देखा जिसके निकट चकवा चकवी तो गोल स्तन रूप हैं, फूले फूले स्वर्ण कमलों की मालाओं से सजी हुई है, लाल कमल जिसके मुख तथा नील कमल नीलिमा, मीन मंडल चंचल नेत्रों जैसे मालूम पडते हैं। (६४)

तीरे समीर–शिशिरे सरसस्तदाऽसौ
गत्वा विहाय पुनरिन्दुमुखः शताङ्गम् ।
पार्श्वस्थचम्पकलताविगलन्मरन्दे
तस्मिन् सुखेन विचचार शनैः शनैः सः ॥६५॥

पवन से शीतल निकटवर्ती चम्पक लता के पराग से सुगन्धित उस सरोवर के तीर पर महा रसिक चन्द्रवदन श्रीकृष्ण अपने रथ से उतर कर धीरे धीरे भ्रमण करने लगे । (६५)

पुन्नागपुष्पकलिकांकित–कर्णमूलो
हस्ते प्रशस्तकुसुमं दधदच्छगुच्छम् ।
केशाग्रसंग्रथितसुन्दरयूथिपुष्प–
स्तत्कालभुग्ननवपल्लवभूषणाङ्गः ॥६६॥

उष्णीषपूर्वधृतचञ्चलचन्द्रिकाढ्य–
श्चामीकराभवसनो गजराजयानः ।
वामे करे परिणतं फलमाम्रजातं
धृत्वा वभूव धृतवन्धुरगोपवेशः ॥६७॥

श्रीहरि का गोपवेश बन गया उनके कानों में नाग केशर के पुष्पों की कलियां हैं, जुही के फूलों की शोभा केशों में हो रही है, तत्कालीन नव पल्लवों की अनोखी छटा धारण की है । श्री हस्त में फूलों के गुच्छे को लिये हैं । (६६) पाग में मयूर-पिच्छ की चन्द्रिका पहिनी है, वांये हाथ में पका हुआ आम का फल लिये हुए गजराज गमन, पीताम्बरधर बडे ही सुन्दर मालूम होते हैं । (६७)

अन्योन्यसंश्लिष्टतरु तरूणां दिवाकरद्योतजदर्पहीनाम् ।
निरन्तराच्छादितमध्यभागां निकुंजवीथीं विजगाह ईशः
॥६८॥

परस्पर मिले हुए वृक्षों की सघनता से ढका हुआ है मध्य भाग जिसका इसी से सूर्य की धूप से रहित निकुञ्ज गली में श्रीकृष्ण पधारे। (६८)

तिष्ठन् व्रजन् क्वापि कदापि पुष्णान् निजांगशोभां मकरन्दगन्धैः ।
चिन्वन् कदाप्युत्पुलकप्रसूनान् वभ्राम तस्यां कलभेन्द्रवत्सः ॥६९॥

उस निकुंज वीथी में कभी कहीं पर बैठ जाते हैं, कभी चलने लगते हैं, कभी मकरन्द की सुगन्धों से अङ्ग शोभा का पोषण करते हैं, खिले हुए फूलों को चुनते हैं, मत्त हाथी के बच्चे की तरह डोलते हैं। (६९)

स्पर्शेन तत्पादसरोजजेन रोमांचिताभूद्धरणी वनस्य ।
वहिः स्फुटत्कन्दलकैतवेन शिलास्तृणाश्चापि मृदुत्वमापुः ॥७०॥

आप के श्री चरण कमल के स्पर्श से वन की भूमि रोमांचित हो गई। वाहिर निकले अंकुरों से यह प्रतीति हुई और शिला तथा तिनके कोमल होगये, शिलाओं में द्रव भाव आगया, वे पिघलने लगे। (७०)

करिणी शरणीयुक्ता तरुणी हरिणीगणैः ।
करुणी करुणीजालैररुणी धरणी वने ॥७१॥

तरुण हरिणी गणों से हथिनी प्यार करने लगी, करुणा के अपार समुदाय सभी में करुणा भर गई, वन में भू मण्डल भी आपके श्री चरण कमल के स्पर्श से लालिमा युक्त हो गया है। (७१)

ततश्च तत्पूर्वदिशि स्फुरन्तं
त्रैलोक्यलक्ष्म्यायतनोत्तमाङ्गम् ।
नभः स्पृशन्तं कनकीयशृङ्गै-
रागारसारं ददृशे सुरेशः ॥७२॥

अनन्तर श्री हरि ने उस वन की पूर्व दिशा में त्रैलोक्य लक्ष्मी का निवास स्थान उत्तम कनक शिखरों से आकाश चुम्बि एक मनोहर मन्दिर देखा। (७२)

कमलाकरकूलनिविष्टरुचिं कमलाकरमार्जितभित्तितटम् ।
सरसीकृतभूमिघनं रुचिरं सरसीजलमध्यविलोलनिभम् ॥७३॥

जो चारों ओर सरोवर से शोभायमान है, लक्ष्मी के कर कमलों से जिसकी दीवाल स्वच्छ की गई है, परम सुन्दर सरस भूमण्डल से मनोहर तथा सरोवर के जल में जिसकी चञ्चल परछाई दिखलाई पड़ रही है। (७३)

सुपर्वपर्वतोज्वलं निकेतकेतुचञ्चलम् ।
समीरधीरसेवितं मुकुन्दपार्षदार्चितम ॥७४॥

सुन्दर पर्व वाले श्रीगोवर्द्धन के समान सुन्दर और ऊंचा अनेक भवनों की ध्वजाओं से चंचल, शीतल मन्द सुगन्ध पवन से सेवित तथा मुक्ति के देने वाले भगवान् श्रीद्वारकाधीश के पार्षदों से परिवेष्टित हैं। (७४)

नृणां मनः कुर्वति सानुरागं यद्देवतापर्वतसानुरागम् ।
रत्नोत्तमानां हरिता मलिन्दा येषूल्लसन्ते हरिता मलिन्दाः ॥७५॥
स्तंभोज्वलश्रीशपुरीसमानं गवाक्षगुच्छं च सुरेशमानम् ।
श्रृंगारशोभां रचितुं समर्थं यत्संप्रसूते सुविलासमर्थम् ॥७६॥
मणित्विषा यत्र कृतं निशान्तं विहारविश्रामपृथक्निशान्तम् ।
ग्रीष्मे वसन्ते च सदैव कान्तं पश्यन्ति यत्रत्य जना वकान्तम् ॥७७॥
चञ्चन्मयूखैः कलशैरलंकृतं त्वाष्टेन यत्कर्म निराविलं कृतम् ।
स्थलस्थलस्थापितदीपभूषितं समस्तवस्तूपचयं च भूषितम् ॥७८॥

वह मन्दिर अपनी शोभा समृद्धि के द्वारा मनुष्यों के मन को अनुराग मय बना देता, जहां देवताओं के पर्वत शिखरों की जैसी

लालिमा थी। हरित वर्ण (नीलमणि के बने हुए) उत्तम रत्नों के आंगनों में कमल-मधुपान से उन्मत्त होकर मधुकर गुंजार कर रहे थे। (७५) गरुड़खंभ से वैकुण्ठ के समान, खिड़कियों के समूह से स्वर्ग के समान शोभा शृंगार की शोभा बनाने में समर्थ अनेक विलासों को उत्पन्न करती थी (७६) जहां मणियों के प्रकाश से रात्रि में दिन मालुम पड़ता था, विहार विश्राम के पृथक् २ स्थान बने हुए थे, गर्मी में वसन्त वर्षा सभी में प्रिय लगता था, जहां के रहने वाले श्रीकृष्ण का नित्य दर्शन करते थे। (७७) फैली हुई कान्ति वाले सुवर्ण कलशों से शोभित था, विधाता विश्वकर्मा ने जिसे खूब समझ कर निराला ही बनाया है, जगह जगह स्थापित रत्न दीपावलियों से भूषित तथा विविध विलास सामग्रीयों से परि पूरित था। (७८)

द्वारान्तरस्थापितरत्नतोरणं विस्तारयन् वस्तुसमृद्धितोरणम्।
कोमोद्भवं वज्रकपाटराजितं माधुर्यमूर्तिं च सुरासुराजितम् ॥७९॥
रसिकोत्सवजीवनसत्क्षणदं स्मरकेलिरतोत्सवदत्क्षणदम्।
सच्छत्रनवासनसुव्यजनं मणिकुंडलमण्डितनव्यजनम् ॥८०॥

द्वार द्वार पर रत्नों की बन्दनवार लगी हुई थी, जो समस्त वस्तुओं की समृद्धि में प्रधान थी। बज्र की भांति सुदृढ़ कपाटों की शोभा थी तथा दर्शकों के चित्त में काम उत्पन्न करने वाला माधुर्य मूर्ति सुरासुर सभी को अजय था। (७९) वह मन्दिर रसिकों को उत्सवों द्वारा शुभ घड़ी दिखाने वाला था, जहां काम केलि रति विलास देने वाली रात्रि थी वहां के निवासी चमर-छत्र-आसन-वसन-व्यजन आदि से मंडित थे। (८०)

मणिद्युतिधुरंधरा सुरतसुन्दरोल्लासिनी
वितानवलयस्फुरद्विमलमौक्तिकद्योतिनी।

सुवर्णरसरंजिता कलकलांकिता काकली
यदन्तर विराजता रसमयी विहारस्थली ॥८१॥

शरच्छशधरस्फुरद् द्युतिभरं तिरस्कुर्वती
नवीनमृदुकंजिनी किशलयै र्विचित्रान्तरा ।
पयोनिधितरंगवच्छुचिमृदूपधानान्विता
स्मरोत्सवविकासिनी लसति यत्र शय्यावली ॥८२॥

जिस महल में श्रेष्ठ मणि कान्तियों से सुन्दर विलास देने वाली चारों ओर तने हुए बितानों के मण्डलों में मोती की झालरों से टकी हुई तथा सुनहरी पुती हुई एवं कोकिलों के कल-नादों से कल कलायमान रसमयी विहार स्थली विराजमान हो रही थी। (८१)

शरद् कालीन चन्द्र मण्डल को तिरस्कार करने वाली नवीन कोमल कमलावलियों से अद्भुत बनी हुई तथा क्षीरसागर के तरंग (उफान) के समान सफेद गद्दे तकियाओं से युक्त, कामदेव के उत्सव को दिखा देने वाली अनेक शय्याओं की आवली (पंक्ति) शोभा दे रही थी। (८२)

क्वचित्कनकवल्लरी वलयिता द्रुमाणां ततिः
क्वचित्कलितकाकली कलकलान्विता कोकिला ।
क्वचित् कुसुमवाटिकापरिसरे सदिन्दिदिरा-
स्तनोति सुषमां नदन्ति विचरन्ति यन्निष्कुटे ॥८३॥

कहीं पर तो कनकलता वृक्षावलियों में लिपट रही थी। कहीं कोकिल मधुर मधुर धीमे धीमे स्वरों में राग गा रही थी। कहीं फूलों की क्यारियों में मधुप गुंजार करते हुए भ्रमण कर २ महल की शोभा बढ़ा रहे थे। (८३)

निरीक्ष्य भवनोत्तमं च्चपितवैजयन्तं त्विषा
जगाम मुदमद्भुतं कमललोचनः केशवः।
पुनश्च गमनोत्सुकः कुतुकलीलयाक्रान्तहृत्
बभूव गतिगंजितोत्कटकरी तदन्तेचरः ॥८४॥

अपनी कान्ति से सुरपुर तिरस्कार करने वाले उस महल को निरीक्षण कर कमल लोचन केशव परमानन्दित हुए और अनेक क्रीड़ाओं से आक्रान्त-चित्त मदोन्मत्त गजराज की गति को गंजन करने वाले वे ईश्वर उधर धीरे २ भ्रमण करने लगे। (८४)

पार्श्वद्वयस्थमणिविद्रुमवेदिकाढ्य
माणिक्यतोरणरणत्कलधौतघंटम्।
ऊर्द्ध्वप्रदेशरमणीयकचन्द्रशालं
द्वारं ददर्श पुरुहूतगजेन्द्रशोभम् ॥८५॥

जिसके दोनों तरफ में प्रवाल मणि रचित चौखंड़ियां थी, बीच में सोने के घण्टे के साथ माणिक्यों की वन्दनवार बन्धी हुई थी, दूसरी मंजिल में मनोहर चन्द्रशाला शोभित थी, इन्द्र के ऐरावत हाथियों के समान हाथी बने हुए थे, ऐसे दरवाजे को देखा। (८५)

गत्वा तदन्तरमलौकिकवस्तुजुष्ट
पश्यन् क्रमात् सुरतदीपककेतनानि।
शय्यान्वितानि सरसानि सुखप्रदानि
सोपानमार्गविधिना शिखरं विवेश ॥८६॥

उस भवन के भीतर अलौकिक दिव्य वस्तुओं से शोभित छोटे २ कमराओं को देखा जिनमें सुरत के प्रकाश उद्दीपन करने वाले अनेक पलंग बिछे हुए थे। इन सबका क्रम से निरीक्षण कर सीढ़ियों से ऊपर चढ़ कर जहां शिखरभाग था, वहां पहुंचे (८६)

तत्रश्च दृष्ट्वा मणिचत्वराङ्गणे
गोपालवेशं प्रतिबिम्बितं स्वकम् ।
वनं च तत्पुष्पलता-निराचितं
वृन्दावनस्फूर्तियुतस्ततोऽभवत् ॥८७॥

उस वन पर मणि के चबूतरे से शोभित आङ्गन में अपने गोपाल स्वरूप की परछाई देखकर तथा पुष्पलताओं से सुशोभित वन का दर्शन कर तत्काल श्री वृन्दावन की याद हो आई। (८७)

वनप्रदेशस्य विलोकनेन विच्छेदबीजो हृदि कन्दलोऽभूत् ।
पुनश्च शय्यादिपरिच्छदानां स शाखितामोद्गमतः प्रपेदे ॥८८॥

उस वन के दर्शन से हृदय स्थित वियोग बीज अंकुरित हो गया और शय्यादि सामग्री के देखने से विच्छेद बीज वृक्ष होकर बढ़ गया अर्थात् आप वियोग सिन्धु में निमग्न हो गये। (८८)

निवृत्त-सर्वेन्द्रियवृत्तिजालः श्वासेन शुष्कामलपुष्पमालः ।
वर्णेन मन्दीकृतसत्तमालः खेदं जगाम स्मृतगोष्ठबालः ॥८९॥

इन्द्रियों की सम्पूर्ण वृत्तियां स्थगित हो गई । गरम श्वासों से फूल की माला सूख गई। इतनी श्यामता आ गई कि तमाल को भी लज्जित होना पड़ा और आप गोपी गोपालों की याद कर खिन्न हो गये। (८९)

वारं वारं व्रजपरिजनान् प्रेमकासारतुल्यान्
स्मारं स्मारं पशुपरमणीवृन्दयुक्तां च राधाम् ।
कारं कारं मधुपतिरहो व्यग्रचित्तो विलापं
धारं धारं मनसि विरहं मूर्छितोऽभून्मुरारिः ॥९०॥

प्रेम सरोवर स्वरूप व्रज परिकर तथा गोप रमणी समूह से परिशोभित श्रीवृषभानुनन्दिनी राधिका जी का बार २ स्मरण कर व्यग्र हुए विलाप करते २ विरह से व्याकुल मथुरानाथ श्रीमुरारी मूर्छित हो गये। (९०)

श्रीगोविन्दमुनीन्द्रवन्दितपदद्वन्द्वारविन्दासव-
प्रोन्मत्ताखिलचित्तवृत्तिसुखदे सारंगसंगोदिते ।
काव्ये नन्दकिशोरचन्द्ररचिते श्रीकीरदूताभिधे
विच्छेदोदयवर्णनः प्रथमकः सर्गोऽगमत्पूर्णताम् ॥६१॥

इति श्रीमज्जयदेवगोस्वामिप्रभु वंशोद्भवश्रीनन्दकिशोर-
चन्द्रगोस्वामिप्रणीतश्रीशुकदूतमहाकाव्ये
विच्छेदोदयवर्णने प्रथमः सर्गः
समाप्तः ।

श्री गोविन्द के मुनीन्द्र वन्दित पद युगल के मकरन्द रसपान से उन्मत्त समस्त रसिकजनों की चित्त बृत्ति को सुखदेने वाले भक्तों के संग से उत्पन्न श्रीनन्दकिशोरचन्द्र गोस्वामि रचित श्रीशुकदूतमहाकाव्य में श्रीकृष्णचन्द्र को ब्रज ब्रजवासि विरह के उदय रूप यह प्रथम सर्ग समाप्त हुआ तथा कृष्णदास प्रणीत उसकी "सन्देशसुधा" टीका समाप्त हुई । (६१)

❀ श्री राधामाधवो जयतिः ❀

श्री शुकदूतमहाकाव्ये द्वितीयः सर्गः

समारभ्यते

अथ व्यथापंचमुखीनिगीर्णः पुनश्च विद्धः स्मरलुब्धकेन ।
बभूव कृष्णस्य नितान्तखिन्नो विपद्गतश्चित्तकुरङ्गबालः ॥१॥

(सन्देश सुधा)

इसके अनन्तर व्यथा रूप अग्नि से अत्यन्त जर्जरित और कामदेव रूप शिकारी के बाणों से विद्ध श्रीकृष्ण का चित्तरूपी

हरिण का वच्चा कई विपदाओं में पड़ कर भारी दुःखित हो गया। (१)

जगर्ह सामर्षवचोविलासैरुद्दीपयन् मारुतचन्द्रमुख्यान्।
लब्धस्मृतिः किञ्चिदपालितभ्रूर्यत्कर्तृकं प्राप पराभवं सः ॥२॥

कुछ होश आने पर पवन चन्द्रमा प्रभृति मुख्य काम सेवकों को जिनके द्वारा अपना पराजय समझा था, उन उनको कुछ भृकुटि वांकी करके अनेक सक्रोध वाक्यों से कोशने लगे। (२)

मलयमारुत मन्द मदीरितं शृणु वभूव भवान् विगलत्तनुः।
विरहिदुःखितमानसपापतः किमपरां गतिमाप्स्यसि वेद्मि न ॥३॥

अरे मन्द मलयाचल के पवन! तुम विरही जनों के दुःखित मन को सताने वाले हो, इसी पाप से तुम्हारा शरीर नष्ट हो गया और में नहीं जानता कि तुम्हारी अभी क्या क्या गति होगी। (३)

असुरभौ सुरभौ समता तव विषमता किमिति प्रतिगृह्यते।
सुखयति स्म वधूसहितान्यथो व्यथयसि त्वमहो विरहाकुलान् ॥४॥

हे देव! दुर्गन्ध और सुगन्ध के साथ तो तुम्हारा समान व्यवहार है फिर आज तुम्हारे में यह विषमता क्यों दिखलाई पड़ रही है, जो वधुओं के साथ रहने वालों को सुख देना एवं विरही जनों को कष्ट पहुंचाना। (४)

विरहिषु प्रकरोति भवान् सदाऽनलसखाभिध सार्थकतां यतः।
भवति ते परिरम्भणकौतुकाद् द्विगुणिता विरहानलदीधितिः ॥५॥

अग्नि के सखा होने के कारण तुमने विरही जनों को अग्नि जैसे जला देती है वैसे ही जला कर अग्नि सखा नाम को सार्थक कर दिया। तुम्हारे स्पर्श मात्र से विरहानल की ज्वाला दुगुनी हो जाती है। (५)

त्यजति निर्दयतामपि दुर्जनः कुटिलहृत्खलु सज्जनसङ्गतः ।
कुसुमसङ्गयुतस्य तवापि किं विरहिदुःखदता न गतानिल ॥६॥

हे अनिल ! कैसा भी कुटिल हृदय हो निश्चय ही सज्जनों के संग से दुर्जन भी दया करने लगते हैं, किन्तु कोमल सुगन्धित पुष्पों से मिलने पर भी विरही जनों को दुःख पहुंचाने वाली तुम्हारी आदत नहीं गई यह बड़ा आश्चर्य है । (६)

विरहिणीजनशापवशात्सदा भ्रमति याति कदापि न च स्थितिम् ।
शिशिरमारुत ? दक्षजशापतः सुरमुनि र्भ्रमणं कुरुते यथा ॥७॥

हे शीतलपवन ! दक्ष प्रजापति के शाप से जैसे श्रीनारद मुनि भ्रमण करते ही रहते हैं, ठीक वैसे ही विरहिणी जनों के शाप से तुम भी कभी भी एक जगह नहीं ठहर सकते हो । (७)

यदि भवेत् कलितावयवो भवान मम समीपचरः शरखण्डताम् ।
शृणु नयामि भवन्तमहं तदा कृतिमदृश्यचरस्य करोमि काम् ॥८॥

यदि तुम शरीर धारी होते और मेरे पास आते तो वाणों से तुम्हारे टुकड़े २ कर देता, अब आँख से ओझल का क्या करूं । (८)

अतनुरेव वियोगिजनव्यथां रचयति श्वसनः कठिनेदृशीम् ।
विधिरमुं यदि सद्वपुतां नयेत् नहि तदा विरहातुरजीवनम् ॥९॥

विना शरीर के ही वियोगी जनों को इतनी भारी तकलीफ पहुंचाते हो, अगर विधाता तुम्हें शरीर दे देता तब तो तुम विरही जीवों के मारने में कोई कसर नहीं करते । (९)

मलयपर्वतचन्दनभूरुहस्थितभुजंगविषोच्छ्वसिताऽनिल ? ।
प्रसरति प्रतिवासरमीदृशीपुनरहो तनुदाहकता कथम् ॥१०॥

हे पवन ! मलयाचल पर चन्दन के वृक्षों पर रहने वाले सर्पों के जहरीले श्वास के मिलने से ही एवं प्रतिदिन सम्बन्ध के

कारण तुम विषमय बन गये हो अन्यथा तुम्हारे में शीतलता की जगह शरीर को जलाने की शक्ति कहां से आ गई। (१०)

जगत्प्राणरूपो भवान् शास्त्रगीतः
किमर्थं स्वनाम्नो वृथा ख्यातिमेति।
जगन्मध्यवर्तीनपि त्वं वियुक्तान्
यतः प्राणहीनान् रमण्याः करोति ॥११॥

हे पवन ! शास्त्रों में कहा है कि तुम जगत् के प्राण स्वरूप हो किन्तु अपने नाम की ख्याति को व्यर्थ क्यों बनाते हो जो जगत् के मध्यवर्ती रमणियों के वियोगी जीवों को प्राण हीन कर रहे हो क्या यही आपका प्रसिद्ध गुण है। (११)

केनापि मन्त्रेण निरोद्धुमक्षमो
दुरत्ययावेशतनुर्बृहद्गतिः।
प्रेताधमः प्राणहरो वियोगिना-
मयं करोति भ्रमणं न चानिलः ॥१२॥

जो किसी भी मन्त्र से काबू में न आवे ऐसा भयङ्कर आवेश वाला उग्रगति अधम प्रेत भ्रमण करता हुआ वियोगियों के प्राण हरण करेगा यह पवन नहीं है प्रेत है। (१२)

निशामुखं चुम्बति चन्द्रबिम्बे कला कदम्बाकुलितान्तराले।
वियोगदुःखाब्धिनिमग्नचेता विगर्हयामास पुनस्तमीशः ॥१३॥

इसके अनन्तर वियोग दुःख सागर में डूबे हुए चित्त वाले श्रीकृष्ण कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा को देख कर उसकी निन्दा करने लगे। (१३)

पूर्णो भवानपि शशाङ्क पूर्णिमायां
प्राप्नोति हीनतनुतां तदनन्तरञ्च।
विश्लेषदीनवधपातकतो विचित्र-
मेतत्तवोचितमहो परदुःखदस्य ॥१४॥

हे शशांक ! तुम पूर्णिमा को पूर्ण होने के अनन्तर फिर क्षीण शरीर हो जाते हो, यह तुम्हारा कार्य अनुचित नहीं है क्यों कि वियोगी दीन जनों के मारने का पातक तुम्हें लगा है। कारण यह है कि जो भी दूसरे को कष्ट पहुंचायेगा वह आप स्वयं दुखित रहेगा। (१४)

कुहूमारभ्यस्त्वं भवसि सकलो वृद्धिसहितः
कृताशीर्वादैन प्रिय सहित लोकैः प्रमुदितः।
अमावस्यायां च पति विरहिणी शापवशातः
कलाभि र्हीनत्वं भजसि शृणु पक्षद्वयमतः ॥१५॥

अमावस्या के वाद पूर्णिमा तक तुम्हारी कलायें खूब बढ़ती हैं। यह प्रियजनों के साथ प्रमुदित हो रही प्रियाओं के आशीर्वाद का फल है और पूर्णिमा के बाद अमावस्या तक कलाओं से हीन होना इसमें प्रिय विरह वाली विरहिणियों के शाप का फल है। दोनों ही पक्ष इन दोनों कारणों से सुख दुःख देने वाले समझो। (१५)

शृणु शशांक भवन्त मलंकृतं शुचिकलाभिरमन्दमरीचिकम्।
ग्रसति पर्वणि शापविधुन्तुदो विरहिणो न जहासि तथाप्यहो ॥१६॥

हे शशांक सुनो पवित्र कलाओं से भूषित सुन्दर किरण वाले तुम को ग्रहण पर्व में राहु ग्रास करता है, इसका कारण विरहीजनों का शाप है, परन्तु इतना होने पर भी उन वियोगियों को कष्ट देने में नहीं चूकते। (१६)

त्वयि शशाङ्क विनष्टरुचौसति विरहिणीवध पंककलङ्किते।
भवति मेचकपक्षमिषात्तव प्रियतमा मलिनावयवा निशा ॥१७॥

हे चन्द्र ! विरही जनों के वध रूप कीचड़ से कलंकित तुम्हारी कान्ति के नष्ट हो जाने पर अन्धेर पक्ष के बहाने से

तुम्हारी प्रियतमा रात्रि–मलिन शरीर काली पड़ गई है, यह भी तुम्हारे कर्तव्य का फल है। (१७)

उपरि दर्शित निर्मलविग्रहो ह्लादे निगूहित मेचकताङ्कित।
स्फुरति शीतमयूख भवानतः प्रकटिता तव दुर्जनता क्षितौ ॥१८॥

हे शीतल किरण चन्द्र ! तुम ऊपर में तो देखने से बहुत निर्मल मालूम होते हो, परन्तु हृदय में कालोंछ से अङ्कित हो इसी से तुम्हारी पृथ्वी मण्डल में दुर्जनता विख्यात हो गई हो। (१८)

शिरसि धूर्जटिना कलितो भवान् भवतिविष्णुपदे च भवत्स्थितिः।
जगति पूज्यपदं प्रययावितः कुटिलता तु तथापि गता न ते ॥१६॥

श्री महादेव जी ने तुमको अपने मस्तक पर धारण किया है और तुम्हारी स्थिति विष्णुपद (आकाश) में है। इस कारण तुम जगत में पूज्य पद पर स्थित हो किन्तु फिर भी तुम्हारी कुटिलता नही गई। (१६)

हरि दिशानलयंत्रविनिर्गतो दहन संग वशा दरुणद्युतिः।
विरहिणी हृदय खलु खडितुं सरति वर्तुल लौहिकगोलकः ॥२०॥

पूर्व दिशा रूप अग्नि की भट्टी से निकला, अग्नि के संग से लाल हो गया, लोहे का वर्तुलाकार गोला विरहिणीयों के हृदय को तोड़ने के लिये ही निश्चय ऊपर से आ रहा है। (यह चंद्रमा नहीं लोहे का गोला है। (२०)

विरहदीन जनेसु वृहद्रुषाऽरुण रुचिस्मरकुत्सितभूपतेः।
नभसि राजति तान् विजिघांसतो वदनमेव सखे नहि चन्द्रमा ॥२१॥

हे सखे (मन) देखो यह चन्द्रमा नहीं है-किन्तु विरहीजीवों पर अत्यन्त क्रोध कर उनको मारने के लिये कुत्सित भू पति

कामदेव का अरुण मुख ही जो है, आकाशमें अपना प्रभुत्व दिखा रहा है। (२१)

विरहिणी हृदयाददतिवेगतः स्मर धनञ्जयसंहति रुत्थितः।
ज्वलति खेनसखे विधुमंडलाभकपटात् प्रकटाः किल तत्कणाः ॥२२॥

हे मित्र ! आकाश में चन्द्र मण्डल के बहाने से विरहिणी जन के हृदय से अत्यन्त वेग के साथ कन्दर्प अग्नि का पुञ्ज उठा है। तारों के छल से उस अग्नि के कण विखर रहे हैं। मेरा हृदय इसे देख कर भारी सन्तप्त है। (२२)

शशभिषाद्भवता निज मंडले फणपतिः कलितो हृदि भावये।
स वदनैर्बहुभिर्विषमुद्गिरन् विरहिणां हरते खलु जीवनम् ॥२३॥

हे चन्द्र ! तुमने अपने मण्डल में पाश चिन्ह के बहाने से सर्प राज को धारण कर लिया है। मुझे विचार होता है कि वह फण पति बहुत से मुखों से जहर उगलता हुआ विरही जनों के जीवन को निश्चय ही हरण कर रहा है। (२३)

अमृतमय शरीरं त्वां वदन्त्यज्ञसंघा
विषमगरलपूर्णं हन्त जानाम्यहं च।
हृदय दहनता त्व त्कर्तकाहो कथं स्यात्
विरह विधुरतानामन्यथा चर्षणीनाम् ॥२४॥

अहो चन्द्र ! अज्ञानी जन समुदाय तुम्हें अमृतमय शरीर वाला बतलाते हैं किन्तु मैं तो भयङ्कर विष से भरा हुआ जानता हूं। अन्यथा तुम्हारा दर्शन कर विरह से व्याकुल चर्षणीयों को हृदय में जलन क्यों पैदा होती है, यह सब तुम्हारा ही कर्तत्र है। (२४)

निशाकरत्वेन वदन्ति लौकिका
दोषाकरत्वस्य पदस्य सार्थताम्।

तेनैव-तं दोष खनि वदाम्यहं
पदेन विश्लेषिजनव्यथोदयम् ॥२५॥

लौकिक जन तुमको निशा कर कह कर बताते हैं किन्तु निशाकर की जगह दोषाकर यह सार्थक होता है, क्यों कि वियोगियों को व्यथा पहुंचाने वाले होने की वजह से मैं तुम्हें दोष की खान कहता हूँ। (२५)

(अब कोकिल वर्णन करते हैं)

कलय माकलकूजितकोकिला
कुहुरितं कठिनं विरहार्तिदम्।
तव रुतः श्रवणेन यतः सखे
मम मनो भ्रमते विरहातुरम् ॥२६॥

हे सखा देखो कोकिल आम बृक्ष पर बैठ कर कूजन कर रहा है, इसका कठिन कुहू शब्द विरही जनों को पीड़ा पहुंचाता है। और इसे सुन कर हे कोकिल विरह से व्याकुल हुआ मेरा मन घूम रहा है। (२६)

कलितकालबपुः कुटिलः कलं
वदति कर्णकटु च वियोगिनाम्।
मुहुरहोपि मया परि पृच्छ्यते
बलिभुजि त्वयि कोकिल कोन्तरः ॥२७॥

हे कोकिल ! तुम्हारा कुटिल वपु काला नहीं है, काल है-उस पर भी शब्द ऐसा करते हैं कि वियोगियों के कानों को कडुआ लगता है। इस कारण मैं बार बार पूछता हूं कि काकों में और तुम में क्या अन्तर है। अर्थात् कुछ भी नहीं। (२७)

विरहिमानुषतापकपापतो दहनदग्धसमावयवो भवन्।
तदपि तं न जहासि वचो ध्रुव भवति यत्प्रकृतिः खलु दुस्त्यजा ॥२८॥

वज्रवद्बाणवच्चैव शल्यवच्छूलवत्तथा ।
विशन्ति विरहत्क्रान्ते हृदये तव निःस्वनाः ॥२६

हे कोकिल ! तुम्हारा यह शब्द विरही के हृदय में वज्र की भांति, वाण की भांति, शेल और शूल की तरह प्रवेश कर रहा है । (२६)

त्यक्तो भवाञ्जन्मत एव बन्धुभिः
काकैः पुनः पाल्यत आत्मजो यथा ।
गृहीत पक्षस्त्वमहो विहाय तान्
प्रयाति बन्धूनिति ते कृतघ्नता ॥३०॥

तुम जन्म से ही बंधुओं से त्यागे हुए हो । काकों ने पुत्र की तरह तुम्हारा पालन किया है । जब तुम्हारे पंख आगये तो उन्हें पालने वालों को छोड़कर अपने कुनवे में आ मिले यह तुम्हारी कृतघ्नता किये को न मानना प्रत्यक्ष है । (३०)

चंचद्गन्धवहध्वजो मुकुलिताऽऽम्रात्युच्चसिंहासनः
कूजत्कोकिलदूत उज्वलरुचिभृंगौघवन्दिस्तुतः ।
विच्छेदज्वरजर्जरीकृतहृदां प्राणैर्नियोद्धुं सखे ॥
सोयं कानन मा जगाम नगरं राजा वसन्ताभिधः ॥३१॥

हे सखे देखो ! चंचल गंधवाहक पवन ही जिसकी ध्वजा फैरा रही है । कोकिला रूप दूत सभी ओर सन्देश दे रहे हैं । भ्रमरों के समूह बन्दी बनकर जिसकी विरुदावली पढ़ रहे हैं । आम्र का ऊँचा सिंहासन जिसका बैठने का स्थान है, विरह के ज्वर से जर्जर हृदय वाले जीवों के प्राणों से युद्ध करने के लिए नगर रूप बगीचे में बसन्त नामधारी ऋतुराज महाराज पधारे हुए हैं । (३१)

किममी परिरंभिता लतास्तरुभिः फुल्लतरा रसाधिकाः
विकसत्कुसुमोद्गमच्छलैर्विरहाक्रान्तहृदं हसन्तिमाम् ॥३२॥

देखिये वृक्षों से आलिंगन प्राप्त ये समस्त लतायें प्रफुल्लित तथा रसमयी हो रही हैं। वे लतायें विकसित पुष्पों से उच्छलित होकर विरह से व्यथित हृदय हमें हास्य कर रही हैं (३२)

मृदुला वनवासिनोद्रुमा करुणाख्या मम दुःख दर्शनात्।
मकरन्दभिषेण दुःखिताः परिमुञ्चन्ति किमश्रुनिर्झरम ॥३३॥

कोमल वनवासी ये सब वृक्ष मेरे दुःख दर्शन से करुण हृदय होकर मकरन्द छल से दुःखाश्रु निर्भर का त्याग कर रहे हैं (३३)

अपि काननवासिनः खगा यदि मज्जीवनताभिलाषिणः।
अकृतान्यरुता मुहुर्मुहुर्निगदन्तु प्रिय राधिकाह्वयम् ॥३४॥

और देखिये, वनवासी ये सब पक्षियां बार बार अन्य प्रकार शब्द कर रहे हैं। वे सब यदि मेरे जीने की इच्छा करते हैं तो क्यों राधिका के प्रिय नामों का उच्चारण नहीं करते हैं (३४)

कमनीयकिशोरमूर्तयो वरटाभिर्विचरन्ति हंसकाः।
सरसीरुहसंहतौ सदा कृतपुण्या भ्रमयन्मनो मम ॥३५॥

देखिये, कमनीय, किशोर अवस्था वाले ये सब हंस अपनी हंसिनी के साथ मेरे मन को क्षुब्धित करते हुए विचरण कर रहे हैं। जिनका मन सर्वदा कमल वनों में लगा हुआ है (३५)

शृणु कोकयथा सुरालयो युवयोर्हत वियोगदः स्मृतः।
विरहार्त्तिकृदावयोस्तथा कथितं हा खलु दिष्टमेव तत् ॥३६॥

हे सखा ! सुनो, ये चक्रवाक-चक्रवाकी दोनों अपने विच्छेद दर्शन द्वारा विरह पीड़ित हम दोनों के विच्छेद सूचित कर रहे हैं। (३६)

क्षणात्क्षणोद्वर्धितविप्रलंभ उन्मादितान्तःकरणश्च तेन
दृष्ट्वा स्वकीयं प्रतिविम्वमूचे मत्वा व्रजादागतमंतिकेतम् ॥३७॥

इस प्रकार श्री हरि की वियोग अग्नि क्षण-क्षण में बढ़ने लगी। आपने उन्मादित अन्तकरण से अपने प्रतिबिम्ब को

सामने देखा। आप उसे ब्रज से आया हुआ कोई दूत समझ कर कहने लगे। (३७)

स्वागतोऽसि कुशलं तव मित्र तत्तेवद कथां रमणीयाम्
गोकुले हरिणवन्दित नेत्रा राधिका विधुमुखी सुखमास्ते ॥३८॥

हे मित्र ! आइये, तुम्हारा कुशल है ? कुछ मनोहर वार्तालाप कीजिए। कहिए तो गोकुल नगरी में हरिणगण से वन्दित नेत्रवाली, चन्द्रमुखी राधिका सुखपूर्वक विराजमान है ? (३८)

उत्तरं च नहि किंचिदवाप्य तन्मुख प्रकटितं विरहार्तः ।
अग्रतो व्रजन्नयं विगताशः स्तम्भमुज्वलरुचिं च ददर्श ॥३६

आप उससे कुछ प्रत्युत्तर नहीं प्राप्त हुए। अधिक उसके मलिन मुख को देखकर विरह से पीड़ित होगये। आपकी आशा निराशा होगयी। आपने आगे चलते-चलते समक्ष उज्वल रुचि वाला एक खंभ देखा। (३६)

हेमगौरतर सुन्दर देहा सा मम प्रियतमा नयनाग्रे ।
आगतेति प्रसभं हृदि मत्वा स्तम्भ मेव परिरंभितवान्सः ॥४०॥

"हाय ! सुवर्ण कान्तिवाली मेरी प्रियतमा राधिका आज सामने आगई है" इस प्रकार मन में विचार कर रोदन करते हुए उस खम्भे का परिरम्भण किया ॥४०॥

स्तम्भितेन्द्रियविस्तारः पुलकावलि मण्डितः ।
स्तम्भालिंगनतः कृष्णः स्तंभाकारो भवत्तदा ॥४१॥

उस स्तम्भ का आलिंगन से आप भी स्तम्भ की भाँति जड़ होगये। आपकी इन्द्रिय वृत्तियाँ निश्चेष्ट होगईं। तथा आप पुलकावली से परिभूषित होगये ॥४१॥

चुम्बन्मुखेन प्रतिबिंबितं मुखं स्वकं स्वयं फुल्लतनूरुहद्युतिः ।
सुखेन शीत्कारमुखः स्मरोन्मदः कृष्णः प्रियाश्लेषजवत्सुखंययौ ॥४२

उस खम्भ में प्रतिविम्बित अपने मुख का आपने चुम्बन किया जिससे आप रोमांचित होकर प्रफुल्लित होगये । आपने सुख चित्कार किया तथा काममत्त होकर राधालिंगन की भाँति सुख प्राप्त हुए । (४२)

स्पर्शेन काठिन्यमलं तदीयं ज्ञात्वा ततः किंचिदवाप्तचेष्टः ।
स्तंभं विहायाश्रु विमिश्र नेत्रस्तन्मार्गणाशक्तमना वभाषे ॥४३॥

उसके काठिन्य स्पर्श का अनुभव कर कुछ चेतन प्राप्त हुए, तथा खम्भ का त्याग कर रोदन करते हुए राधिका अनुसन्धान की चेष्टा में आशक्त चित्त होकर बोलने लगे । (४३)

शृणु मन्दिरराज मामकीनं वचनं राजति राधिका त्वदन्तः ।
मम दर्शय तन्मुखेन्दु विम्वं विधुरं नाशय तद्वियोगजन्यम् ॥४४

हे मन्दिरराज ! सुनो, मैं कह रहा हूँ । प्रियतमा राधिका अवश्य तुम्हारे मध्य में विराजमान है । उनके मुखचन्द्रमा का दर्शन कराओ । मेरी वियोग पीड़ा का नाश करो ॥४४॥

अयि चन्द्रभवन्मरीचिगौरा भवता दृष्टचरी यदीन्दुवक्त्रा ।
शिशिरीकृत विष्टपंप्रियां तां गततापं च करोतु दर्शयित्वा ॥४५

अनन्तर आप इन्दु के लिए कहने लगे–हे चन्द्र ! तुम्हारी कान्ति की भांति गौरवर्णा चन्द्रमुखी राधिका को यदि तुमने देखा है तो प्रेयसि शीतलकारिणी उसका दर्शन करा कर मेरे ताप को दूर करो । (४५)

जगति कोपि न दृश्यत ईदृशोझटिति यः खलु संगमयेत्प्रियाम् ।
विरहविक्लवितान्तर मद्य मां किमथवा दयितानिकटं नयेत् ॥४६॥

अहो, इस जगत में ऐसा कोई नहीं दीखता है जो कि प्रिया राधिका मिलन करावें । अथवा विरह पीड़ित हृदय, मुझको लेकर राधिका के निकट उपस्थित करावें । (४६)

इत्युत्कण्ठाकवलितमना वाष्प संरुद्धकण्ठो-
नेत्रांभोभिः पुलकपुलका न्निःसरद्भिश्च सिंचन ।
वैवर्ण्येनाक्रमितवदनो राधिकां तां स्मरन्सन्
विश्लेषार्तिव्यथित हृदयो हा विलापं चकार ॥४७

इस प्रकार आप उत्कण्ठा से ग्रसित हृदय होकर राधिका का स्मरण करते-करते विलाप करने लगे। उनकी वाणियाँ गद्गद् हो गयीं तथा आप नयनधाराओं से भीज गये। आपके वदन में विवर्णता छा गयी और आपका हृदय वियोग-पीड़ा से अत्यन्त आतुर हो गया॥ (४७)

अन्तः समुत्थविरहानलवर्चिमाला
शङ्के मुहुः परिणता गुरु वृद्धि माप्ता ।
उल्लंघ्य चित्तमथ पूर्णमहो मुखेन
द्वारेण वाक्य मिषतः प्रकटो वभूवुः ॥४८

पहले तो विरहाग्नि की कणावली हृदय के भीतर उठी थी। अब ऐसी प्रतीति होने लगी कि वह बार-बार बढ़कर चित्त से उछल मुख के रास्ता से वाणी छल में प्रकट होगयी॥ (४८)

कादम्बिनीव सुख लुब्ध शिखावलस्य
कादम्बरीव मदिरामद लोलुपस्य ।
वल्लीव फुल्लकुसुमा मधुपस्य यद्वत
सात्मोददा मम भविष्यति राधिका किम् ॥४९

आपका विलाप इस प्रकार था—हाय! कब वह श्रीराधिका अग्निदग्धव्यक्ति के लिए मेघमाला की भाँति, मदलोलुप के लिए कादम्बरी नामक मदिरा की भाँति और भ्रमर के लिए प्रस्फुटितलता की भाँति मेरी आनन्ददायिनी होगी ? (४९)

चलन्नितम्बा कठिनोन्नतस्तनीस्मिताभिरामोज्वलदन्त माधुरी ।

भूयोपि किं भाग्यवशाद्भविष्यति क्षीणोदरी लोचनगोचरी मम ॥५०

हाय ! फिर क्या चञ्चलकटिवाली, कठिन उन्नत स्तन वाली मन्दहास्यों से सुमधुरा, उज्ज्वलदन्त वाली, क्षीणोदरी राधिका मेरे भाग्यवश नयन के गोचर में आवेगी ? (५०)

नृत्यादि वैदग्ध्यकला विशारदा वक्त्रेण विक्षिप्त सुधांशु शारदा।
रोमद्युतौ मारसकेशराधिका ममान्तरे हन्त चकास्तु राधिका ॥५१

हाय ! नृत्य-वैदग्धी कलाओं में परम पण्डिता, मुख के द्वारा शरत्कालीन चन्द्रमा का तिरस्कार करने वाली सारस के शर से अधिक शोभायमान रोमावली धारिणी, श्रीराधिका मेरे हृदय में विराजमान हों ॥ (५१)

यानेन निर्भर्त्सितमत्तवारिणीं संश्लेषनायोद्यतमन्निवारणीम्।
कलिन्द कन्या विपिने विहारिणीं द्रक्ष्ये कदाहं निज चित्त हारिणीम् ॥ ५२

हाय ! मैं कब मत्तहस्ति चाल वाली, आलिंगनार्थ उद्यत हमको निवारणकारिणी, कालिन्दी तट विपिन में विहरणशील, निज चित्त की हारिणी राधिका का दर्शन करूँगा ? (५२)

लसन्मंजुमालां स्फुरत्केशजालां सुविस्तीर्णभालां मदानन्दमालाम्।
गुणौघै विशालां ममस्वान्तशालां प्रमोदालवालां दिदृक्ष्यामि वालाम् ॥ ५३

अहो ! मैं मनोहर मालाधारिणी, सुन्दर केशवाली, विस्तार-भाल शालिनी, मेरी आनन्द माला स्वरूपिणी, गुणों से विशाल मेरी हृदयाधार, प्रमोदपूर्णा, वाला राधिका को देखने के लिए चाहता हूँ ॥ (५३)

मामकीनहृत्षडंघ्रिफुल्लपुष्पवाटिका गात्रबिम्बविस्फुरद्विचित्र चारुशाटिका।

कौमुदीपतिप्रभावहारिवक्त्रबिंबिनी वीक्षणेन मांकरोतु सोत्सवं नितम्बिनी ॥ ५४ ॥

वह नितम्बिनी राधिका दर्शन दान से हमें उत्साहित करें। जो मेरे हृदय रूप भ्रमर के लिए पुल्लायमाना वाटिका है तथा जिसने निज अंग में विचित्र नीलाम्बर धारण किया है और जो अपने मुख बिम्ब से सर्व्वत्र कुमुदमय करने वाली है ॥(५४)

मणिकलापकलापकलापितां रुचिर कूलदुकूलकरम्बिताम् ।
नवविलेपनलेपनलाञ्छितांचतुरतांचितचंचललोचनाम् ॥ ५५ ॥
कनककंकणकेलिलसत्करां कपटकोपकुतूहलकन्दलाम् ।
सकलकोककलाकुशलाधिपां कुमुदबन्धुमुखीं कमलेक्षणाम् ॥५६॥
कमलकोमलकान्तकलेवरां कुटिलकुञ्चितकुन्तलमालिकाम् ।
कलितकोकिलकंठकलस्वनां कनककुंभकुचांकलयेकदा ॥ ५७ ॥

मणिमय नूपुरों के झंकार से मनोहारिणी, मनोहर वस्त्र-धारिणी, नवीन लेपन से लेपनांगी, चतुर-चञ्चल लोचन वाली, हाथों में सुवर्ण कंकण धारिणी, कौतूहल के वश कपट कोप करने वाली, समस्त कोककला में कुशलराज, चन्द्रमुखी, कमलनयना, कमल की भाँति कोमल मनोहर शरीर वाली, टेढ़े कुञ्चित केशों में माला धारिणी, कोकिल की भाँति कंठ-रव करने वाली, कनककलस की भांति कुचशालिनी श्रीराधिका को कब देखूँगा ॥ (५५–५६–५७)

विस्तीर्णपीनमदुरस्थलवैजयन्ती कल्लोलिनी सुरतकेलिरसामृतस्य ।
भूयोऽपि किंचटुलचंपकचारुवर्णाराधा गमिष्यति मदक्षिपथावरोहम् ॥ ५८ ॥

अहो ! विस्तार तथा परिपुष्ट मेरे वक्षःस्थल में बैजन्तीमाला स्वरूपिणी, सुरतकेलिरसामृत की नदी रूपा, चंचल चम्पक की

भांति मनोहर वर्ण, श्रीराधा पुनः क्या मेरे नेत्र पथ में आवेगी ? (५८)

(युग्मकं) अनर्घ्यतारुण्यमदेन पूरितौप्रोच्चण्डतद्बाहुपदाति रक्षितौ ।
मध्यप्रदेशे कुचछद्मना धृतौ तत्रापि वस्त्रावरणेन गोपितौ ॥ ५९ ॥
अनल्पभारात् कटिकार्श्यकारकौत्यक्तौन वाह्वंतरतस्तथापितौ ।
कदातदीयौ कलधौतसंपुटौ मद्धस्तसंगाकुलितौ भविष्यतः ॥ ६० ॥

कब अनर्घ्यतारुण्य मद से परिपूर्ण, चण्डायमान उनके बाहु युगल से संरक्षित, कुच छल से धृत, तो भी वस्त्रांचल से गुप्त अत्यन्त भार से कटि में क्षीणताकारी उत्पन्न, हृदयदेश में विराजित, सुवर्णसंपुटरूप, उनके स्तनयुगल मेरे हस्त संग से आकुलित होगा ॥ (५९–६०)

अमंदसुखमाधुरी मदनमोदमुत्पादयन्
मनोहरमरीचिभिर्मम मनोऽलिमुन्मादयन् ।
मदीयमधुमंजुलं मुखसरोजमुल्लासयन्
गमिष्यति मम प्रिया नयनसन्निकर्षं कदा ॥ ६१ ॥
अनङ्गमदमत्ततारुणविमुग्धनेत्राञ्चला
कपोलयुगविस्फुरत्कनककुण्डलालंकृता ।
समौक्तिकसुनासिकाभरणचुम्बितोष्ठस्थला
विलाससरसेक्षितैः किमवलाहि मां द्रक्ष्यति ॥ ६२ ॥

अहो मेरी प्रिया श्रीराधा कब अत्यन्त सुख माधुरीमय कन्दर्प आनन्द उत्पादन करती हुई, मनोहर अंगकान्तियों से मेरे मनःभ्रमर को उन्मादित तथा मेरे मधुमनोहर मुख कमल को उल्लसित करती हुई मेरे नयन समक्ष में विराजित होगी ? अहो ! जिसके नेत्राञ्चल अनंग मदमत्तता के कारण विमोहित अरुण वर्ण है जिसके दोनों गण्डस्थल शोभायमान कनक कुंडल से

अलंकृत है तथा ओष्ठस्थल नासिका के मुक्ताभूषणों से परिशोभित है वह अबला सरस नेत्रविलासों से क्या हमें देखेगी ।। ६१-६२

दमनं कलहंसकीर्तिलक्ष्म्या गगनं राजति यत्पदारविन्दे ।
समनं विरहस्य तन्मुखस्योन्नमनं चिन्तय चित्तचञ्चरीक ।। ६३ ।।

अरे चित्त भ्रमर! राधाचरणारविन्दों के कलहंस कीर्त्ति शोभा दमनकारी गमन को और विरह नाशकारी, नम्र मुख कमल का चिन्तन करो ।। (६३)

वदनं सदनं स्मितामृतस्य गमनं गञ्जित कोकिलं यदीयम् ।
नलिनं मलिनं करोति नेत्रं तलिनं तां युवतीं विभावयामि ।। ६४ ।।

अहो ! उस रमणी के स्मितामृत के गृहरूप वदन की, कोकिल गंजित बचन की और कमल मलिनकारी नेत्र की भावना करता हूँ ।। (६४)

मत्तापहानिपटुपाटलपङ्कजाक्षी ताम्बूलरागरसरञ्जितसुन्दरोष्ठी ।
दन्तामलद्युतितिरस्कृतकुञ्जराजी भ्रूचापचुम्बितमुखी
किमुलप्स्यते सा ॥ ६५ ॥

अहो ! वह राधिका क्या मेरे लिए प्राप्त हो सकती है ? जिसके नेत्र मेरे ताप नाश में अत्यन्त पटु तथा पाटल वर्ण, कमल रूप हैं। जो ताम्बूल राग से रञ्जित सुन्दर ओष्ठ वाली है तथा जिसने अमल दन्तों की कान्तियों से कुंज समूह का तिरस्कार किया है और जो भ्रूधनु से चुम्बित मुख वाली है ।।(६५)

विभाते संजातेऽरुणपतिविधुमुखीं
स्फुरज्जृम्भोद्गामरुणनयनां स्त्रस्तकवरीम् ।
अनल्पालस्यांगीं विलुलितकचालम्बितमुखीं
कदा लोकिष्येऽहं स्खलितवसनां कुंददशनाम् ॥ ६६ ॥

अहो ! मैं कब अरुण किरणों से रञ्जित प्रभात के समय चन्द्रवदनी राधिका को देखूँगा ? उस समय उसके जृम्भण वेग अरुणनयन, गिरी हुई कवरी, अत्यन्त आलस्य से परिपूर्ण श्री अंग, वस्त्रांचल से रहित श्रीमुख, गिरे हुए वसनों का दर्शन कर प्रसन्नता प्राप्त करूँगा ॥ (६६)

शरीरदेशोदितयौवनांकुरा विलाससौख्योदयवन्धुरान्तरा ।
कलेवरोत्संगितभूषणाम्बरा भिनोतु सा मां रमणी गुणाकरा ॥ ६७ ॥

जिनके शरीर में नवीन यौवन मौजूद है, जिनके अन्तर विलास - सुख से मनोहर है तथा जो शरीर में विविध भूषण वस्त्रादि पहने हुई है वह रमणी, गुण समुद्र रूपिणी श्रीराधा हमें प्रसन्न करें ॥ (६७)

श्यामाकरद्युतिहराननविंवशोभा श्यामालकावलिविराजितगंडयुग्मा ।
श्यामातरङ्गसमशीतलवाहुमध्या श्यामा सदैव मदुरःस्थल—
मालिकास्तु ॥ ६८ ॥

वह श्यामा राधा सर्व्वदा मेरे वक्षःस्थल में मालारूप से विराजमान रहें। जो भुजाओं की कान्ति से मनोहर है तथ जिनका शोभायमान मुखकमल है, जिनके गण्ड युगल में श्याम-अलकावली बिखरी हुई है तथा जिनके वाहु युगल सम-शीतल हैं ॥ (६८)

रतिश्रमोद्यच्छ्रमसर्बतोमुखी त्वं मां त्यजेतीरितसर्वतोमुखी ।
शिलीमुखास्वादितमालिका प्रिया शिलीमुखापांगरुचा समीक्षिता ॥ ६९

जो रतिश्रम से चञ्चलमुखी है और "तुम मुझे छोड़ देओ" इस प्रकार बार-बार मुख से बोलती रहती है, जिनकी वक्षःमाला में भ्रमरगण लोलुपायमान हैं तथा जिनकी भ्रमर की भाँति कटाक्ष दृष्टि है वह राधा क्या मेरे लिए दर्शन देगी ? (६९)

रजनीकरभातिलालिते यमुनाकूलकदम्बकानने ।
ललितादिसखीजनान्विता नटवेशं किमु मां मिलिष्यति ॥ ७० ॥

चन्द्रकिरणों से रंजित यमुना के तट कदम्ब कानन में ललितादि सखियों के साथ क्या वह राधिका नटवेशधारी हमसे मिलेगी ? (७०)

कलशीनवनीतसंभृतां कनकीयां वहतीं च मस्तके ।
किमुरोत्स्यामि गिरीन्द्रगह्वरे विपिनेऽहं करदानकैतवात् ॥ ७१ ॥

नवनीत पूर्ण सुवर्ण कलस को मस्तक पर धारण करती हुई गिरिराज गह्वर में करदान छल से क्या वह श्रीराधा हमें मिलेगी ? (७१)

प्रियांशदेशार्पितवामवाहुः परेण लीलाकमलं धुनानः ।
तच्चुम्बनायोद्यतवक्रविम्वः कदार्कपुत्रीयतटे चरामि ॥ ७२ ॥

अहो ! मैं कब प्रिया के स्कन्ध देश में वाम भुजा का अर्पण कर लीलकमल को फिराता हुआ तथा लीलकमल का चुम्बन करने के लिए उद्यतशील हो जमुना के तट में विचरण करूँगा ॥ (७२)

हरण्यगर्भचातुरीप्रकाशकाङ्गसौष्ठवा,
हिरण्यगर्भ रत्नजुष्टभूषणौघशोभिता ।
कदम्बपुष्पकोरकाङ्कितायकर्ण कुण्डला,
कदा सदातिसुन्दरी मदग्रगा भविष्यति ॥ ७३ ॥

कब निरन्तर अति मनोहरा श्रीराधा मेरे आगे आकर विराजमान होगी ? जो अपने अंग सौष्ठव से हिरण्यगर्भ ब्रह्मा की सृष्टि चातुरी को प्रकाश करने वाली है, जिसने सुवर्ण खचित रत्नमय भूषणों को धारण किया है तथा जिनके कर्ण कुंडलों में कदम्ब पुष्पों के कोरक संलग्न हैं ॥ (७३)

चरणचुम्बितनूपुरनिःस्वनै रचितमामककर्णयुगोत्सवाम् ।
मधुरकण्ठविनिर्जितसारिकां हृदय चिन्तय तामभिसारिकाम् ॥ ७४ ॥

रे हृदय ! जिन चरणों में चुम्बित नूपुरों के शब्दों से मेरे कर्णयुग की उत्सवदायिनी, मधुर कंठरवों से सारिकालाप को तिरस्कारिणी, अभिसारवती श्रीराधिका का चिन्तन करो । (७४)

सौरतमन्दिरकल्पिततल्पां राजितमौक्तिकभूषणकल्पाम् ।
मन्मथभावविभावितगात्रां हृन्मे वाञ्छति वासकसज्जाम् ॥ ७५ ॥

सुरत मन्दिर में शय्या की रचना करने वाली, शोभायमान मुक्तामय भूषणों से भूषितांगी, मन्मथ भाव में विभावित शरीर-वाली, वासकसज्जा स्वरूपिणी श्री राधिका के लिए मेरा मन चाहता रहता है ॥ (७५)

जाता निशा हंत गतार्द्धभागा तथापि कान्तो मम नागतोऽभूत् ।
किमन्यरामावशतां जगामेत्युत्कण्ठितां तां मनसा स्मरामि ॥ ७६ ॥

"हाय, रात्रि तो बीतने लगी, तो भी प्राणवल्लभ का आगमन नहीं हुआ, क्या वे अन्य किसी रमणी के वश में आ गये" इस प्रकार बोलने वाली, उत्कंठिता श्रीराधा को मन में स्मरण करता हूँ ॥ (७६)

वृन्दामुखादागतमन्दिरं मां ज्ञात्वा गता तत्र च मामदृष्ट्वा ।
प्रोद्यद्विषादानलतापदीना सा माँ कदा प्राप्स्यति विप्रलब्धा ॥ ७७ ॥

वह विप्रलब्धा श्रीराधिका मेरे लिए कब प्राप्त होगी ? जो वृन्दा के मुख से मन्दिर में मेरा आगमन सुनकर वहाँ गयी तथा हमें न देखकर विषादाग्नि से तपायमान होकर दीन की भाँति हो गयी है ॥ (७७)

नखक्षतमुरःस्थलं नयनयुग्मकं लालसं,
सकज्जलरसाधरं त्रुटितशुक्तिजातस्रजम् ।

विलोक्य कुपिता कदा कुटिलवीक्ष्यणैरुत्सवं,
प्रदास्यति मनोहराभरणमण्डिता खण्डिता ७८

मनोहर भूषणों से मंडिता, खंडिता नायिका श्रीराधा मेरे नखक्षतों से चिन्हित उरस्थल, आलस्य प्राप्त नयन युगल, कज्वलचिन्ह से चिन्हित अधर, छिन्न-भिन्न वक्षःमालाओं को देखकर कुपित हो कुटिल वीक्षणों से आनन्द प्रदान करेगी ॥(७८

तत्सन्निधिं माननिवारणाय गते मयि क्रूरकटाक्षपातैः ।
अये हि निर्लज्ज शठेति वाक्यैर्हर्षं कदा धास्यति भामिनी सा ॥७

मैं जब मान छुड़ावे के लिए उनके पास जाऊँगा तो वह क्रूर कटाक्ष दृष्टि से हमको देखती हुई "अये निर्लज्ज ! हे शठ !" इस प्रकार वचनों से कब हर्ष प्रदान करेगी ? (७६)

त्यक्त्वा तन्निकटं मयि याते माननाशनाशक्ते ।
पश्चात्तापयुतां तां कलहान्तरितां कदेक्षिष्ये ॥८०

उनके निकट से निराश होकर जब मैं चला जाऊँगा तब वह पश्चात्ताप के साथ कलहान्तरिता अवस्था को प्राप्त हो जावेगी ॥८०॥

लज्जितीकृतनिजाङ्गचंचला चंचलाक्षियुगला करिष्यति ।
उद्भवं किमु सुधातरंगिणी रङ्गिणी सुरतमन्दिरे मम ॥८१

वह रंगिणी राधिका कब सुरत मन्दिर में अपने चंचल श्री अङ्ग को लज्जित करती हुई, मेरी आनन्ददायिनी होगी ? जिनके दोनों नेत्र चंचलायमान हैं तथा सुधा की नदी रूपिणी है ॥८१॥

मद्धृदि स्मरसुखस्य नायिका नायिकासुभगवर्णयोषिताम् ।
कंठदेशगतहारनायका नायिका भवतु मे समीपगा ॥८२

मेरे हृदय में कन्दर्प सुख को लाने वाली, नायिका शिरोमणि

रूपा, कंठ में नायक की भाँति मनोहर माला धारिणी, श्रीराधा मेरे समीप प्राप्त होवें ॥८२॥

कौंकुमीयरमणीयचित्रका चित्रकाव्यमधुरेरितानना ।
अस्तु मंडनमरीचिवंधुरा वंधुराजिवलिता मदग्रगा ॥८३

कुंकुम रस से मनोहर चित्रित, मुख से विचित्र काव्यरस-सुधा उद्गारकारिणी, भूषणों की कान्ति से मनोहरा श्रीराधा वन्धुजनों से परिवेष्टिता होकर मेरे समक्ष विराजमान होवें ॥८३॥

मदनमदविमुग्धं चञ्चलापाङ्गरम्यं
सरसनलिननेत्रं फुल्लगण्डस्थलाभम् ।
मदननृपतिहर्म्यं प्रीतिवल्ल्यालवालं
१मधुररसतडागं राधिकास्य दिदृक्ष्ये ॥८४

अहो ! मदन मद से विमुग्ध, चंचल अपांगदृष्टि से मनोहर, सरस कमल नेत्रवाला, गण्डस्थलों से प्रफुल्ल, मदन राजा के गृह रूप, प्रीतिलता का आलवाल, मधुर रस का सरोवर श्री राधिकामुख का मैं अवलोकन करूँगा ॥८४॥

सोत्कण्ठैः सरसैः सुधासुमधुरैः सापत्रपैः सादरैः
सुस्निग्धैः सुखदैः सुशोभनपदैः सौभाग्यसंसूचकैः ।
वाक्यैर्वर्द्धितकर्णमूलकुहरानन्दां मदीयं मनः
कान्तां कान्ततरारविन्दनयनां द्रष्टुं समुत्कण्ठते ॥८५

उत्कण्ठा के साथ, सरस, सुधा सुमधुर, लज्जाशील, सादरमय, सुस्निग्ध सुखद, सुशोभित, सौभाग्यसूचक वाक्यों से कर्ण कुहर में आनन्द देने वाली, मधुर से मधुर कमलनयना, कान्ता श्री राधिका को देखने के लिए मेरा मन उत्कण्ठित हो रहा है ॥८५॥

अहो विधे दीनदयानिधे शृणु मद्भाषितं दैन्यतया सुवासिताम् ।
यद्देहि तद्देहि वधूविहीनतां मा देहि कस्यापि कदापि कुत्रचित् ॥८६

---

१ "मधुर मधुर हास्यं" इत्यादि पाठः

अब आप विधाता के लिए प्रार्थना करते हैं–हे दयानिधि विधाता ! दैन्य से सुवासित मेरे वचन को सुनिये । किसी को जो देना चाहते हो सो दीजिए परन्तु किसी को कभी वधूविहीन मत कीजिये ॥८६॥

वापी प्रेमसुधारसस्य नगरी तारुण्यपृथ्वीपते
मंजूषा गुणसंचयस्य सुभगा चानन्दमन्दाकिनी ।
प्रत्यंचा रतिसुन्दरी रतिपतेर्बाणासनी या मम
दृग्वीथीपथिकत्वमेष्यति कदा सा कामिनी भामिनी ॥८७

प्रेम सुधारस की सरसी, तारुण्य राजा की नगरी रूपा, गुणसमूह की पिटारी, सौभाग्यवती, आनन्द सुरधूनी, रति-सुन्दरी की बाणावली, काम की बाणासनरूपिणी, वह कामिनी, श्रीराधा कब मेरे नेत्र पथ में पथिक बनेगी ॥८७॥

मया रासारम्भः पशुपरमणीभिः सह कृतो
विहारः कुञ्जेषु प्रतिदिनमहो येषु रचितः ।
कलिन्दानन्दिन्यां जलविहरणं चीरहरणं
परावर्तिष्यन्ते पुनरपि च किन्ते शुभदिनाः ॥८८

अहो जिन दिनों में मैंने गोपरमणियों के साथ रासारम्भ किया है, कुंजों में जो प्रतिदिन विहार किया है तथा जमुना जल में उनके साथ जो जलविहार, वस्त्रहरणादि लीलाएँ की हैं क्या वे सब शुभदिवस पुनर्वार आयेंगे ? ॥८८॥

तद्वृन्दावनपुष्पितद्रुमलतावीथ्यां गवां पालनं
वंशीवादनमुज्ज्वलादिसखिभिः पारावतीगायनम् ।
श्रीराधादिसमस्तगोपदयितासंरोधनं कैतवात्
तत् स्वप्नेप्यतिदुर्लभं मम सुखं द्वारावतीवासिनः ॥८९

बृन्दावन के पुष्पित वृक्षलतादि मार्ग में जो मैंने गौओं का

चारण किया, उज्ज्वलादि सखाओं के साथ वंशीवादन, पक्षियों के गानानुकरण, राधादिक गोपरमणियों का छल से मार्गरोधनादिक किया है, वह सब मेरे लिए स्वप्न में भी अति दुर्लभ हो रहे हैं। क्योंकि अब तो मैं द्वारिकावासी होगया हूँ। वह वृन्दावन सुख मुझे कहां मिल सकता है ॥८९॥

इत्थं यद्यपि सर्ववैभवयुतो ब्रह्मादिभिः संस्तुतः
सम्प्राप्तो यदुमण्डलीकृतनतिं राजाधिराजोपि सन्।
निर्व्याजां व्रजवल्लवीजनरतिं कृष्णस्तथापि स्मरन्
राधायाङ्गतरङ्गपङ्क्तिमनाः संरुद्धकण्ठोऽभवत् ॥९०

इस प्रकार श्री हरि यद्यपि समस्त वैभवों से संयुक्त तथा ब्रह्मादि देवताओं से संस्तुत, यादवों से नमस्कृत और राजाधिराज रूप में विराजमान हैं तौ भी छल रहित, व्रजरमणियों का अनुराग स्मरण करते हुए, राधा की अपांगदृष्टि में तरङ्गित होकर गद्‌गद् कंठ होगये ॥९०॥

श्री गोविन्दमुनीन्द्रवन्दितपदद्वन्द्वारविन्दासव-
प्रोन्मत्ताखिलचित्तवृत्तिसुखदे सारङ्गसङ्गोदिते।
काव्ये नन्दकिशोरचन्द्ररचिते श्रीकीरदूताभिधे
पूर्तिं कृष्णविलापवर्णनमयः सर्गो द्वितीयोऽगमत् ॥९१

श्री गोविन्द के मुनिगण वन्दित चरणकमल युगल के मकरन्दपान उन्मत्त समस्त जनों की चित्तवृत्ति में सुखदाई, कौतुकपूर्ण, नन्दकिशोरचन्द्र के द्वारा विरचित इस शुकदूत नामक काव्य का कृष्णविलापमय द्वितीयसर्ग समाप्त हुआ ॥९१॥

इति श्रीमद्‌गीतगोविंदकर्तृ श्री जयदेव प्रभु वंशोद्भव श्री नन्दकिशोरचन्द्रगोस्वामिकृते श्रीशुकदूतमहाकाव्ये द्वितीयः सर्गः समाप्तः।

—०—

तृतीयः सर्गः

अथातुरः खिन्नमना विलप्यमुहुर्मुहुर्विस्मृत देहकृत्यः ।
अमन्पुनः केलिनिशान्तमध्ये ददर्श कीरं मणिपञ्जरस्थम् ॥१

अनन्तर शोकातुर श्रीहरि विषण्ण हृदय से बार बार विलाप करते करते देहकृत्य भूल कर भ्रमण करने लगे। आपने केलिगृह के मध्य में मणि पींजर स्थित कीरराज को देखा ॥१॥

माणिक्यरत्नद्युतिचारुचंचुं हरिन्मणिद्योतपतत्रियुग्मम् ।
कण्ठस्फुरत्कोकनदच्छविन्तं पश्यन् सतर्षं मुदितो वभूव ॥२

माणिक्यरत्न की भांति मनोहर चंचुवाला, इन्द्रनीलमणि कान्ति की भांति पंखधारी, कोकनदकान्ति की तरह कंठवाला उस शुकराज को देख कर आश्चर्य के साथ प्रसन्न हुए ॥२॥

मनोहरव्याहृतमुत्तमाङ्गं व्यासात्मज श्रीशुकवद्विदग्धम् ।
शुकं व्रजान्तर्गमनोचितं तं चित्तेन सन्देशहरं स मेने ॥३

आपने मनोहर बोलन से उत्तमांग, व्यासनन्दन शुकदेव की भांति विदग्ध उसको व्रज में भेजकर सन्देश देने के लिए चित्त में विचार किया ॥३॥

उत्तार्य कृष्णो मणिपंजरं तदा निःसार्य तस्माच्चमुखेन तं शुकम् ।
निवेशयामास सरोजसुन्दरे करे कलोच्चारणकौतुकाननम् ॥४

आप ऊपर से मणिपींजर उतार कर उससे उस शुक को बाहिर लाए तथा मनोहर बोलिन से सुन्दर मुख उसे कमल की भांति सुन्दर अपने हस्त में बैठाने लगे ॥४॥

कण्डूयमानं निजचंचुसूच्या पक्षौ पुनर्धूनितविग्रहं सः ।
संलालयंस्तं करमार्जनेन चुम्बन् वभाषे यदुवंशनाथ ॥५

वे यादवपति (कम्पायमान शरीर वाला), अपने चोंच से

पंख को खुजाल कर, उस शुक पक्षि का हस्तमार्जन के द्वारा लालन करते २, चुम्बन करते हुए बोलने लगे ॥५॥

हे कीरराज शृणु मद्वचनं द्रुतं त्वं स्वस्थान्तरो भव सखे तव भद्रमस्तु।
ज्ञात्वा सुशीलमनुरक्तमुखं भवन्तं गोप्यं स्वकार्यमपि यत्प्रकटीकरोमि ॥६

हे कीरराज ! मेरा वचन सुन, तुम शीघ्र स्वस्थ हो जाओ। तुम्हारा कल्याण हो। तुमको सुशील, अनुरक्त हृदय जानकर गोपनीय अपने कार्य को बतलाता हूँ ॥६॥

मत्प्राणकोटिशतवाञ्छितवक्त्रबिम्बा राधा मम प्रियतमा विरहाकुलांगी।
सा शीर्यति प्रतिदिनं विधुरेण तस्मात्त्वंतत्र गच्छ ममवाचिकवृन्दहारी।७

मेरी प्राण कोटिशत प्रिया राधा विरह में व्याकुलांगी होकर वृन्दावन में मुहुर्मुहु दुःख वेदना उठा रही है। अतः तुम मेरा सन्देशहारी बन कर वहां जाओ ॥७॥

वियोग दावानलदग्धविग्रहा भवन्ति चान्या अपिगोपवल्लभा।
जवेन संजीवयतागतो व्रजे प्रियस्य संदेशसुधातिवर्षणैः ॥८

वहां और भी गोपरमणियां वियोगाग्नि से दग्धहृदया होकर विराजमान हैं। तुम शीघ्र वहां जाकर प्रिय मेरा सन्देश सुधवर्षण से उन्हें जीवित करो ॥८॥

स्थितं शरीरं खलु तत्र तासां प्राणाश्च मय्येव सदा वसन्ति।
तत्प्रीतिरीतिंगत एव तत्र सखे भवान् द्रक्ष्यति किं वहूक्त्या ॥९

वहां उन्होंने मुझे अपने प्राणों का समर्पण कर दिया है, केवल शरीरमात्र पड़ा हुआ है। हे सखा ! मैं अधिक क्या कह सकता हूँ। तुम वहां जाने पर उनकी प्रीति रीति का अनुभव करोगे ॥९॥

या प्रेमवीथी विधिशंकरादिभिः ससाधनैर्हन्त सदाभिलस्यते।
पद्मालया यस्य कृतेऽकरोत्तपः सा वर्तते तासु सखे सदाऽचला ॥१०

जिस प्रेमरीति को ब्रह्मा-शिवादि देवता कठिन साधनाओं के द्वारा प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं, स्वयं लक्ष्मीदेवी जिसके लिये अभी भी तपस्या कर रही है। वह अचला प्रीतिरीति उनमें सर्वदा विराजमान रहती है ॥१०॥

मुखोदिता प्रेमरुषा रुषापि वाणी यथा हर्षकरीहि तासाम्।
तथा न वेदान्तसरस्वतीया पुराणवाणी मम वल्लभास्ति ॥११

उनकी प्रेमकोप से मुखनिर्गत कठोरवाणियां मेरे लिये जिस प्रकार हर्षकारी होती हैं, उस प्रकार वेदान्त वचन, पुराण वचन समूह प्रियकर नहीं है ॥११॥

तत्प्रेमलेशोदयमप्यशक्यैर्वक्तुं सखे किं मम वाक्यवृन्दैः।
एतावदेव श्रवणीयमुच्चैर्मां बाधते हन्त तदङ्ग दुःखम् ॥१२

हे सखा! उनके प्रेम का लवलेश भी मैं वचनों से नहीं वर्णन कर सकता। केवल दूर से श्रवण करता रहता हूँ, जिससे मेरे शरीर में अत्यन्त पीड़ा बाधा उपस्थित होती रहती है ॥१२॥

तस्मात्सखे जीवन साभिलाषो मच्चेद्भवान् सम्प्रति गोष्ठमेव।
प्रयाहि तासां विरहार्तिमुच्चैर्दूरीकुरुत्वं किल वाचिकैर्मे ॥१३

हे सखा! यदि तुम मेरे जीने का अभिलाष रखते हो तो शीघ्र अभी गोष्ठ के लिए जाकर मेरे सन्देश से उनकी अत्यधिक विरह पीड़ा को दूर करो ॥१३॥

प्रत्यूह शून्यान्ययनानि सन्तु शीघ्रं पुनर्हन्त समागमोस्तु।
तवास्तु हृद्वांछितकार्यसिद्धिर्मम प्रसादेन शुकेन्द्रमौले ॥१४

तुम्हारे गमनों में कोई बाधा नहीं हो, तुम उन्हें सन्देश के द्वारा सुखी करके शीघ्र आजाओ। हे शुकराज शिरोमणि! मेरे प्रसाद से तुम्हारी हृदयवांछित कार्यसिद्धि हो ॥१४॥

व्रजेन्द्रगोष्ठे व्रजतः सखे तव मार्गो ह्यवक्रः शुक कथ्यते मया।
त्वच्छीघ्रयानेन सखे ममेप्सिता कार्यस्य सिद्धिस्त्वरिता भविष्यति॥१५

हे शुक सखा ! व्रज में जाने के लिए तुम्हारा मार्ग मैं बता रहा हूँ, जिससे तुम शीघ्र जाकर मेरे कार्य की सिद्धि कर आय जाओगे ॥१५॥

भुञ्जन्मुखेनामृतदाडिमीफलं फलानि शीतं सरितां जलं पिबन् ।
पथि श्रमं वृक्षभुजावलम्बनैर्विनाशयन् गच्छ सुखं व्रजान्तरे ॥१६

तुम अपने मुख से अमृत की भांति दाडिमी फल तथा अन्यान्य फलों का भोजन कर तथा नदियों का शीतल जल पान कर वृक्षशाखाओं का आश्रय से मार्गश्रम को दूर करते हुए व्रज के लिए सुखपूर्वक जाओ ॥१६॥

पूर्वं त्वितः श्रीशुक दृश्यमानं शिलोच्चयं रैवतकाभिधेयम् ।
यथेच्छ मच्छ स्रवितांम्बुशोभं त्वं गच्छ गुच्छप्रकटद्रुमाख्यम् ॥१७

हे शुक ! तुम पहले यहां से यात्रा करके उच्चशिखर वाला, पवित्र स्वच्छ झरनाओं के जल से शोभायमान, गुच्छ गुच्छ वृक्षों से युक्त रैवतनामक पर्वत में आना ॥१७॥

यत्र स्फुरन्निर्झरवारिसिक्ता मतल्लिका राजति मल्लिकाली ।
बासन्तिका वासित गन्धवाहा यूथीलता च्छादितकुंजभूमिः ॥१८

जहां निर्झरों के जलों से सिंचित होकर मल्लिकालताएं मौजूद हैं, जहां के पवन वसन्त संबंधि पुष्पों से सुवासित हैं तथा जहां की कुंजभूमि जुहीलताओं से आच्छादित हो रही होगी ॥१८॥

शृङ्गैर्नभो मण्डलमाक्रमन्तं निकुञ्जपुंजै विकसद्धसन्तम् ।
यं चञ्चरीकध्वनितं विलोक्य गोवर्द्धनस्य स्मरणं प्रयामि ॥१९

शिखरों से आकाशमण्डल स्पर्शकारी, निकुंजसमूह से शोभायमान, भ्रमरों के गुंजार से गुंजरित जिसको देखकर मुझे गोवर्द्धन का स्मरण होता रहता है ॥१९॥

लतागलत्पुष्पमरंदसिक्ता विचित्ररागोदयरक्तश्रृङ्गाः ।
अनेकपेन्द्रा इव संलसन्ति सुगंडशैला यदुपत्यकायाम् ॥२०

जिसकी उपत्यका में लताओं से विगलित पुष्पमकरन्दों से भीजे हुए तथा विचित्र गैरिकादिधातुओं से रक्तवर्ण श्रृङ्गवाले छोटे छोटे शिखर हस्तियों की भांति विराजित हैं ॥२०॥

मदप्रवालैर्मलिनीकृतायना कादम्बिनीसुन्दरताविनिन्दकाः ।
कान्तांशविन्यस्तमनोज्ञ पुष्कराः सम्यक् चरन्ति द्विरदा यदन्तरे ।२१

जिसमें मदक्षरण से मलिन वदन, मेघमाला तिरस्कारी हस्तिगण अपने शुंड को हस्तिनी के कंधे पर लगाकर विचरण कर रहे होंगे ॥२१॥

तदन्तदंशीकृतवप्रशोभः कुरङ्गरङ्गस्थल मध्यभागः ।
सोऽयं तटोद्यत्कदलीकदम्बः प्रमोदयिष्यत्ययने भवन्तम् ॥२२

हस्तियों के दांतों से दंशित, शोभाशील, हरिणियों के द्वारा क्रीड़ा भूमीरूप से परिवेष्टित, केला वृक्षराजी तुम्हारे गमन में आनन्द प्रदान करेगी ॥२२॥

ततः परं विन्दुसरोवराख्यं त्वं गोमतीसङ्गममाक्रमंस्तम् ।
मुनीश्वरैः सेवितसर्वभागं तपःस्थलं यास्यसि कर्दमस्य ॥२३

अनन्तर तुम गोमती संगम का अतिक्रमण कर सर्वत्र मुनियों से सेवित, कर्दमऋषि के तपस्यास्थल विन्दु सरोवर नामक स्थान में उपस्थित होंगे ॥२३॥

सुधा तिरस्कृच्छिशिरं तदीयं पीत्वा जलं कोकिलकाकलीक ।
अकर्दमे कर्दमवासतीर्थे स्थित्वा भवान् यास्यति कीर शान्तिम् ॥२४

हे कोकिल की भांति मधुर बोलने वाले कवीरराज ! सुधा-तिरस्कारी, शीतल, उसका जलपान कर उस कर्दम से रहित कर्दमऋषि के वास स्थान में रह कर शान्ति-प्राप्त होंगे ॥२४॥

यत्रैव देवाद्यविनर्क्य रूपं योगैर्विमानं प्रकटीचकार ।
तपः कृशाङ्गोऽहदेवहूतिप्रीत्यै मुनिः कर्दम–नामधेयः ॥२५

जहाँ कर्दममुनिराज देवहूति की प्रसन्नता के लिए कठिन तपस्या के द्वारा कृशांग होकर पश्चात् योग साधनाओं से देवादि के तर्कण से रहित मनोहर रूप प्राप्त हुए ॥२५॥

तीरद्वये योगिजनाऽऽश्रमान्विता स्नानेन संसारपरिश्रमापहा ।
सरस्वती बुद्धिमता मिनामला सरस्वती नाम नदी विराजते ॥२६

वहां सरस्वती नामक पवित्र नदी तुम्हें मिलेगी । जिसके दोनों तट पर योगियों के आश्रम मौजूद हैं तथा जो संसारश्रम का दूर करने वाली और सरस्वती देवी की बुद्धि से अगम्या है ॥२६॥

तत्तीरदेशे मुनिसेवितं त्वं क्षेत्रं सखे सिद्धपुराभिधेयम् ।
पुण्यप्रदं द्रक्ष्यसि पुण्यवद्भिर्लभ्यं नरैः संयतचित्तवाग्भिः ॥ २७॥

उसके तट देश में मुनियों से सेवित, पुण्यप्रद, संयत चित्त वाले पुण्यवन्त मनुष्यों के दुर्लभ, सिद्धपुर नामक क्षेत्रराज का तुम दर्शन करोगे ॥ २७ ॥

तत्रैव निर्धूतमलंशरीरं मनोः सुताया भुवि संचचार ।
रूपेण यस्या इतिवर्णितां तां सत्सिद्धिदां वीक्ष्यसिसिद्धिदांत्वम् २८

उस मनुसुता की भूमि पर तुम शरीर का मल दूर कर अर्थात् पवित्र हो विचरण करना । वह स्थान साधुओं की मनः-कामना पूर्ण करने वाला परम सिद्धिदाता है । उसका दर्शन कर तुम्हारी भी कार्य्यसिद्धि अवश्य होगी ॥ २८ ॥

पाखंडिभिः खंडितमुग्रतर्कैर्विनष्टकान्ति कपिलात्मनाहम् ।
प्रवर्तयामास पुनश्च सांख्यं ज्ञानंनिमित्तीकृतमातृमूर्तिः ॥ २९ ॥

मैंने वहाँ माता को निमित्त कर कपिल रूप में सांख्यज्ञान का प्रवर्तन कराया था। जो कि पाषण्डों के उग्रतर्कों से नाश प्राय हो गया था ॥ २६ ॥

स्नात्वैव गन्तव्यमलंध्यवीर्य ? ततः परं यत्तत्र कार्यसिद्धिः ।
सम्पूर्णतां यास्यति शीघ्रमेव पुण्येन तेनैव हि देवहूत्याः ॥ ३० ॥

हे महावीर्य्यशील ! वहाँ स्नान करने पर तुम्हारी कार्य्य-सिद्धि अवश्य होगी। देवहूति की पुण्यकृपा से तुम्हारा गमन कार्य्य सफल होगा ॥ ३० ॥

तदोत्पतन्मार्गमतिक्रमंस्त्वं भुञ्जन्स्वभोज्यं नगरांश्च पश्यन् ।
मार्तण्डकोटिद्युतिवन्दनीयां पुरीं भवान्द्रक्ष्यति तां सुदाम्नः ॥३१॥

वहाँ से उड़ता-उड़ता मार्ग का अतिक्रमण कर तथा अपने खाद्य का भोजन कर नगरों को देखता हुआ तुम कोटि सूर्य्य कांतिवाली सुदामा जी की नगरी में पहुँचोगे ॥ ३१ ॥

दरिद्रखिन्नस्य मदीयदर्शनं स्वसुन्दरी प्रेरणतः कुशस्थलीम् ।
समागतस्यैव विलोक्य दीनतां रात्र्यन्तरे याचविनिर्मिता मया ।३२।

दरिद्राक्रान्त वह सुदामा अपनी पत्नी की प्रेरणा से द्वारका-पुरी में आकर मेरे दर्शन को प्राप्त हुआ था। मैंने उसको दरिद्र देखकर एक रात्रि के भीतर उस पुरी का निर्म्माण करवाया था ॥ ३२ ॥

सुमेरुशृङ्गद्युति मन्दिरावली विराजते यत्र मयूखपाततः ।
विरोचनस्य द्विगुणं प्रकाशिता नितम्बिनी भूषणधारणाद्यथा ॥ ।३३।

उस नगरी में सुमेरशिखर की कान्तिवाली मन्दिरावली विराजमान है। उनमें चन्द्रकिरण पड़ने पर अत्यधिक शोभा हो जाती है। नितम्बिनी वाला भूषण धारण कर जिस प्रकार शोभ-

माना होती है ठीक उसी प्रकार वह मन्दिरावली चन्द्रकिरण से परम शोभायमान है। किम्वा मन्दिरों की सुवर्णकान्ति से विरोचन की सृष्टि की भाँति वह नगरी दीख जाती है ॥ ३३ ॥

मणिप्रदीपद्युतिराजितेषु पर्य्यङ्कशोभा समलंकृतेषु ।
दासीशतैः सेवितपादपद्मो मित्रं मम क्रीडतियद्गृहेषु ॥ ३४ ॥

मणिमय प्रदीपों की कान्ति से शोभायमान, पलङ्क शोभाओं से अलंकृत उन गृहों में मेरा मित्र सुदामा शत शत दासियों से सेवित होकर क्रीड़ा कर रहा है ॥ ३४ ॥

दत्ता मया यद्यपिदेवगम्यो पुरी तस्मै समास्यान्न तदीयतण्डुलैः ।
अयत्नसाध्या मम शापतः सखे ते तण्डुलास्तस्य तु दुर्लभा शुक ॥३५

हे सखा कीर ! मैंने यद्यपि देवदुर्ल्लभ उस पुरी को प्रदान किया है तो भी वह उसके द्वारा प्रदत्त उन तण्डुल कणों का प्रतिदान रूप नहीं था। वे तण्डुलकण मेरे लिए महान् दुर्ल्लभ हैं ॥ ३५ ॥

गत्वा तदन्तःपुरमध्यभागे त्वया न वाच्यं मम नामधेयम् ।
ज्ञात्वा मदीयं च यतो भवन्तं भविष्यति त्वत्पथरोधकः सः ॥ ३६

हे शुक ! तुम उस पुरी के बीच में जाकर मेरा नाम किम्वा "मैं उनका भेजा हुआ दूत कीर हूँ" इस प्रकार सम्बन्ध नहीं बतलाना। क्योंकि मेरा सम्बन्ध जानकर वे सब तुम्हें रोकेंगे। अतः तुम्हारा गमनकार्य्य विलम्ब होगा ॥ ३६ ॥

ततः परं गच्छ सखे यथेच्छं तीर्थोत्तमाङ्ग धरणीधराख्यम् ।
स्थित्वा क्षणं तत्र कृतश्रमान्तः पुनर्व्रज त्वं गुरुवासभूमिम् ॥ ३७

अनन्तर हे सखा ! तुम यथेच्छा के साथ तीर्थ श्रेष्ठ धरणीधर नामक स्थान पर पहुँचोगे। वहाँ कुछ काल विश्राम करके

फिर सान्दीपनि गुरु की वासभूमि अर्थात् उज्जयिनी नगरी में उपस्थित होना ॥ ३७ ॥

पुष्प प्रधानोरुफलप्रधानक्रीडावनै श्चोपवनैः सशोभा ।
स्फुरत्सुवर्णालयवैजयन्ती कुर्यात् पुरी ते मुदमुज्जयन्ती ॥ ३८

पुष्पों से फलों से शोभित उपवनों से परिभूषित वह नगरी तुम्हारा आनन्द प्रदान करेगी। जिसमें सुवर्णमय गृहावली मौजूद है तथा जो अपने प्रभाव से सब को जय कर रही है ॥ ३८ ॥

सान्दीपिनिर्नाम समस्त शास्त्रनिष्णातपूज्योत्तमपादपीठः ।
भूदेववंशामलकीर्तिचन्द्रो यस्यो वसत्युत्तमवर्णनीयः ॥ ३९

जहाँ समस्त शास्त्र में पण्डित, ब्राह्मणवंश के पवित्र यशः चन्द्रमा स्वरूप, उत्तम चरित्र वाले सान्दीपनि नामक मुनिवर विराजमान हैं। जिनके चरणकमलों की बड़े-बड़े पंडित पूजा करते हैं ॥ ३९ ॥

यस्माच्चतुः षष्ठिकला अधीतवान् रामेण सार्द्धं कृतलोकशिक्षणः ।
तत्पाद पद्मेषु नमस्कृतिर्मम निवेदनीया भवता मुहुर्मुहुः ॥ ४०

मैंने लोकशिक्षा के कारण बलरामजी के साथ उनसे चौषठ विद्या का अध्ययन किया है। उनके पाद-पद्म में मेरा बार-बार नमस्कार कह कर निवेदन करना ॥ ४० ॥

तपः स्थलं लोकपितामहस्य प्रसन्नचित्तश्च तदीक्षणेन ।
त्वं पुष्करं पुष्करमण्डलीभिर्वृतं भवान् द्रक्ष्यति तीर्थराजम् ॥ ४१

अनन्तर पितामह ब्रह्मा का तपस्या स्थान, कमलों से मंडित पुष्कर नामक तीर्थराज का दर्शन करोगे। उसके दर्शन से तुम प्रसन्नचित्त हो जाओगे ॥ ४१ ॥

स्नायी त्रिलोकस्थिततीर्थ पूरे नरो भवेद्यद्यपि कीरराज !
यदंगसङ्गेन विना फलाप्तिं न याति कुर्यात् स तव प्रमोदम् ॥ ४२

स्नात्वा तदीये सलिलेऽपि पश्चान्निर्धूतपापो व्रज गोष्ठवीथीम् ।
पुण्येन तीर्थाटनजेन गोष्ठे बिना न शक्तोविबुधोपि गन्तुम् ॥ ४३

हे कीरराज ! यद्यपि मनुष्य त्रिलोकस्थित तीर्थों में स्नान करता है तो भी उस तीर्थ के संग बिना फल प्राप्त नहीं करता है। वह तीर्थराज तुम्हारा प्रमोद प्रदान करेगा उसके जल में स्नान कर निष्पाप हो पीछे गोष्ठ मार्ग के लिए गमन करना। क्योंकि तीर्थाटन पुण्य के बिना देवतागण भी व्रज में नहीं जा सकते हैं ॥ ४३ ॥

दुष्प्राप्यमिन्द्रप्रमुखैः सुरेश्चैर्गन्तुं मदीयं व्रजमद्य तस्य ।
तत्रो पदव्यां शकुनाः शुकेन्द्र सखे भविष्यंति शुभस्य दूताः ॥ ४४

वह मेरा व्रज इन्द्र प्रमुख देवताओं से दुष्प्राप्य है। आज तुम वहाँ जाओगे। हे सखा ! हे शुकराज ! तुम्हारी गमन पदवी में शुभदायी शकुन हों ॥ ४४ ॥

एवं क्रमेण पथि दुस्तरशैलवृन्दानाक्रम्य
चान्तरगतान्पुटभेदनाँ स्त्वम् ।
तीर्त्वातिविस्तृततरांश्च वहुप्रवाहान् प्राप्स्यते
सुखभरोभविता व्रजान्ते ॥ ४५

इस प्रकार क्रम से मार्ग में दुस्तर पर्वतों का अन्तः प्रसन्न के साथ अतिक्रमण कर और विस्तृत बहु नद-नदियों का पार होकर व्रज में सुखपूर्वक पहुँचोगे ॥ ४५ ॥

ग्रामानतीत्य बकुलद्रुमपुष्पशोभान्
वृष्णेः पुरीं जिगमिषोस्तव वामभागे ।

गोवर्द्धनं शिखरशोभितधातुरागः
प्रीतिं प्रदास्यति सखे नयनाग्रगम्य ॥ ४६

वकुलवृक्ष पुष्पों से शोभित ग्रामों का अतिक्रम कर मथुरानगरी जाने वाला तुम्हारे वामभाग में गोवर्द्धन पर्व्वत पड़ेगा जो कि गैरिकादि धातुओं से शोभित शिखर वाला है। वह तुम्हारे लिए अत्यन्त प्रीति प्रदान करेगा ॥ ४६ ॥

मखंनिराकृत्य परंपरागतं शचीपतेर्गर्वनिगीर्णितात्मना ।
मया यदीयः शुक कर्मवादिना नन्दादिभिः कारयितो महोत्सवः ॥४७

मैंने जहाँ परम्परा प्राप्त गर्व्वात्मना इन्द्र के यज्ञ का निराकरण कर नन्दादि गोपों के द्वारा कर्म्मवाद प्रवर्तन के साथ महामहोत्सव करवाया था ॥ ४७ ॥

विनष्टयज्ञे सुरलोकपाले निरन्तरं वर्षति कोपपूर्णे ।
शिलाश्मभिः स्वब्रजरक्षणार्थं करे मया सप्तदिनं धृतो यः ॥ ४८

उस समय यज्ञनाश कराने के कारण इन्द्र ने कुपित होकर जल-शिलादि का वर्षण किया। मैंने भी व्रजरक्षा के लिए अपने कर-कमल में सात दिवस पर्य्यन्त उसको धारण किया है ॥ ४८ ॥

निरस्तमानेन नमस्कृतोऽहं संपूजितस्तेन सनिर्जरेण ।
यत्राभिषिक्तःशुक राजते तद्गोविन्दकुण्डं यदुपत्यकायाम् ॥ ४९

हे शुक ! उसकी तटभूमि में गोविन्दकुंड मौजूद है । जहाँ इन्द्र ने अभिमान रहित होकर देवताओं के साथ मेरी वन्दनाकर, मेरी पूजा तथा अभिषेक किये हैं ॥ ४९ ॥

राधादिगोपाम्बुजलोचनानां मया कृतं यत्र वयस्यवृन्दैः ।
निरोधनं सा गिरिराजमध्य-भागस्थिता राजति दानघट्टी ॥५०

उस गिरिराज के मध्य भाग में दानघाटी नामक स्थान मौजूद है। जहाँ मैंने सखाओं के साथ कमलनयना राधादि गोपबालाओं का निरोधन किया है ॥ ५० ॥

यत्प्रान्तदेशे कमलाकुलाङ्गी मदीयलीलास्थलचिन्हतीरा ।
तरगंरङ्गोच्छलितान्तरङ्गा रसाङ्किता मानसपूर्वगङ्गा ॥ ५१

जिसके प्रान्तभाग में कमलों से शोभित, मेरी लीलास्थली से चिन्हित तट वाली, तरंगरंगों से उच्छलित, रसमयी मानस-गंगा विराजमान है ॥ ५१ ॥

प्रसूनवल्लीचयसंश्लिषत्तटं पङ्केरुहाच्छादितसर्वतोमुखम् ।
विराजते यन्निकटेऽच्छजीवनं तीर्थं सखे पुष्पसरोवराभिधम् ॥ ५२

जिसके निकट कुसुमसरोवर नामक तीर्थराज विराजित है। जिसका जल अत्यन्त स्वच्छ है तथा जिसके तटभाग पुष्प-लताओं से परिवेष्टित है और जो सर्व्वत्र कमलों से आच्छादित है ॥ ५२ ॥

मया सखे नष्ट वृषासुरेण कलङ्कितोयं दयिताभिरित्थम् ।
विकत्थितेनात्मशरीरशुद्ध्यै यन्निर्मितं शोभितसर्वतीर्थम् ॥ ५३
अरिष्टकुण्डेति जनप्रसिद्धं तत्पश्चिमे श्रीवृषभानुजायाः ।
कुण्डं विभाति स्मरगर्व जाग्रत्तन्नेत्रयोस्तौ समतां लभेते ॥ ५४

हे सखे ! जब मैंने वृषरूप अरिष्टासुर का नाश किया है तब उस समय "आप कलङ्कित हुए हैं" इस प्रकार प्रिया राधिका ने कहा। मैंने अपने शरीर पवित्र करने के लिए जिसको सर्व्वतीर्थ रूप में प्रकटित किया है, वह अरिष्टकुंड है। उसके पश्चिम में वृषभानुनन्दिनी का कुंड शोभायमान है। दोनों कुंड कन्दर्प गर्व से गर्व्वित श्रीराधा के दोनों नेत्रों की समता लाभ कर रहे हैं ॥ ५३–५४ ॥

इत्थं तीर्थावलिकवलितस्तुङ्ग शृङ्गान्तरङ्गो
वंशीनादद्रवितहृदयो मत्पदस्पर्श सौख्यः ।
मत्क्रीडाया वसतिरमलःप्रस्तरः कन्दराढ्यः
प्रेमानन्दं तव नयनयोर्धास्यति क्ष्माभृदीशः ॥ ५५

इस प्रकार तीर्थावली से परिवेष्टित, उच्च शृङ्ग वाला, वंशी-नाद से द्रव हृदय, मेरे पदस्पर्श से सुखी, मेरी क्रीड़ा की वसती भूमी स्वरूप, पवित्र प्रस्तरमय, कन्दराओं से युक्त पर्वतश्रेष्ठ गिरिराज तुम्हारे नयनों में प्रेमानन्द प्रदान करेगा ॥ ५५ ॥

किं हेमाद्रिः सुभगशिखरस्तेजसां संहतिः किं
किं वा स्वर्गो विबुधवलितः किं प्रकाशस्य मूर्तिः ।
विद्युद्वृन्दावलिवलयिता हन्त कादम्बिनी किं
दूराद् दृष्टा तव यदुपुरी भ्रान्तिमापायिस्यत् ॥ ५६

अब तुम दूर से मथुरापुरी का दर्शन करोगे । जिसका दर्शन से तुम्हारे बहु प्रकार भ्रम होगा । उसे कहते हैं--क्या सुन्दर शिखर वाला सुवर्णाचल है ? किंवा तेजों का पुञ्ज है ? अथवा देवताओं से वेष्टित स्वर्गलोक है ? क्या प्रकाश्य की मूर्ति विराजमान है ? किंवा विद्युद् घटा से सुवलित मेघमाला है ? ॥५६॥

ततः प्रसूनद्रुमसंश्लिषत्पदं भृङ्गालिझंकारचमत्कृतिं भवान् ।
लसत्प्रतीरोपवनैः सरोवरैर्यस्योपशल्कं सरसं गमिष्यति ॥ ५७

अनन्तर पद-पद में पुष्प-वृक्षों से शोभित, भ्रमरों के झंकार से चमत्कार, तीरों के उपवन-सरोवरादिकों से शोभायमान, मनोहर, सरस उपत्यका अर्थात् निकटस्थित भूमी पर तुम पहुँचोगे ॥ ५७ ॥

शृंगैःस्फुरन्तं पुरटोपनद्धैर्नभःस्पृशद्गोपुरतोरणाभम् ।
प्राकारमाकारमनोहरं त्वं विलोक्य दूरान्मुदितो भविष्यसि ॥ ५८

दूर से सुवर्ण खचित शिखरावली से शोभायमान,आकाश-स्पर्शी, आकार से मनोहर गृह का अवलोकन कर तुम प्रसन्न हो जाओगे ॥ ५८ ॥

प्रविश्य तां स्फाटिकभूमिशोभितां
गारुत्मतद्योतनिगीर्णमन्दिराम् ।
मंदैर्द्विपानां शुक सिञ्चिताजिरां
दृष्ट्वा भवान् यास्यपति नेत्रसार्थताम् ॥ ५९

स्फटिक भूमि से शोभित, गारुत्मत मणिमय, उस मन्दिर का अवलोकन कर तुम नेत्र सार्थकता को प्राप्त करोगे । हे कीर ! उस मन्दिर के आंगन में झुण्ड के झुण्ड हस्ति चीत्कार करते हुए घूम रहे होंगे ॥ ५९ ॥

अन्तःपुरं भाति निकेतकेतुभिर्विराजितं रत्नमयं यदन्तरे ।
गोपानसीद्वार पुरोवलम्बिनी साट्टालिका स्तंभकरंवितान्तरा ॥ ६०

जिसके भीतर गृहों से विराजित, रत्नमय अन्तःपुर विलास कर रहा है । जिसमें अनेक द्वार तथा बहुत अट्टालिका और अनेक खंभ विराजमान हैं ॥ ६० ॥

इतस्ततः स्वेप्सितकार्यसिद्धयैर्जनैव्रजद्भिर्वलितं समन्तात् ।
पार्श्वद्वये वित्तपचित्रगेहैः शृङ्गाटकं यत्र विशालमस्ति ॥ ६१

उसके चारों ओर अपने अपने कार्य्यों की सिद्धि के लिए मनुष्यगण घूम रहे होंगे । दोनों पार्श्व में विचित्र गृहों से युक्त विशाल शृङ्गाटक अर्थात् खरंजा विराजमान है ॥ ६१ ॥

विनिर्मिता भान्ति हरिन्मणिप्रभाः शिल्पेन यत्रा रुणचंचवः शुकाः ।
निशाम्य नास्तम्निकटं भवान् यदि स्व बन्धु बुद्ध्येष्यति तर्हि मूढ़हृत् ॥ ६२ ॥

उसमें जगह जगह इन्द्रनीलमणि कान्ति वाले, अरुण चञ्चु धारी शुक पक्षियों के निर्म्माण किये गये हैं। उनको देखकर अपने बन्धुओं के ज्ञान से यदि तुम उनके निकट जाओगे तो तुम मूढ़ करके प्रसिद्ध होओगे। तुम्हारी मूढ़ता से हमारी कार्य्य सिद्धि नहीं हो सकती है ॥ ६२ ॥

आवेशनैरायतनैः सुराणां प्रपाभिरध्व प्रमुखस्थिताभिः।
पृथक् पृथक् देश विराजिताभिः शालाभिरश्वद्विरदोचिताभिः ॥ ६३

सौधोभिराच्छुरितकेन मणिच्छटानां
संशोधितैर्धनवतां कमनीयहर्म्यैः।
श्रेणी सभाभिरमलप्रतिभाभिरेषा
त्वन्नेत्रयोर्वितनिता मथुरा प्रमोदम् ॥ ६४ ॥ युग्मकम्

हे कीर! वह मथुरानगरी तुम्हारे नेत्रों में प्रमोद दान करेगी। जिसमें मध्यरास्ता के दोनों पार्श्व में देवदुर्ल्लभ, चौड़े गृह, सत्र परस्पर आमने सामने मौजूद मिलेंगे। उनमें पृथक् पृथक् स्थान सब ऐसे मिलेंगे जिनमें कि हस्तिशाला, अश्वशाला-विराजित होंगे। मणिकान्तियों की छटा से सुन्दर अट्टालिकाएं, धनियों की मनोहर हवेलियाँ, श्रेणीवद्ध, पवित्र, प्रतिभामयी सभाएं मौजूद होंगी ॥ ६३-६४ ॥

मदोद्धतस्तद्रजको मया हतः पुनश्च कुब्जा सरलीकृता सखे।
यत्रायुधं भग्नमहो शचीपतेः सा वीक्षणीया शुकराज पद्धतिः ॥ ६५ ॥

हे शुकराज! मैंने उस मद से उद्धत रजक को जहाँ मारा था, फिर जहाँ कुब्जा को सरल किया था और जहाँ इन्द्र के आयुध को भग्न किया, वह मार्ग तुमसे अवश्य दर्शनीय है। अर्थात् उन स्थानों को तुम अवश्य देखना ॥ ६५ ॥

मत्सौन्दर्यं विलोकनोत् कलिकया व्याप्तान्तराणां सखे
प्रेमोद्गारपरिप्लुतेन मनसा मामागतानां पथि ।
दृष्टुं पत्तनयोषितां नयनयोः कक्षाभिरुत्साहवान्
यत्रेन्दीवरसुन्दराभिरभवं प्रत्यङ्गमालिङ्गितः ।। ६६ ॥

हे सखे ! मैं जहाँ मेरे सौन्दर्य्य दर्शन उत्कण्ठा से व्याप्त हृदया, प्रेमोद्गार से परिलिप्त मन वाली, मार्ग में आगमनकारी हमें देखने के लिए आयी हुई पुर रमणियों की नयनकक्षा में उत्साहित होकर प्रत्यङ्ग के द्वारा आलिंगन प्राप्त हुआ था। अर्थात् इन्दीवरनयना पुररमणियों ने नयनकटाक्ष के द्वारा मेरे सर्व्वांग का आलिंगन किया है ।। ६६ ॥

रङ्गस्थली कंसनृपस्य तत्र स्थित्वा त्वया हे शुक वीक्षणीया ।
चाणूरमुख्यान सवलान्निहत्वा मल्लान् मया यत्र हतो नृशंसः ॥ ६७॥

हे शुक ! तुम वहाँ ठहर कर कंसराजा की रंगस्थली को देखना। जहां मैंने चाणूर प्रमुख समस्त मल्लों का विनाश कर नृशंस कंस को भी मारा था ।। ६७ ॥

मध्येपुरीतामवगाह्य मित्र पुनर्भवान् द्रक्ष्यति भक्तमुक्तम् ।
भूतेश्वराख्यं शिशिरांशुचूडं तत्क्षेत्रपालं वरदाधिराजम् ।। ६८ ।।

हे मित्र ! इस प्रकार मथुरापुरी के बीच में अवगाहन कर फिर तुम भक्तराज, भोगादि चिन्हों से रहित, चन्द्रचूड़ उस क्षेत्र पालक, वरदान में सर्वेश्वर, भूतेश्वर नामक शिवस्वरूप का दर्शन करोगे ।। ६८ ॥

अन्यानि तीर्थानि वहूनि संति मयाप्यगण्यानि शुकेन्द्र तत्र ।
किं वर्णनेन स्मृतिवैभवेन प्रयोजनं कर्म विना निरर्थम् ॥ ६९

हे शुकराज ! वहाँ और भी बहुत तीर्थ मौजूद हैं। जिनकी

संख्या मैं नहीं कह सकता हूँ। उनका वर्णन से मेरे नाना प्रकार स्मरण आ सकता है। उनमें मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। हे शुकराज ! अनन्तर संयतचित्त से मथुरा पत्तन का ।। ६६ ।।

शुकाधिनाथाथ पतत्रसाधनः पुरः प्रतोलीखगाह्य यत्नतः।
ततः परं वीक्ष्यति वारिवाहिनीं पुरप्रतीरे च कलिदनन्दिनीम् ॥ ७०

अवगाहन कर पश्चात जलवाहिनी, कलिन्दनन्दिनी श्रीयमुना का दर्शन करोगे ।। ७० ।।

किं नीलशाटी पतिता बलस्य नैलोत्पलनी किं पुरवन्धुरस्रक्।
किं धूमधारा स्मरपावकस्य ददाति या भ्रान्तिमहोजनानाम् ।। ७१

क्या बलदेवजी का नीलाम्बर पड़ा हुआ है ? किंवा पुररमणी जन की मनोहर नील कमलों की माला है ? अथवा कामाग्नि की धूम्ररेखा है ? इस प्रकार मनुष्यों का जो नाना प्रकार का भ्रम उत्पन्न करने वाली है ।। ७१ ।।

देशान् पुनन्ती दुरिताभिरक्तान् संक्रम्य वृन्दावनतीरभूमिम्।
सखे वहन्ती मथुरामयोच्चैः संशोभयन्ती शुक वंशरत्न ॥ ७२

हे सखा ! हे शुकवंश में रत्नस्वरूप ! जो दुरितों से संयुक्त देशों को पवित्र करती हुई वृन्दावन के निकट प्रदेश में विचरण कर रही है। जिससे मथुरानगरी की शोभा अतिशय बढ़ती रहती है ।। ७२ ।।

समानवर्णा मम नाम कृष्णा स्वशोभयाधिक्कृतशैलजाता।
भक्तैरुपास्यामपि जातभावैस्तवाप्युपास्या च चतुर्थ पत्नी ॥ ७३

जो हमारे समान वर्ण वाली है तथा जिसका नाम कृष्णा है, जिसने अपनी शोभा से अन्य नदियों को धिक्कार दिया है, जो जातगत भक्तों की उपास्या तथा तुम्हारी भी उपास्या है और मेरी चौथी पत्नी है ।। ७३ ।।

प्रफुल्लपंकेरुहसंहतिस्फुरत्सुगंधसत्केशरपीतरोचिषः ।
कलोन्मुखास्या वरटाविलासिनः क्रीडंति यस्यां शुक मानसोकसः ॥ ७४

जिसमें प्रफुल्ल कमलावली के सुगन्धित उत्तम केशरों से पीले, मधुर शब्दकारी, हंसीगण में विलास परायण, मानस हंस क्रीड़ा करते हैं ॥ ७४ ॥

तरङ्गाम्बु संगांबुजे भृङ्गरङ्गा लसद्युग्मकोकां वृहन्नष्टशोकाम् ।
सखे सुन्दरांगीं मवाँश्वारुभंगी तदा द्रक्ष्यतेतां गुणौघैरुपेताम् ॥ ७५

हे सखा ! तरंगावली से परिपूर्ण जल वाली भ्रमरों से संयुक्त कमलों के द्वारा नाना रङ्ग की प्रदात्री, शोकनाश वाले दोनों चकवा-चकवी से शोभायमाना, सुन्दरांगी, मनोहर तरङ्ग वाली, गुणों से युक्ता उस जमुना का तुम दर्शन करोगे ॥ ७५ ॥

तटद्वये रत्नमरीचिवद्धा मध्ये लसत्कुट्टिममण्डपाली ।
समन्ततः सारसचक्रवाकैर्यद्बद्धसोपानततिश्चकास्ते ॥ ७६ ॥

उसके दोनों तट में रत्नों से निबन्ध, मनोहर छत्रियों से विभूषित, सारस-चक्रवाकों से परिवेष्ठित, सोपानराजी (सीढ़ियां) मौजूद हैं ॥७६॥

स्पर्शेन यस्याःपृषतस्य शीघ्रं चतुर्भुजत्वं लभते खगोपि ।
आपादयिष्यन्नवन्या कलिन्दकन्या तव नेत्र मोदम् ॥७७

जिसके जलकण का स्पर्श से पक्षि भी शीघ्र चतुर्भुज स्वरूप हो जाता है वह नवीन तटवाली कलिन्दकन्या जमुना तुम्हारे नेत्रों का आनन्द प्रदान करेगी ॥७७॥

तटस्थवृक्षप्रतिविम्बरम्या गम्या नरैः पुण्यपवित्रचित्तैः ।
निमज्जनोन्मज्जनमण्डिताङ्गी यमस्वसा भातिरुपोत्तमानाम् ॥७८

तटस्थित वृक्षों के प्रतिविम्ब से मनोहरा, पवित्र-पुण्य चित्त वाले मनुष्यों से गम्य, निमज्जन-उन्मज्जन से मण्डितांगी, यमभग्नी वह यमुना विराजमान है ॥७८॥

हत्वा नृशंसंकिल कंसभूपं विश्रान्तितां यत्र गतः सखेऽहम् ।
विश्रान्तितीर्थस्तव तत्र हर्षं विधास्यते लोचन गोचरः सन् ॥७९

वह विश्रान्तितीर्थ तुम्हारे नयनों में आकर प्रचुर हर्ष प्रदान करेगा । जहाँ मैंने नृशंस कंसराजा को मार कर विश्राम लिया है ॥७९॥

तदीयतीरहरित्कदम्बे शीतानिलस्पर्शसुखेस पुष्पे ।
स्थित्वा क्षणं विश्रमयन् प्रसन्न विलोलपक्षः सुखमाप्स्यसित्वम् ॥८०

हे शुक ! यमुना के तटस्थित, शीतल पवन स्पर्श से सुख देने वाला पुष्पों से विभूषित, हरे कदम्ब वृक्ष पर बैठ क्षणकाल विश्राम कर प्रसन्नता के साथ अपने पंख को हिलाता हुआ सुख-पूर्वक विराजमान होना ॥८०॥

ततः समुत्थाय पुनर्व्रजन्तं वृन्दावनस्याभिमुखं भवन्तम् ।
अक्रूरघट्टः सुखदो भविष्यन् मार्गे द्रुमाश्लिष्टलता समूहः ॥८१

वहां से उठकर फिर तुम वृन्दावन अभिमुख में यात्रा करोगे । मार्ग में अक्रूरघाट तुमको सुख देगा । वहाँ वृक्षों से युक्त लताएं मिलेंगी ॥८१॥

तत्पार्श्वं एवास्ति च यज्ञपत्नी प्रसादनामास्थल मुज्वलाभः ।
यत्रैव विप्रानवमान्य तेषां पत्न्यः सखे मां मिलिता जवेन ॥८२

उसके पास यज्ञपत्नीप्रसाद नामक उज्वल स्थल मौजूद है । जहाँ यज्ञ पत्नियां अपने अपने पति का अनादर कर शीघ्रता के साथ हमसे मिली हैं ॥८२॥

ततः परं पुष्पितमाधवी लतास्खलत्परागे विलसन्मधुव्रतम् ।

सुवर्णवल्लीपरि रंभितद्रुमं वृन्दावनं गच्छ विलासलालसम् ॥८३

उसके पश्चात् विलास से लालसित होकर तुम वृन्दावन के लिए गमन करना । जहां पुष्पित माधवीलताओं से पराग मकरन्द बहते होंगे तथा जहां भ्रमरपुंज मधुर गुंजार करता होगा । सुवर्ण लताओं से परिवेष्ठित वृक्ष समूह मौजूद होंगे ॥८

अन्यानि सन्ति विपिनानि बहूनि मित्र

पृथ्वीतले कुसुमलालित भूरुहाणि ।

वृन्दावनस्य समतां न भजन्ति तानि

यस्मान्मदङ्ग सममुत्सवदंवनं तत् ॥८४

हे मित्रे ! इस पृथिवी में पुष्प वृक्षों से ललित अनेक वन-उपवन मौजूद हैं । परन्तु कोई वृन्दावन समता को प्राप्त नहीं कर सकता है । क्योंकि वह वृन्दावन मेरे लिये अपने अंग की भांति सुख देने वाला है ॥८४॥

गोचारणादिभिरलंकृतविग्रहानि गोष्ठेपिसन्ति कतिशो गहनानि यानि ।
शृङ्गारकेलिकमनीयविशेषशोभं वृन्दावनाभिधमृते न शुकद्वितीयम् ॥८५

हे शुक ! गोष्ठ में भी गोचारणादि से अलंकृत अनेक कानन मौजूद हैं । परन्तु शृंगार केलि से मनोहर शोभावाला वृन्दावन की भांति दूसरा कोई स्थान नहीं है ॥८५॥

(शिखरिणी) कदम्बैः कादम्बैः शुचिरुचिकदम्बैः कवलितं ।

पलाशैः पालाशैः किशलयविलासैर्विलसितम् ।

सरंगैः सारंगैः ससुरभि कुरङ्गैः वंलयितं

कपोतैः कापोतैः शुकनिकरपोतैः ससुशुभम् ॥८६

अमन्दैर्माकन्दैरुचिरतरकुन्दैः पुलकितैः

शिखण्डैः श्रीखण्डैः परिचितमखण्डैर्वकुलकैः ।

कपित्थैरश्वत्थैः सजलधरखिस्थैर्घनतरै-

गंभीरैर्जंभीरैर्गलितमधुनीरैर्निगडितम् ॥८७

परागैः पुन्नागैर्ललिततनुरागैः सकुसुमै-
र्मधूकैर्बन्धूकैर्मधुचलदमूकैर्मधुकरैः ।
तुषारैस्त्वक्सारैर्विमलदलभारैर्व्रज सखे !
विशालैर्वैशालैर्युतमलघुभालैर्भ्रम वनम् ॥८८

पलास, किशलयों के विलासों से विलासप्राप्त, कदम्ब वृक्षों से तथा पवित्र कान्तिवाला हंसों से कवलित अर्थात् व्याप्त, रङ्गी सारङ्ग पक्षियों से तथा कस्तुरिगन्धों से सुगन्धित हरिणों से युक्त कपोत-कपोतियों से तथा शुक शावकों से सुशोभित, उत्तम आम्रमुकुल, मनोहर पुलकायमान कुन्द, पंखों के साथ मयूर, अखण्ड वकुल, कपित्थ-अश्वत्थ-मधुस्रावी जामनादि वस्तुओं से जड़ा हुआ, पुन्नाग के पराग, मनोहर विविध रंग के पुष्प, मौहा, बाधुलि, मधुकरों से शोभित दमनवृक्ष, चंदन, पवित्र पुष्प-पत्र-दलों से वेष्ठित तमालादि वस्तुओं से संयुक्त वह मेरा श्री वृन्दावन है ।।८६।८७।८८।।

तद्वृन्दावनमित्थमद्भुत सुखं श्रृङ्गारकेलिस्थलं
स्मृत्वा हन्तमुहमुर्हुर्विरहजा भीलेन विग्लापितः ।
रोमाणां निकरैरलंकृततनुर्नेत्राश्रुसिक्तोदरः
खिन्नो मोहमगाद्व्रजेन्द्रतनयो वक्तुं न किञ्चित्क्षमः ।।८९

इस प्रकार अद्भुत सुखदायि, शृंगार कीड़ास्थल, उस वृन्दावन का बार-बार स्मरण करते हुए श्री हरि विरह जात कालिमा से मलिनता को प्राप्त होगये । रोमांचों से उनका शरीर शोभायमान होगया तथा नेत्राश्रुधारा से समस्त शरीर भीज गया । वे खेद मोह को प्राप्त होकर कुछ नहीं कह सके ।।८९।।

श्रीगोविन्दमुनीन्द्रवन्दितपदद्वन्द्वारविन्दासव

प्रोन्मत्ताखिल चित्तवृत्ति सुखदे सारङ्गसंगोदिते ।
काव्ये नन्दकिशोरचन्द्ररचिते श्रीकीरदूताभिधे ।
पूर्णत्वं व्रजभागवर्णनमयः सर्गस्तृतीयोऽगमत् ॥६०

श्री गोविन्द के मुनिगण वन्दित चरण कमल युगल के मकरन्द पान उन्मत्त समस्त रसिकों की चित्तवृत्ति में सुखदायी, कौतुकपूर्ण, श्री नन्दकिशोरचन्द्र के द्वारा विरचित इस शुकदूत नामक काव्य का व्रजभाग वर्णनमय तृतीयसर्ग समाप्त हुआ ॥६०

इति श्रीमन्माध्वगौडेश्वराचार्य सारस्वत द्विज कुलभूषण श्रीमन्नन्द किशोरचन्द्र गोस्वामि विरचिते श्रीशुकदूतमहाकाव्ये तृतीयः सर्गः समाप्तिमगात् ॥

—०—

चतुर्थः सर्गः

अथ प्रकाशेन वियोगितायाः व्यग्रः कथञ्चित्पुनरिन्द्रियाणि ।
संयम्य कृष्णः स्मृतगोष्ठलीलो वाणीगुणैर्वक्त्रमलञ्चकार ॥१

अनन्तर श्रीकृष्ण वियोग से आतुर होकर किसी प्रकार फिर इन्द्रियों को संयत कर गोष्ठलीला का स्मरण करते हुए वाणियों से मुख को शोभित करने लगे ॥१॥

कर्पूरपूरधवलद्युतिधूलिधारीवृक्षावलीवलितवन्दितभूमिभागः ।
श्रीमत्कलिन्दतनयाकरमार्जिताङ्गो यस्यान्तरे विलसते पुलिनप्रदेशः ॥२

हे कीरराज ! सुनो, वृन्दावन के भीतर कर्पूरपूर की भांति धवल कान्तिधारी, भूमिभाग में वृक्षावली से वेष्टित, कलिन्द-तनया के तरंगों से धौतांग पुलिनप्रदेश विराजमान है ॥२॥

यत्रैव गोपरमणीभिरहं रमेशो क्रीडं रमाधिकविलासवताभिरीशः ।

सोयं शरच्छशिधरद्युतिराजितासु श्यामासु यास्यतिसखेतवनेत्रवीथीम् ।३

जहाँ रमेश मैंने रमाधिक्य विलासवती गोपरमणियों के साथ रासक्रीड़ा की है । वह श्याममयी, शरच्चन्द्रमा की किरणावली से भूषित पुलिन प्रदेश तुम्हारे नयनमार्ग में आवेगा ।।३।।

नृत्यादिवैदग्धगुणैरुपेता नानास्वरैरञ्चितकम्बुकण्ठी ।
प्रियाततिर्मे श्रुतिनेत्रसौख्यं पुरा ददौ यत्र सतालहस्ता ।।४

जहां नृत्यादिक वैदग्ध्यगुणों से परियुक्ता, नानास्वर आलापों से रंजित कम्बु कण्ठवाली प्रियाराजि ने हाथों में ताल देकर मेरे नेत्रों में अत्यन्त सुख विस्तार किया था ।।४।।

यदन्तिके पुष्कर माक्रमन्तं बंशीबटं वीक्ष्यसि सान्द्रशाखम् ।
स्थित्वा तले यस्य तदा कृपाढ्यामवादयं स्वत्कृत एव वंशीम् ।।५

जिसके पास हस्तियों से आक्रान्त, निविड़ शाखामय, वंशीवट का दर्शन मिलेगा । जिसके नीचे विराजमान होकर कृपामयी वंशी का मैंने वादन किया है ।।५।।

पुनश्च तत्पार्श्वविराजमानं वनंभवान् पश्यतु सद्द्रुमाढ्यम् ।
त्यक्तान्य गोपीवृृषभानुपुत्रीं नीत्वा रहो यत्र कृतो विलासः ।।६

फिर उसके पास विराजमान, निविड़ वृक्षावली से युक्त, वनराज का अवलोकन करेगा । जहाँ मैंने अन्य गोपियों का परित्याग कर रहस्यस्थल में वृषभानुनन्दिनी को लेकर विलास किया था ।।६।।

अशोकपुष्पैग्रथिता शिरोरुहा नवोद्गमोत्फुल्लपरागसुन्दरैः ।
मया तदीया वटवृक्षशोभिता श्रृङ्गारभूमिर्निकटे विभाति ।।७

उसके निकट वटवृक्षों से शोभित शृंगारभूमी मौजूद है । जहाँ मैंने नवीन प्रफुल्ल परागों से सुन्दर सुन्दर अशोक पुष्पों के द्वारा राधा के केशकलाप को अलंकृत किया है ।।७।।

गोपीश्वराख्यश्च शिवो विभाति मध्ये यदीये रसकेलिविज्ञः ।
मणिस्फुरत्सुन्दररत्नपीठा रासस्थली दास्यति ते प्रमोदम् ॥८

जिसके मध्यभाग में रसकेलि को जानने वाले गोपीश्वर नामक शिवजी विराजमान हैं। मणिमय सुन्दर रत्न पीठों से विभूषिता वह रासस्थली तुम्हें आनन्द प्रदान करेगा ॥८

गोपीजनप्रेमपरिप्लुताशया वृन्दा सुवृन्दारकवृन्दवन्दिता !
वृन्दावनस्था नवकुंज मण्डिता सा वीक्षणीया रतिकेलिपंडिता ॥९

गोपियों के प्रेम में परिप्लुत आशया, उत्तम उत्तम देवता वृन्द से वन्दित, वृन्दावनवासिनी, नवीन कुंजों से मण्डिता, रतिकेलि में परमपण्डिता वृन्दादेवी का तुम दर्शन करना ॥९॥

तां मद्वियोगाकुलचित्तभृङ्गा रासस्थली रंगकृतातिरङ्गाम् ।
मार्गे मदीयाभिधकत्थनेन शरीरचेष्टा सहितां करोतु ॥१०

वह मेरे वियोग से व्याकुल हृदया होकर विराजमान हो रही होगी। जाने के समय तुम मेरा नाम का श्रवण करा कर जाना जिससे वह शरीर में चेतना प्राप्त करेगी । क्योंकि वह रासस्थली में विविध विलास रंग देने वाली है ॥१०॥

तत्रामलं निधुवनं वनमस्ति रम्यं यद्दर्शनान्निधुवनोत्कलिकातिवृद्धिम् ।
याति स्मरोत्सवविकाशवितानरूपा वल्लीषु वर्हिनिकुरंवनिनाद रम्यात् ११

वहां निधुवन नामक पवित्र मनोहर वनराज मौजूद है, जिसका दर्शन से सुरत सम्बन्धि क्रीड़ा कलिका अत्यन्त वृद्धि प्राप्त होती थी। जो लताओं में स्थित मयूरों को निनाद से मनोहर तथा कन्दर्प उत्सव को विकसित करने में चाँदुया (चाँदनी) रूप है ॥११॥

ततो व्रजत्वं तददूरदेशे सुरेप्सितं तं शुक केशितीर्थम् ।
केशीहतो यत्र मयातिदुष्टः कंसादिभिः प्रेरितवादपुष्टः ॥१२

हे शुक ! अनन्तर कुछ आगे चलकर देवताओं से प्रार्थित केशीतीर्थ का दर्शन करना। जहां मैंने कंसादि से प्रेरित, अति बलवान्, दुष्ट, केशी दैत्य का संहार किया था ॥१२

वृन्दावनीयासुषमाविलोकनैर्हृष्टोभवान् यास्यति कालियंह्रदम् ।
गोगोष्ठगोपालकृते मया फणीनिःसारितो दूषितसूर्यजाजलः ॥१३

इस प्रकार तुम वृन्दावन की सुषमा देखता हुआ प्रसन्नता के साथ कालिय ह्रद में प्रवेश करना। मैंने वहां गोपालों के लिए कालिनाग को निकाल कर जमुना जल को पवित्र स्वच्छ किया था ॥१३

तदुच्चदेशे कलिताच्छ पुष्पः कदम्बवृक्षोऽस्ति हरित्पतत्रः ।
यस्माद्विषोदे खलगर्वहारीकृतः प्रयातो व्रजजीवनेन ॥१४

वहाँ एक उच्च स्थान में स्वच्छ पुष्पों से युक्त, हरित्पत्र-वाला कदम्ब वृक्ष है। जहां से मैंने कूद कर उस कालिनाग का गर्व दूर किया था ॥१४

पीत्वा ततः स्वच्छजलं पवित्रं दिव्यं सुशीतं गत तृट्क्रमेन ।
कृत्वा कदम्बस्य भुजावलम्बं विश्राममोषो भवता विधेयः ॥१५

हे कीरराज ! तुम उसके पवित्र, दिव्य, शीतल स्वच्छ जल का पान कर तृष्णा रहित हो उस कदम्ब की शाखा में कुछ समय बैठ कर विश्राम लेना ॥१५

ततो भवान् द्रक्ष्यति सन्मुखस्थमत्युच्च भाण्डीरवटं सुशाखम् ।
छाया यदीया यमुनाजलान्तः प्रतीयते विल्ववनं च दूरात् ॥१६

अनन्तर तुम सामने अत्यन्त उच्च, सुन्दर शाखा वाला भाण्डीर वट का दर्शन करोगे। उसकी छाया यमुना जल में पड़ती है तथा उसके निकट बेलबन भी मौजूद है ॥१६

तत्रैव चेदस्तगिरिं पतंगो गच्छेत्तदा हे शुक रात्रिवासः ।

कर्त्तव्य उद्दीपितनिद्रितेन त्वयाऽयनश्रान्तिभरक्रमेन ॥१७

वहां यदि सूर्यनारायण को अस्ताचल में जाते हुए देखो तब हे शुक ! वहां रात्रि निवास कर गमनश्रम को दूर करना। क्योंकि रात्रि के आने पर तुम्हें नींद आवेगी ॥१७

ततः समुत्थाय कलिन्दकन्याकूलं कदम्बाकुलितं क्रमेण।
क्रान्त्वा मुनेः सौभरिनामकस्य तपःस्थलं गच्छ सखे सुखेन ॥१८

वहां से उठ कर कदम्बों से परिव्याप्त कालिन्दी तट का अतिक्रमण कर सौभरिमुनि के तपःस्थल में सुखपूर्वक पहुँचोगे ॥१८

धन्यादि कन्यावसनानि हृत्वा तदीयकामप्रतिपादनेच्छुः ।
यमा समारूढ उपायविज्ञस्तं दक्षिणे मुञ्चकदम्ववृक्षम् ॥१९

उसके दक्षिण में उच्च कदम्ब वृक्ष आवेगा । उसे भी देखता हुआ चलना। जहां उपायविज्ञ मैंने धन्यादि कन्याओं के वस्त्रों का हरण कर उनकी कामना बढ़ाने के लिए उसमें आरोहरण किया था ॥१९

वाम प्रदेशे वहुलाभिधेयं वनं लसद्बर्हिरुतञ्च मुञ्चन् ।
भ्रातर्बृहत्कोकिलकाकलीकमध्यस्थितं वर्त्म तवाभियोग्यम् ॥२०

हे भ्रात ! हे वृहत् कोकिल की भांति मधुर बोलने वाला ! अनन्तर वामभाग में मयूर शब्दों से शोभित वहुला नामक वन का अतिक्रमण कर आना। यह मध्यस्थल (सीधा) होकर जाने का मार्ग है जो तुम्हें बता रहा हूँ। इस मार्ग में तुमको जाना उचित है ॥२०

श्री राधयांगीकृतपादपद्म संवाहनेनोरगतल्प भोगे।
शयालुना यत्र कृतो विलासस्तद्गच्छ लीलास्थलमद्भुतं मे ॥२१

अनन्तर अद्भुत लीलास्थल शेषशायी नाम से प्रसिद्ध तीर्थवर में उपस्थित होना। जहां मैंने चतुर्भुज स्वरूप में अनन्तशय्या पर शयन कर विलास किया था तथा राधारूप लक्ष्मी ने मेरे पादपद्मों का संवाहन किया है ॥२१

साहारनामानमनल्पशोभं मदीयपितृव्य निवास भूमिम्।
अचूचुरं यत्र च बल्लवीनां दधीनि तं त्वं व्रज सुन्दराङ्गम् ॥२२

हे सुन्दर शरीर! अनन्तर अत्यन्त शोभित, मेरे पितृव्य (चाचा) की निवासभूमि साहार नामक स्थान पर पहुँचना। जहां मैंने गोपियों की दही की चोरी की थी ॥२२

भूयो बृहात्सानुशिलोच्चयस्थितं तदुच्चदेशाद्वृषभानुपत्तनम्।
मम प्रियांगीकृतवासमुत्तमं त्वन्नेत्रवीथीं समलं करिष्यति ॥२३

हे कीरराज! अनन्तर बृहत्सानु (बरसाना) पर्वत के शिखर में विराजमान वृषभानुपुर तुम्हारे नयनमार्ग में शोभायमान होगा। जहां मेरी प्रिया के वास स्थान मौजूद है ॥२३

यत्प्रान्त एव ललितादिसखीजनानां
ग्रामाः सखे मम विलासरसोदयाभाः।
राजन्ति काञ्चनगिरेर्गिरयः समन्ता
द्वत्रिश्रृङ्ग कराद्यभिधाः सश्रृंगाः ॥२४

जिसके चार ओर विलास रस उत्पादक, ललितादि सखियों के ग्राम विराजमान हैं। जहां सुवर्णाचल की भाँति छोटे छोटे शिखर वाले पर्वत समूह मौजूद हैं ॥२४

पुनश्च नानाभिध कौतुकाढ्यैर्गोचारणे स्वीयवयस्यवृन्दान्।
प्रीतान् सलीलो करनं विहारैः सप्रीतशाखः शुक वीक्षणीयः ॥२५

हे शुक! जहां नाना प्रकार कौतुक के साथ गोचारण छल से अपने सखाओं के साथ मैंने लीलामय विहारों को किया था। उन स्थानों को तुम अवश्य देखोगे ॥२५

तत्पार्श्वं एव वृषभानु महीपपुत्री
प्राणप्रियालिललिता वसति विभाति ।
नाम्ना व्रजे करहरा इतिविप्रसिद्धे
नीपावलीस्खलदमंदमरंदसिक्तः ॥२६

उस वृषभानुपुर के निकट वृषभानुनन्दिनी की प्राणप्रिया सखी ललिता की वसती भूमी शोभायमाना है। वह स्थान व्रज में 'करहेला' इस नाम से प्रसिद्ध है और जो नीपवृक्षों में मकरन्द्र स्रवण से अत्यन्त स्निग्ध है ॥२६

यत्र द्रुमाश्लिसृनिकुंजवीथ्यां प्रियांदधिस्निग्ध घटीं वहन्तीम् ।
रुद्धा सखीभिः कर कैतवेनाऽभूवं मुदा तन्नवनीतहारी ॥२७

जहाँ द्रुमावली से संयुक्त निकुंजमार्ग में दधी से स्निग्ध घड़े को वहने वाली प्रिया राधा को मैंने कर दान छल से सखाओं के द्वारा रुद्ध किया तथा नवनीत का हरण भी किया है ॥२७

क्रान्त्वैवं व्रजवल्लरीपरिचितान्ग्रामान् व्रजाभ्यन्तरे ।
मल्लीला निलयान् क्रमेण कलयन् मत्प्राणकोटिप्रियान् ।
श्रीमद्भानु पुरोत्तमं जिगमिषोः पुण्येन लभ्यं नरै
स्त्वन्नेत्र प्रमदं करिष्यति ततो मानोः सरः सत्तमम् ॥२८

इस प्रकार लता-वृक्षों से परिशोभित ग्रामों का अतिक्रमण कर भीतर प्रवेश करना। बीच बीच में कोटि कोटि प्राण से भी परमप्रिय मेरी लीला के स्थान समूह तुम्हें देखने को मिलेगा। तुम उन सबका दर्शन कर जब भीतर में जाओगे तब तुम्हारे लिए भानु सरोवर प्राप्त होगा। वह तुम्हारे नेत्रों में आनन्द प्रदान करेगा। जिस भानुपुर में जाने के लिए इच्छा रखने वाले मनुष्यों को अत्यन्त पुण्य मिलता है ॥२८

यस्मिन् श्री वृषभानुभूपतनया त्विट्-त्विष-सच्चन्चला
प्रोद्यत्पुष्कर गन्धबन्धुमधुलिट् निःस्वानर्निघोषिते ।
नित्यं चंचलखंजरीट नयनालीभिः समं सोत्सवं-
श्रीराधा मम वल्लभा वितनुते केलिं कवन्धोचिताम् ॥२६

जहां वृषभानुराजनन्दिनी, मेरी प्राणवल्लभा, श्रीराधा खंजननयना उत्तप्ता हो सखियों के साथ आनन्दपूर्वक नित्य कबन्धोचित जल क्रीड़ा करती है तथा जो प्रफुल्लित कमलों के गन्धवाहक भ्रमरों के गुंजार से गुंजरित है ॥२६

श्री राधातनुविस्खलन्मृगमदाक्रान्तोर्मिमालावृतं
भ्रस्यत्पद्मपरागरागललितं शीतातिशीतं पयः !
पीयूषादपि मिष्टमुज्ज्वलरुचिं पान्थायनक्लेशहं
पीत्वा तस्य भवान् गतक्लमभरः प्रीतिं पुनर्यास्यति ॥३०

श्री राधा के अंगों से गिरे हुए मृगमदरसों से मिश्रित तरङ्गावली से आवृत, गिरा हुआ पादपद्म पराग राग से मनोहर, शीतल से शीतल, सुधा से अति मधुर, उज्ज्वल कान्तिमय, पथिकों का तापनाशक उसके जल का पान कर तुम गतश्रांत हो परम प्रसन्नता प्राप्त करोगे ॥३०

यत्तीरे नवनीपकेतकिलताच्छन्नाचलावाटिका
यस्यां सत्कुसुमैः स्वहस्तचिनुतैर्मित्रार्चनं कुर्वती ।
रत्नाडम्बरपठिनीतचरणा किंचिद्विलोलत्कुचा
श्रीराधा ललितादिभिः सहचरीवृन्दैः सदोपास्यते ॥३१

जिसके तट पर नवीननीप और केतकिलताओं से परिव्याप्त मनोहर वाटिका विराजमान है । जहां सूर्य पूजा परायणा, श्री राधा अपने हाथों से स्वयं पुष्पचयन करती है । जहां रत्नमय पीठ के ऊपर चरण धर कर चंचल स्तन वाली आप ललितादि सहचरियों के द्वारा आराधित होती है ॥३१

नीरासंगविलग्नसूक्ष्मवसनं व्यामुग्धसद्विग्रहा
दीर्घैः सूक्ष्मशिरोरुहैर्वृतकटी राजत्समानस्तनी ।
नृत्यत्खंजननेत्र युग्मसुमुखी संमार्जयन्ती तनु
राधा यत्तटकुञ्जगेन कपटाद् दृष्टा मया सुन्दरी ॥३२

जल के संसर्ग से गीले, सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्त्रों से आवृत शरीरा, लम्बायमान सूक्ष्म केशों से शोभित कटीवाली, समान स्तनो, नृत्यपरायण खंजन की भाँति चंचल नेत्रवाली, सुमुखी, श्रीराधा अपने शरीर का मार्जन करती हुई जिसके तट निकुंज में हमें छलपूर्वक दर्शन देती थी ॥३२

यत्तीरेषु चतुर्षु कांचनलताश्लिष्टाः कदम्बा स्थिता
मध्येऽशोकततीः प्रफुल्लकुसुमा विभ्राजते पल्लवैः ।
तत्पश्चान्मणिमंडपाः सशिखरा राजन्ति रत्नोज्वला
कुंजा स्तत्परितस्तमालनिकरैरालिंगितालंकृताः ॥३३

जिसके तट में चार ओर काञ्चनलताओं से संश्लिष्ट कदम्ब वृक्ष समूह मौजूद है, मध्यभाग में पल्लव पुष्पों से विभूषित अशोकराजी परिशोभित है। उसके पश्चात् रत्नों से उज्वल, शिखर वाले, मणिमय मण्डप मौजूद हैं। उसके चार ओर तमालों से आलिङ्गित कुञ्जसमूह अलंकृत है ॥३३

तत्रैयोच्चतरे कदम्बविटपे स्थित्वा क्षणं सन्मुखे
दृष्टव्या वृषभानुभूपनगरी शैलेन्द्रसानुस्थिता ।
यत्मध्ये पुरटोपनद्धशिखरं चञ्चत्पताकान्वितं
मध्ये भूवलयस्य हेमगिरिवत् सौधः सदा राजते ॥३४

हे कीर ! वहां के एक उच्चतर कदम्ब वृक्ष में क्षणकाल ठहर कर समक्ष में शैलेन्द्रशिखर में मौजूद वृषभानु राजपुरी का अवलोकन करना। उसके बीच में सुवर्णरचित शिखर है, जिसमें पताका फहरती होगी। धरती ऊपर हेमगिरि की भांति

महान मन्दिर सर्वदा विराजमान है ।।३४

प्रेमोल्लासविगाहनेन सचिरामत्कर्णकोटिप्रिया
वैचित्रीभिरलंकृतध्वनिपदानां कर्णहृत् प्रेयसी ।
कंठै र्निर्जितकोकिलाभिरभितः संसेव्यमाना जनै
र्गीतिर्यत्र रसोदयोत्तरफला गोपीभिरुद्गीयते ॥३५

जहाँ गोपियां रसोदय के चरम फल रूप गानावली गाती होंगी। जो गान प्रेमोल्लास अवगाहन से मनोहर, मेरे कोटिकर्णों का प्रिय, वैचित्र्यमय, ध्वनि पदों से अलंकृत, कर्णहारी, कोकिल कंठज तथा मनुष्यों से संशोभित है ।।३५

गुञ्जन्मंजुमरंदमत्तमधुप श्रेणीविलासस्थलं
श्रीशृङ्गार रसोदयं च जनयन् यत्पश्यतां विभ्रमैः ।
विष्वक्पुष्पितवाटिकाकवलितं मल्लीलतालंकृतं
भूयः प्रेमसरोवरं व्रज सखे प्रेमामृतैः सम्भृतम् ।।३६

हे सखा ! तुम वहाँ से फिर प्रेमामृत से परिपूर्ण प्रेम सरोवर में पहुँचोगे। जो मनोहर मकरन्द पानोन्मत्त, गुंजायमान भ्रमरों का विलास स्थान तथा देखने वालों का विभ्रमता के साथ शृंगार रस उत्पादक, पुष्पवाटिकाओं से व्याप्त और मल्लीलतिकाओं से अलंकृत है ।।३६

पाषाणतिकठोरकुण्ठितहृदां पश्यन्नराणामपि
प्रेमान्तः करणे यदीयपृषतः स्पर्शेन संजायते ।
तत्तीर्थं सुरदुर्लभं गतवतः प्रेमप्रमोदोदयो
रोमांचादि विकारभारसहितस्त्वन्मानसं यास्यति ॥३७

जिसके जलकण का स्पर्शमात्र से तथा दर्शन से पाषाण से भी कठोर हृदय वाले मनुष्यों के अन्तकरण में प्रेम उत्पन्न होता है, उस सुरदुर्लभ तीर्थराज में जाने पर तुम्हारे अत्यन्त प्रेम-प्रमोद उदय होगा तथा तुम रोमांचादि विकारों से परिभूषित

होकर प्रसन्नमना होजाओगे ॥३७

यत्रत्याः शुकबर्हिकोकिलमुखा हंसादयोऽन्येपि च
प्रेमानन्द परिप्लुतां मम कथां शृण्वन्ति गायन्ति च
नाना हंत खगा मुनीन्द्रपटलीमान्या ममातिप्रिया
स्त्यक्त्वाहं कृतिमत्सरेण भवतां ते वन्दनीया ध्रुवम् ॥३८

जहाँ के शुक-मयूर कोकिल प्रमुख हंसादिक तथा अन्य जीवादिक प्रेमानन्द से परिप्लुत होकर मेरी कथा का श्रवण गान करते हैं। वहां के खगगण मुनीन्द्रसमूह से वन्दनीय तथा मेरे अत्यन्त प्रिय हैं। तुम अभिमान मत्सरादि छोड़कर उन सबकी वन्दना करना ॥३८

राधापांगविभुग्नधैर्यमनसा तत्संग लब्धेन यः
संकेतीकृत उल्लसन्मनसिजाक्रान्तेन तस्यै मया।
मार्तण्डद्युतिदुर्विगाह्यसघनः पालाशवर्णच्छवि-
स्त्वन्नेत्रप्रमदं करिष्यति ततः संकेतनामा वटः ॥३९

अनन्तर सूर्य कान्ति से दुखगाह सघन छायावाला, पलास-वृक्ष की भांति सुन्दर संकेत नामक वटराज तुम्हारे नेत्रानन्द प्रदान करेगा। जहां संकेत के द्वारा उल्लसित, मदनाकान्त मैंने राधा की कटाक्ष दृष्टि से धैर्यरहित होकर विलास किया है ॥३९

कर्पूरान्वितचन्दनैर्धवलिता मुक्ताफलैर्भूषिता
स्वाङ्गद्योतविमिश्रसोमकिरणाश्वेतांशुकालं कृता।
लीला कैरवसत्करा विधुमुखी राकानिशायां जवात्
मां राधाभिससार यत्र सरणौ गोपैरसंलक्षिता ॥४०

जहां कर्पूरयुक्त चन्दनों से धवलवर्णा, मुक्ताफलों से भूषिता, अपनी अंगकान्ति से चन्द्रकिरण तिरस्कारिणी, श्वेतवस्त्रों से विभूषिता, विधुमुखी राधिका हाथ में लीला कमल लेती हुई गोपों से अलक्षित मार्ग में मेरे लिए अभिसार करती थी ॥४०

किंचित्तत्र विलम्ब्य कीरनृपते लीलाविलास स्थले
गन्तुं निश्चितचेतसः प्रियसखे भूयस्ततः सन्मुखे ।
मत्पित्रोर्वसतिस्थलं प्रकटयन्सौन्दर्यदर्पश्रियं
दूरादेव तवोत्सवं जनयिता नन्दीश्वराख्यो गिरिः ॥४१

हे कीरराज ! लीला विलास स्थल वहां कुछ समय विलम्ब करके आगे चलने के लिए उत्सुक होना । हे प्रिय सखा ! अनन्तर सामने मेरे पिता का वसतिस्थल, सौन्दर्य गर्व शोभा प्रकाशक, नन्दीश्वर नामक पर्वतराज दूर से ही तुम्हारे आनन्द प्रदान करेगा। अर्थात् तुम दूर से उसे देख कर मुग्ध हो जाओगे ॥४१

यं साक्षाच्छिवरूपमेव विबुधास्तत्वज्ञ मान्यांघयो
नीलग्रीवमनोहरं सुमनसां वृन्दैः सदोपासितम् ।
शांडिल्या दिसमीर्चतं सकरुणं कामप्रदं दर्शनात्
शैलेन्द्रं निगदन्ति शंकरतनुं गौरीहृदुल्लासिनम् ॥४२

तत्ववेत्ताओं से वन्दनीय देवतागण जिस पर्वतराज को साक्षात् गौरी हृदयोल्लासि शिव रूप करके वर्णन करते हैं। जो नीलग्रीवा से अर्थात् नीलवर्ण शिखर से अलंकृत है। शिव पक्ष में नीलग्रीवा से संयुक्त है। पुष्पनिकरों से सर्वदा शोभायमान है किम्वा उत्तम मानसवालेओं से विभूषित है। शिवपक्ष में देवताओं से शोभायमान है। शांडिल्यादि वृक्षों से भूषित है। महादेव पक्ष में शाडिल्यादि ऋषियों से परिवेष्टित हैं। करुण वृक्ष विशिष्ट है। शिव पक्ष में दयालु हृदय हैं। दर्शनमात्र से कामप्रद है। शिव पक्ष में दर्शनमात्र से कामनाओं को देने वाले हैं ॥४२

यन्मध्ये मणिमन्दिरैर्वलयित्ता गोमण्डलैर्मण्डिता
मद्वात्सल्यरसाधिका विलसिता गोपाल लीलास्थलैः ।

यस्यां नन्दयशोदया सरभसं सल्लालितोऽहं मुदा
पुत्रत्वेन वसामि राजति सखे सा राजधानी स्फुटम् ॥४३

जिसके मध्यभाग में मणिमन्दिरों से युक्त गोमण्डल से मण्डित, मेरे वात्सल्यरस प्रवाहित, गोपालों के लीलास्थलों से विलसित मनोहर राजधानी विराजमान है। जहां मैं नन्द यशोदा के द्वारा अत्यन्त लालित होकर पुत्र रूप से वास करता हूँ ॥ ४३ ॥

यद्वीथीषु समस्तगोपतनयाः सम्भूय लीलोत्सुकाः
क्रीडन्ति स्फुरदिन्दुसुन्दरमुखा आनन्दकन्दा इव ।
धूल्युद्धूनधूसरी कृत रुचः संजातकौतूहलाः
खेलाभिः पृथुकोचिताभिरकृतक्षुत्तृट्प्रयत्नादराः ॥४४

जिसके मार्गों में गोपबालक एकत्र होकर लीला से उत्सुक हो क्रीड़ा करते हैं। उनके मुख चन्द्रमा की भांति सुन्दर हैं। मानो आनन्दबीज आज अंकुरित हो रहा है। वे सब गोप बालक धूलि खेल से धूसर अंग वाले होकर कौतुक के साथ समावयस्क बालकों के साथ खेला करते हैं तथा क्षुधा-पिपासा को भूल रहे हैं ॥४४

सेव्यत्वेन हरिप्रियाभिरभितो वैकुण्ठमुत्कण्ठयन्
स्वर्गं कल्पमहीरुहोद्गमतया पीयूषनीरेण च ।
कैलासं बहुनीलकण्ठसहिता सत्यं विधिप्रार्थनै-
र्या नित्यं बहुकामधेनुवलिता गोलोकमाक्रामति ॥४५

जो सर्वत्र लक्ष्मीरूपा रमणियों से सेवमान होकर वैकुंठ-नगरी को, कल्पवृक्ष तथा सुधामय जलों से स्वर्ग भवन को, अनेक नीलकंठ अर्थात् मयूरों से कैलाशपुरी को तथा बहुकाम-गौओं से गोलोक को अतिक्रान्त कर रहा है ॥४५

आस्थान्यो व्रजवासिनां गृहतटे मंचैः समालिङ्गिता

वर्तन्ते कथयन्ति यासु सरसां वार्तां मदीयां हिते ।
पुष्टोऽधःस्खलितैः सुधातिमधुरैः क्षीरैर्गवां सिंचिता
यस्यां राजति वत्सवृन्दवलिता गोष्ठावली सर्वतः ॥४६

जहां व्रजवासियों के गृह के सामने मंचों से युक्त मण्डप विराजमान हैं। उनमें वे सब बैठकर मेरी सरसवार्त्ता का आलाप करते हैं। जहां के चारों ओर गोष्ठावली (गौशालाएं) विराजमान हैं। वे सब सुधा से मधुर गौओं के दुग्धों से सिंचित हैं। क्योंकि कामधेनु स्वरूप गौओं की निरन्तर ही दुग्धधारा बहती रहती हैं ॥४६

अस्यच्चन्द्रनिशावसानसमये गोप्यो विनिद्रा गृहे
स्वे स्वे सद्दधिमथनं च कलयन् गायन्ति यत्सुन्दरम् ।
गीतं चंचलकङ्कणस्वनयुतं देवाङ्गनाप्रीतिदं
श्रोतव्यं भवता ध्रुवं तदमलं कुत्राप्यनाकर्णितम् ॥४७

निशावसान में चन्द्रमा डूब जाने के समय गोपियां अपने अपने ग्रहों में जाग कर दधिमन्थन करती हुई जो सुन्दर गान करती हैं उस गानावली को तुम अवश्य सुनना। वह गान चचल कंकणों के शब्दों से विमिश्रित, देवांगनाओं के प्रीतिदायी, तथा अन्यत्र अत्यन्त अभाव है ॥४७

यत्प्रान्ते फलपुष्प पल्लवभरान्नम्रैर्लुठद्भिर्भुवि
संकीर्णा सलिलालवालवलितैर्भूमी रुहाणांगणैः ।
वन्या पङ्किल भूमिजात हरितैः शष्यांकुरैः संस्कृता
लोलल्लोचनसत्कुरङ्गरमणी रासस्थली राजते ॥४८

जिस नगर की प्रान्तभूमी में मनोहर रासस्थली विराजमान है। जो फल पुष्प पल्लवों का भार से नम्र, पृथिवी से संसर्गित, अर्थात् धरती में लोटे हुए, जल-आलवालों से युक्त वृक्षों से संकीर्ण है तथा गीली भूमी में हरे हरे शस्यांकुरों से सुसंस्कृता

और चंचलनयना कुरंगरमणियों से परिशोभिता है ॥४८

विष्वक् यस्य कदम्बकुन्दवकुलैः साशोकमन्दारकैः
पुन्नागाऽऽम्रपलाशवंजुलवटै राम्रातकाक्षोटकैः ।
तापिच्छार्जुन-पीतसारकरजैर्बन्दूकसत्सच्छरै
रन्येपि प्रकटा वसन्ति कतिशो रम्या वनानां गणाः ॥४६

जिसके चार ओर कदम्ब-कुन्द-वकुल-अशोक मन्दार-नागकेशर-आम्र-पलाश-वट-हरीतकी-तमाल-अर्जुन-चन्दन-करंज-वंधुक-देवदारु आदिक मनोहर वनराजी मौजूद है ॥४६

प्रातर्येषु पुरा वयस्यनिकरैरावेष्टितो मत्समै-
र्बर्हापीडलसच्छिरास मुशली गुंजावतंसोज्वलः ।
माहेयीचयचारणाय विचरन्नाना विधान् कौतुकान्
स्वैरं षड्तुसेवितेष्वकरवं लीलाविलासाकरः ॥५०

जिन वनों में मैंने पहिले लीलाविलास आकृष्ट होकर समान वयस्यों के साथ महीषों (भैंसों) का चारण कराते कराते नाना प्रकार कौतुक क्रीड़ाएं की हैं। उस समय मैं मस्तक में मयूर-पुच्छ, हाथ में यष्टि, गले में वनजातः गुंजमाला का धारण करता था ॥५०

माकन्दोद्गतमन्दमन्दमकरन्दस्पन्दनेनोज्वला
शीतस्पर्शसुगन्धबन्धुपवनप्रारम्भसंरंभिता
वासन्तीषु वसन्तदूतविकसद्वाक्येन वन्दीकृता
भृङ्गालिङ्गनसंग शृंगकुसुमोत्सङ्गद्रुमांगीकृता ॥५१
कान्ताश्लिष्टजनोत्सवोद्गममयी कन्दर्पदर्पोद्वहा
श्रृङ्गारप्रियबान्धवा विरहिणां मर्मस्थलं कृन्तती
दान्तानामपि योगिनां मनसिजं चित्ते समुत्पादयन्
शोभा कापि रसाधिका विजयते यत्राद्भुता माधवी ॥५२

जहां रसाधिक माधवी (लता) शोभा विजय प्राप्त होरही

है। जो परम अलौकिक, आम्रवकुल के मन्द मन्द उद्‌गत मकरन्दों का त्रण से उज्वल, शीतलस्पर्श सुगन्धित मलय पवनों से युक्त, वासन्तीलता में विराजिते कोकिलों के मनोहर शब्दों से वन्दनीय, भ्रमरों से आलिंगित, कुसुमों से शोभित, वृक्षों से परिभूषिता, प्रिया के द्वारा आलिंगित जनों के हृदय में उत्सवदायिनी, कन्दर्प दर्प को बहने वाली, शृङ्गाररस की प्रियबान्धवी, विरहियों के मर्म्मस्थल को छेदने वाली, दान्तहृदय योगियों के चित्त में भी मनसिज कन्दर्प उत्पन्न करने वाली है ॥५१॥५२

यस्यां मगलकोकिलादिसखिभियुक्तः प्रसूनोद्‌गमे
सौन्दर्येण तिरस्कृतेन्दुकलया सार्द्धं निजप्रेष्ठया
चित्रादिप्रिय वल्लवीवलितया कस्तूरिकाकुंकुमै-
रत्नाभैर्जलयंत्रकैर्व्यरचयं केलिं वसन्तोचिताम् ॥५३

जहाँ मैंने मंगल कोकिलादि सखाओं के साथ पुष्पोद्‌गम के समय सौन्दर्य से चन्द्रकला तिरस्कारिणी, चित्रादि प्रियसखियों से वेष्टिता, निजप्रिया के सह कस्तुरी-कुंकुम-रत्नमय जलयन्त्रों से वसन्तोचित क्रीड़ा की है ॥५३

प्रोद्यत्पाटलपुष्प सेवितवना जाग्रत्पतङ्गप्रभा-
लोकप्रार्थितचारुशीतसलिला भास्वच्छिरीषद्रुमा।
मान्द्यं यत्र हिमस्य शीघ्रगमनं वायोर्निशा क्षीणता
सन्त्येते हि गुणा सुराजति सखेशोभा निदाघोद्‌भवा ॥५४

जहां पाटलपुष्पों से शोभायमान बनराजी मौजूद है तथा सूर्य का किरण प्रचण्डाकार धारण करता है, जहां मनुष्य मनोहर शीतल जल चाहते हैं तथा शिरीषवृक्ष समूह मौजूद है, जहां शीत मन्द पड़ जाता है तथा वायु वेग से बहने लगता है और रात्रि छोटी होजाती है वह निदाघ ऋतु वहां नित्य विराजमान मिलेगा ॥५४

यस्मिन् सान्द्रवनस्थलस्थविपिने वानीरवृक्षावृते
शीतैः संजलयंत्रनिर्गतकणैः संधुक्षिते कान्तया ।
श्रीखण्डाङ्कितदेहया परिगतैरालीकुलैर्वीजितः
पल्यङ्के सरसे शयालुरभवं शीतातिशीताङ्गभाक् ॥५५

जहां शीतकाल में शीत से आर्त्त शरीर होकर निविड बन में वेतों के कुंज में चन्दनाङ्कित कान्ता राधिका के साथ सखियों से रहित होकर सरस पलंग में मैं शयन करता था वह निदाघ प्रदेश का तुम वहां अनुभव प्राप्त करोगे । वहां जगह जगह फुहारा चलता होगा जिससे वे सब प्रदेश शीतमय होंगे ॥५५

मेघालिङ्गितदिङ्मुखा परिचिता शम्पाप्रकम्पादयै-
भस्विच्छक्रशरासनैः कवलिता द्रष्टारुणेन्दुच्छटा ।
नीपोत्पन्नपरागपुञ्जकुसुमैरालिङ्गिता धूसरै-
र्नृत्यन्मत्तमयूरमंडितवना केका कलोल्लासिनी ॥५६

अब वर्षाहर्ष विभाग का वर्णन करते हैं, जहां दिशाऐं मेघों से छागयी होंगी तथा विद्युत राजी से पहचान में आती होंगी आकाश इन्द्रधनु शोभा से शोभायमान हो रहा होगा । चन्द्रमा की छटा कुछ रक्तवर्ण होगई होगी । वनराजी नीपपरागों से तथा पुष्पों से धूसरवर्णा तथा नृत्यशील मत्तमयूरों से मंडित हो रही होगी । जगह जगह वे मयूर केका शब्द करते होंगे ॥५६

आभीलं हृदि शीतशीकरशरैर्विच्छेदिनां कुर्वती
दीप्यद्दावकृशानुदग्धकलभत्रासं नयन्ती स्वयम् ।
चञ्चच्चातकचंचु चुंबितरसा निर्द्धूत तापाचला
संजातस्तनितान्विता घनरसव्याकीर्णपद्माकरा ॥५७

वहां वनराजी विरहियों को शीतल जलकण रूप शरों से मर्माहत करती है । मेघाडम्बर का दर्शन कर दर्शकों के हृदय में अग्निदग्ध हस्ति शावकों का भ्रम होता रहता है । जहां

चातक, चञ्चु से मेघ रस का पान करने की चेष्टा में बैठा हुआ होगा तथा जहां ताप समूह दूर होजाता है । मेघगर्जनों से युक्त उस वर्षा विभाग में सरोवरादिक जलाशय गंभीर जलों से भर जाते हैं ॥५७

निर्धूलिद्रुम मण्डली किशलया पक्वाम्रजम्बूफला
शश्वत् कर्षकवृत्तिलोकसुखदा कन्दर्पराज्यस्थली ।
रंभारंभितनर्तनेन सरसो जम्भीरगम्भीरता
रम्यांगी सुषुमा विभाति विमला यत्राद्भुता वार्षिकी ॥५८

जहां अद्भुत वर्षा शोभा विराजमान हो रही होगी । वृक्ष, समूह धौत होगया होगा । जहां आम, जामुन पक गये होंगे । जो निरन्तर कृषि करने वालों का सुखदायी तथा कन्दर्प की राजधानी स्वरूप है । जहां केले की वृक्षावली सरस हिलती होगी तथा जो मधुरागी सुषमामयी, और पवित्रा है ॥५८

उत्तंसीकृतनीपजातकुसुमः पुष्पोल्लसद्भूषणो
राधाराधितदक्षिणेतरतनु गोंपीभिरावेष्टितः ।
माणिक्यांकितवेदिकास्थलगतं कादम्बिनीमण्डिते
यस्याहन्निकर द्युतिं ह्यनुभवं हिन्दोल लीला सुखम् ॥५६

जहां मेघमाला मण्डित स्थल पर नीलोत्पन्न कुसुमों से शोभित शिरोभूषण का धारण कर तथा पुष्पों के उत्तम भूषणों से भूषित हो, वामभाग में राधिका से शोभित तथा गोपियों से परिवेष्टित मैंने माणिक्य निर्मित वेदिकास्थल में हिन्दोललीला सुख का अनुभव किया है ॥५६

उद्यत्पांडुर चारुचन्द्रकिरणा मल्लीमतल्लीकृता
कासारोदितपद्मकन्दलकुला निर्मेघसंगाम्बरा ।
शीतोष्णप्रकटप्रतापशमनी शान्तस्वरूपानिला
त्यक्तातिक्रमया न मानसरसी निष्पंक वल्लीतला ॥६०

सत्कादम्ब कदम्ब कोमल कलालापा कलापाकुला
फुल्लेन्दीवरसंगमत्तमधुपाश्चक्रोल्लसद्व्याहृता ।
गुञ्जापुञ्ज विटङ्किता सुरतसत् क्रीडालसं क्षिण्वती
यत्रोत्तुङ्गगुणा शरत्परिचिता शोभा जरीजृम्भते ॥६१

जहां उद्भटगुणवाली शरत्कालीन शोभा विराजमान है वह प्रदेश तुम्हें मिलेगा । जो शोभा पाण्डुर मनोहर चन्द्रकिरणों से विभूषिता, मल्लिलताओं से शोभिता, कमलविराजित सरोवरों से परिवेष्टिता, मेघशून्य आकाशवाली, समशीतलता से तापनाशिनी, शान्तपवनों से युक्ता, स्वच्छ जलवाली सरसियों से परिशोभिता, पंकशून्या, उत्तम हंसों के कोमल आलापों से आकुला, फुल्लायमान नीलकमलों के मकरन्द पानोन्मत्त भ्रमरों से गुंजरिता, चक्रवालों के शब्दों से शब्दायमाना, गुंजापुञ्जों से वेष्टिता तथा उत्तम सुरत क्रीड़ालस्य की क्षीणकारिणी है ॥६०-६१

कूज द्वेणुनिनादमादकरसक्षिप्त त्रपाभिः सखे
मन्नैकट्य मुपागताभिरभितो गोपीभिरिन्दूदये ।
तत्तौर्यत्रिकदर्शनेप्सितमतिः कौतूहलाङ्गीकृतः
कालिन्द्याः पुलिनेऽरमं रतिकलाविज्ञश्च यस्मिन्पुरा ॥६२

पहले जहां जमुनातट पुंलिन में शरत्रात्रियों में रतिकला पण्डित मैंने शब्दायमान वेणुनिनाद मादक रस से लज्जारहिता, मेरे निकट उपस्थिता, गोपियों के साथ चन्द्रोदय के समय विहार किया था, उनकी नृत्यकलाओं का दर्शन के लिए मेरी महान् इच्छा रही । उस समय मैंने उनके सुन्दर नृत्य का अनुभव किया ॥६२

मन्दीभूतविभातभानुकिरणां लोध्रप्रसूनोद्गमां
हारीतावलिवन्दितां शुक मुखोद्जीर्णप्रियव्याहृताम्

दीर्घीभूतनिशा प्रियोत्सवकरीं शीताम्बुपद्माकरां
यत्रस्यां भुवि वर्णितुं क्षमति कः शोभां सुहेमन्तजाम् ॥६३

वहाँ की हेमन्तकालीन शोभा को पृथिवी में कौन वर्णन कर सकता है ? जो शोभामन्दी भूत सूर्य्य किरण विशिष्टा, लोध्र, पुष्पों के उद्गम से शोभिता, हारीत पक्षियों से वन्दिता, शुकों के मुख से उद्गीर्ण प्रेमालाप से शोभिता, लम्बी रात्रिवाली, प्रियजनों की आनन्ददायिनी, शीतल जल वाला सरोवर से परिवेष्टिता है ॥६३

कालिन्दीजलमज्जनं विदधतीनां यत्र तादृयोंदये
मत्प्राप्त्यै कृतकष्टकार्श्यकलितांगीनामहं तीरगान् ।
कन्यानां वसुदाम दाम सहितो गोपोद्भवा नांशुकान्
हृत्वा चारुरुहं कदंबविटपं तत्काम संसिद्धये ॥६४

जहां कदम्ब वृक्ष मौजूद है । गोपियां (कन्यकाऐं) जमुना जल में मंजिता होकर किनारे में वस्त्रों को रख मेरी प्राप्ति के लिय क्षीणांग के साथ कठिन व्रतसाधना कर रही थीं । मैंने वसुदाम-दाम सखा दोनों के द्वारा उन वस्त्रों का हरण कर उस कदम्ब वृक्ष में आरोहण किया था ॥६४

मुक्ताकारनिशास्खलद्धिमकणैराकीर्णशष्पांकुरा
वन्धूजीव जवातिरक्तकुसुमैरभ्यर्चिताङ्गी सखे ।
भारद्वाज विरावबृंहितवना कुन्दप्रसूनोज्वला
कान्तालिङ्गन मोददा च शिशिरश्रीर्यत्र विभ्राजते ॥६५

हे सखा ! जहां हिमकिरणों के गिरने से रात्रि मुक्तामयी हो रही होगी तथा तृणांकुरों से स्थान समस्त सुशोभित हो रहे होंगे । बाँधुली-जवाओं के अत्यन्त रक्त पुष्पों से जो स्थान परिसेविता है तथा भारद्वाज पक्षियों के शब्दों से शब्दायमान वनराजी से विभूषिता है । जहां उज्ज्वल कुंद पुष्पसमूह खिल

रहा होगा तथा जो प्रदेश कान्ता के साथ प्रिय को आलिंगन-आमोद देने वाला है वह शिशिरशोभा का धारणकारी शिशिर-सुखाकर प्रदेश तुम्हारे नयनों में आवेगा ।।६५

आगारेऽगुरुधूपधूमसहिते रत्नप्रभामण्डिते
तूलीकल्पिततल्पकोष्णधवले श्वेतोपधानाकुले ।
पल्यङ्के परिहासकेलिनिपुणाः सीमन्तिनीभिः सह
गाढालिंगनतत्पराः सुकृतिनो यत्रोत्सवं कुर्वते ॥६६

जहां सुकृतशाली, कान्ताओं के साथ अगुरुधूप के धूँआ से धूमलवर्ण, रत्नकान्तियों से मण्डित गृह में तुलाओं से विरचित सम-उष्ण धवलवर्ण शय्याओं से धवलित, शुभ्रतकिया समूह से युक्त पलङ्ग के ऊपर आमोद उत्सव करते रहते हैं। वे परिहास केलि में निपुण हो प्रिया के साथ आलिंगित होकर विविध विलास करते हैं ।।६६

माकन्दप्रियबान्धवे सुविकसत्सत्पाटला लंकृते
नीपव्यूह करम्बिते ससुमे मल्लीलतामण्डिते ।
लोध्रोयैः कुसुमैर्युते सवकुलै र्जाप्रज्जवाम्रेडिते
इत्थं षड्तुसेविते व्रजवने क्रीड़ा कृताभून्मया ।।६७

आम्रवकुल के प्रियवन्धु वसन्त में, विकसित पाटली पुष्पों से अलंकृत ग्रीष्म में, नीपसमूह से युक्त वर्षा में, मल्लिकावेष्टित शरत् में लोध्रपुष्पों से शोभित हेमन्त में, वकुलों के साथ जवा-पुष्पों से वेष्टित शिशिर में इस प्रकार छै ऋतुओं से सेवित व्रज के वन में मैंने नाना क्रीड़ा की है ।।६७

य स्यान्ते च निकुंजपुंजरुचिरो मत्केलि चिन्हाङ्कितः
फुल्लेन्दीवरकैरवोत्पलकुलैः संलालितः सर्वतः ।
पापाक्रान्तहृदः पुनाति च नरान् संसारदुःखाकुलां
स्तस्मात् पावन नामभाग्विजयते पद्माकरः सुन्दरः ॥६८

जिसके प्रान्तभाग में निकुंज पुंजों से मनोहर, मेरे केलि-चिन्हों से अंकित, सर्व्वत्र प्रफुल्ल इन्दीवर-कैरव-कमलों से संलालित पावन नामक सुन्दर सरोवर मौजूद है। संसार दुःखों में व्याकुल, पापाक्रान्त हृदय वाले नरों को पवित्र करने के कारण उसका पावन नाम पड़ा है ॥६८

शश्वत् साधनसिद्धयोगिमनसां पादैरगम्यैर्मम
वज्राम्भोरुहचक्र चाप मकरच्छत्रांकुशालंकृतैः।
आश्लिष्य प्रणयप्रकाशजननी कर्पूरवर्णान्विता
धूलिर्यत्तटसंगता सुरकुलै ब्रह्मादिभिः प्रार्थ्यते ॥६६

जिसकी तट संसर्गित धूलियाँ निरन्तर साधनसिद्ध योगियों के मन से भी अगम्य हैं जिनको ब्रह्मादि देवता चाहते रहते हैं। वे धूलियाँ स्पर्शमात्र से प्रेम प्रदान करने वाली हैं तथा जिनमें वज्र, कमल-चक्र-चाप-मकर-छत्र-त्रिशूल आदि चिन्हित मेरे चरणचिन्ह पड़े हुए हैं ॥६६

मद्रूप स्मरणोत्सवोत्पुलकितैः पुष्टैः कदम्बद्रुमैः
शाखाक्रान्त दिगन्तरैर्निगडितं सूर्य द्युति स्तम्भनम्।
यत्पार्श्वे शुक कोकिलाभिधवनं कान्तानिवासस्थल-
ग्रामो यावट नाम भाग् विलसते तत्पूर्वभागे शुभे ॥७०

जिसके निकट मेरे रूप स्मरण उत्सवों से पुलकित, विशाल, कदम्ब द्रुमों से परिशोभित कोकिल नामक वनराज विराजमान हैं। वहाँ के वे सब कदम्ब वृक्ष अपनी शाखाओं से दिशाओं को स्पर्शित कर रहे हैं तथा अपनी निविडता से सूर्य्यकिरण को ढांक रहे हैं। हे शुक! उस कोकिला वन की पवित्र पूर्व दिशा में राधिका के निवास स्थान यावट नामक ग्राम विराजमान है ॥७०॥

श्रीदामादिवयस्यवृन्दवलितो वक्रीभवद्भ्रूयुगो

माहेयी खुरधूलिधूसरतनु वेंणुध्वनिद्योतितः ।
मालालक्षितवक्षसा मनसिजं गोपीहृदि स्थापयन्
दृग्भंगीभिरहं प्रियापरिकरैः श्यामामुखे चुम्वितः ॥७१

जहाँ श्रीदामादि सखाओं के साथ परिवेष्टित, टेढ़ीभ्रू वाला, गोरज से धूसर शरीर, वेणुध्वनि प्रकाशक, मैं माला शोभित वक्ष से गोपियों के हृदय में कन्दर्प जागृत कर प्रिया के परिकरों के द्वारा दृग्भंगी के साथ चुम्वित हुआ था। अर्थात् गोष्ठागमन के समय वहाँ गोपियों ने कटाक्षभंगी के द्वारा हमें देखा था ॥७१

शीघ्रं मां नय वर्त्मवक्रनिकटस्थां चन्द्रशालां सखि
कामव्याधशरार्दिता पुनरहं गन्तुं न शक्नोमि ताम् ।
एतद्रोगचिकित्सका धरसुधः सोयं व्रजेन्द्रात्मजो
वेणुध्वानमुखः सरोजनयनो वीथीमलंकुर्वते ॥७२

हे कीरराज ! उस समय सखियों के साथ राधिका की जो वाणी वैदग्धी हुई उसे सुनो ! राधिका कहने लगी–हे सखि ! हमें शीघ्र चन्द्रशाला के ऊपर ले चलो। जहां बैठकर मैं मार्ग में आने वाले श्रीहरि के मुखचन्द्र का दर्शन कर सकती हूँ । मैं कदर्पव्याध के शरों से मर्माहत होगयी, अतः चंद्रशाला में जाने के लिए मेरी शक्ति रही नहीं। हे सखि ! देख मेरी इस व्याधि के चिकित्सा का अधरसुधा के धारणकारी, वे कमल-नयन, ब्रजराजनन्दन, मुख में वेणुवादन करते हुए मार्ग को शोभित कर रहे हैं ॥७२

त्वं स्वस्था भव रोदनैरलमलं मा वान्धवान्पीडय
प्राणप्रेष्ठवियोगदुःखदहनक्रान्ता मया ज्ञायते ।
आयातः सखि निश्चनोमि निकटे गोपीजनोज्जीवनो
यस्मात् कर्णरसायनो मृगदृशां वेणुस्वनः श्रूयते ॥७३

अब सखी कहने लगी। हे राधे ! तुम स्वस्थ होओ, रोदनों

से वन्धुओं को मत पीड़ित करो। मैं जानती हूँ कि तुम प्राण-वल्लभ की विरह दुःखाग्नि से पीड़िता हो। हे सखि ! मैंने निश्चय कर लिया है गोपीजन जीवन श्रीहरि निकट में आ रहे हैं। क्योंकि गोपियों के कर्णरसायन वेणुध्वनि सुनने में आ रही है ॥७३॥

धिन्व श्चातक लोचनानि सुदृशां तापं च निर्वापयन्
विद्युत्पाण्डुरचारु चैलजघनो वंशीकलोद्गर्जितः।
सौन्दर्यासृतवर्षकः कुलवधूधैर्यत्रपाप्लावकः
सोऽयं पश्य पुरा वलाहकसमः कृष्णः समागच्छति ॥७४

देखिए, वे मेघमाला समान श्रीहरि आ रहे हैं। जो रमणियों के नयन चातकों को प्रसन्न कराते हुए तापों को दूर कर रहे हैं। जिनके जंघाभाग में विद्युत के समान मनोहर वस्त्र मौजूद है तथा जो वेणुवादन में तत्पर हैं। जो सौन्दर्य्यामृत का वर्षण से कुलवधुओं के धैर्य्य-लज्जा को नाश कर देने वाले हैं ॥७४॥

मानं मुञ्च विदूरतः प्रियसखि द्वारे प्रयाणं कुरु
पश्चात्तापमुपैश्यसे च समयं नैवेदृशं प्राप्स्यसि।
चञ्चद्गोप नितम्बिनी नव दृशां भंगीभिरंगीकृतः
कृष्णः सुन्दरशेखरोऽपि सदनद्वारं तवालोकते ॥७५

सखी किसी मानिनी को समझाती है। हे प्रियसखि ! मान छोड़ देओ। द्वार के बाहर चलो। तुम पश्चात्ताप क्यों कर रही हो ? फिर ऐसा समय नहीं आवेगा। चंचला गोप नितम्ब-नियों की नवीन कटाक्ष दृष्टि से आलिंगित, सुन्दर शेखर श्री-हरि तुम्हारे गृहद्वार के तरफ देख रहे हैं ॥७५॥

सर्वा गोपवधूर्व्रजेन्द्रतनयस्त्यक्त्वा तवैवाननं
यस्मात्पश्यति ते समा न रमणी लोकत्रये वर्तते।

इत्थं गोकुलयोषितां प्रियतमाः किञ्चित्स्मितोल्लासिता
व्याहारा दिवसावसानसमये यत्रोत्सवं मे ददुः ॥७६

ब्रजराजनन्दन अन्य समस्त गोप बन्धुओं को छोड़कर केवल तुम्हारे मुख को देख रहे हैं। क्योंकि तुम्हारे सदृश सुन्दरी रमणी तीनों लोक में अन्य कोई नहीं है। हे कीरराज ! इस प्रकार गोकुल रमणियों के स्मित उल्लसित प्रियालाप दिवावसान के समय हमें उत्सव प्रदान करता था ॥७६॥

सा शृंगाररसोदयेन सरसा गोपाङ्गनानां रति-
र्वाग्भङ्गीभिरखण्डिताः सुवचनास्तासां सुधानिन्दकाः ।
विव्वोकादिविभावभावविलसत्कक्षा कटाक्षावली
संजातस्मरणस्य चित्तमधुपं कुर्वन्ति मे व्याकुलम् ॥७७

वह शृङ्गाररस उदय से सरस गोपगोपियों की रती वह उनकी सुधा निन्दितकारी, वाणीविलासों से परिपूर्ण वचनावली, विव्वोकादि विभावभावों से विलास प्राप्त वह कटाक्षराजी, स्मरणकारी मेरे चित्तमधुप को व्याकुलित कर रही है ॥७७

ब्रह्मालोकपितामहोपि कुरुते तीव्रातितीव्रं तपो
य त्पादाम्बुजधूलिधूसरतनु प्राप्त्यै मदीयोद्धवः ।
दृष्टा यत्प्रणयस्य गुल्मलतिकाजन्म ब्रजे वाञ्छति
तत्सन्देशहरस्य भाग्यमहिमा शक्यः कथं वर्णितुम् ॥७८

जहाँ लोक पितामह ब्रह्मा भी उनके पादकमल की धूलियों से धूसरित शरीर होने के लिए तीव्र से तीव्र तपस्या कर रहे हैं। अधिक मेरे उद्धवजी भी जिनके प्रणय को देखकर ब्रज में गुल्म लता रूप में जन्म लेने की वांछा करते हैं। उनको सन्देश देने के लिये जाने वाला तुम्हारी महिमा कौन कह सकता है ॥७-॥

इत्थंभूततया जनोत्सवकरी वल्लीविचित्रान्तरा

माहेयी निकुरम्ब चुम्बिततटी नन्दीश्वरालिङ्गिता ।
गोपैर्गोपनितम्बिनीभिरभितो बालैस्तदीयैर्युता
पल्ली गोष्ठपुरन्दरस्य सुखदा त्वद् दृक्पथं यास्यति ॥७९

इस प्रकार से गोष्ठेन्द्र की वह सुखदायिनी पल्ली (नगरी) तुम्हारे नेत्र पथ में आवेगी। जो मनुष्यों को उत्सव देने वाली, लता-वृक्षों से विचित्रा, गो-महिषियां से परिव्याप्ता, नन्दीश्वर से आलिंगिता, गोप-गोपरमणी-गोपबालकों से युक्त है ॥७९॥

श्रीगोविन्दमुनीन्द्रवन्दितपद द्वन्द्वार विन्दासव-
प्रोन्मत्ताखिलचित्तवृत्तिसुखदे सारङ्गसङ्गोदिते ।
काव्ये नन्दकिशोरचन्द्ररचिते श्रीकीरदूताभिधे
पूर्तिं नन्दनिवासवर्णनमयः सर्गश्चतुर्थोऽगमत् ॥८०

श्रीगोविन्द के मुनिगण वन्दित चरण कमल युगल के मकरन्दपान-उन्मत्त रसिकजनों की चित्तवृत्ति में सुखदायी, कौतुकपूर्ण, नन्दकिशोरचन्द्र के द्वारा विरचित इस शुकदूत नामक काव्य का नन्दालय वर्णनमय चतुर्थ सर्ग समाप्त हुआ ॥८०॥

इति श्रीदार्शनिकसार्वभौम श्रीमन्माध्वगौडेश्वराचार्य श्रीरामराय गोस्वामिवंशोद्भव भागवतचन्द्र श्रीमन्नन्दकिशोर प्रभु प्रणीते श्रीशुकदूतमहाकाव्ये चतुर्थसर्गः समाप्तिमगात् ॥

—o—

पंचमः सर्गः

अथ तन्निकटं गतो भवान् वचनानि व्यथितात्मनां तदा ।
विरहाकुलगोष्ठयोषितां करुणः श्रोष्यसि साश्रुलोचनः ॥१

अनन्तर उस नगरी में व्यथित हृदया, विरहव्याकुला गोष्ठ रमणियों के वचनों को अश्रुलोचन, करुण हृदय से सुनोगे ॥१

अयिगोकुलजीवन प्रभो करुणासागर गोकुलोदय ।
तनुनिन्दितनीलपङ्कज सकृदंगीकुरु देहि दर्शनम् ॥२

हे गोकुल जीवन! हे प्रभो! हे करुणासागर! हे गोकुल में प्रकट! हे निज अंगकान्ति से नीलकमल निन्दाकारी! तुम एक बार दर्शन देकर अंगीकार करो ॥२॥

मम मा कुरु देहरक्षणे सखि यत्नं यदि मद्धितैषिणी ।
व्रजनाथवियोगनिन्दितान्मरणं श्रेष्ठंतरंहि जीवनात् ॥३

हे सखि! मेरे शरीर रक्षण में यत्न मत करो। तुम तो मेरी हित रखने वाली हो। व्रजनाथ की वियोगनिन्द्रा में जीवन धारण से मरना अति उत्तम है। नहीं तो हमारे प्रेम में कलंक आ सकता है ॥३॥

उचितं तव नेति चिन्तनं दयितो गोकुलमागतोयतः ।
विधुरं प्राप्स्यति मूर्छितेन्द्रियो भवदालोकनमन्तरेण सः ॥४

अब सखी उसको समझाती है, तुम्हारी इस प्रकार की भावना उचित नहीं है। प्राणवल्लभ गोकुल में अवश्य आवेंगे। वे आकर तुम्हें न देख मूर्छित होकर अत्यन्त दुख को प्राप्त होंगे ॥४॥

क्व सुखं सखि कृष्ण संगजं विधुरं क्वास्ति कठोरमीदृशम् ।
किमियं कृतिरैन्द्रजालिकी क्षणिकं स्वप्नकुतूहलं च किम् ॥५

हे सखि! कहाँ तो कृष्ण संग उत्पन्न सुख और कहाँ इस

प्रकार कठोर दुःखानुभव ! क्या यह सब क्रिया इन्द्रजालमयी थी अथवा यह क्षणिक स्वप्न कौतूहलमय सुख था ॥५॥

क्वगताः प्रियसंगशोभिता दिवसाः सत्क्षणदाक्षण प्रदाः ।
विधिना निधिनाशकारिणा विधुराब्धौत्वरितं निपातिता ॥६

प्रियसंग से शोभायमान वे सब दिवस तथा वे सब उत्सव-दायिनी रात्रियां कहाँ चली गईं । हाय ! निधिनाशकारी विधाता ने शीघ्र ही दुःखसागर में डाल दिया ॥६॥

मधुपत्तनमुत्तमं गतः कपटी सः खलु नात्र मे व्यथा ।
ममगानसमिन्द्रियैः सह निजसंगे किल नीतवानिति ॥७

वे कपटी श्रीहरि मधुपुरी को चल दिये । उसमें मेरा विशेष दुःख नहीं है । परन्तु वे अपने साथ मेरी इन्द्रियों के साथ मन को भी ले गये इसका मुझे सोच है ॥७

प्रियमिन्दुमुखं विना यतो न मृताहंवहुयत्नवत्यपि ।
परिषत्सुपुरस्य योषितामुपहास्या न भवामि किं ततः ॥८

श्रीहरि के प्रिय मुख के अवलोकन के बिना मैं वह यत्न करने पर भी मर नहीं रही हूँ यह बात पुररमणियों की सभा में उपहास्यमयी हो जावेगी । अर्थात् पुररमणियां हमारे प्रेम में कलंक उपस्थित करेंगी ॥८॥

सखि तस्य कथा कदापि मे कथितव्या न मुहुर्विचार्यते ।
तदपि प्रतिभाषितं वलाद्वदने विस्फुरते करोमि किम् ॥९

हे सखि ! उनकी कथा मैं कभी नहीं कहूँगी इस प्रकार मैं बार बार विचार करती हूँ । परन्तु क्या करूँ । हमें कहना पड़ता है । वलात्कार से उनकी कथा मेरे मुख पर आजाती है । मैं बिना कहे रह नहीं सकती ॥९

नवपद्मपलाशलोचनो विविधद्योतशिखण्डशेखरः ।
स्मित सुन्दरकोमलाधरः किमु गन्ता मम नेत्रयोः पथम् ॥१०

हे सखि ! नवीन कमल पलास की भांति नेत्र वाले, नाना प्रकार कान्तिमय भूषण तथा मयूर पुच्छ से शोभित, हँसी (स्मित) से सुन्दर कोमल अधर वाले, श्रीहरि क्या मेरे नेत्रों के पथ के पथिक बनेंगे ॥१०

हृदि मा वहु दुःखदैन्यतां ऋतवाक् स व्रजमागमिष्यति ।
नय धैर्ययुताशया दिनान् दिवसा यांति न कस्यचित्समाः ॥११

हे सखि ! हृदय में इस प्रकार वहु दुःख दैन्य मत करो। वे सत्य बोलने वाले हैं। अवश्य व्रज में आवेंगे। धीरता के साथ आशा रखती हुई दिनों को बिताओ। सर्व्वदा समान दिवस नहीं रहते। फिर भी सुख दिवस आवेगा ॥११॥

कठिनेन वियोगसागरे नच चित्रं हरिणा निपातिता ।
कुटिलाऽसित वर्णका नराः सकलस्यैव भवन्ति दुःखदाः ॥१२

कठोर हरि ने वियोग सागर में हमें गिराया है इसमें कोई आश्चर्य्य नहीं है। क्योंकि काले रंग के मनुष्य सबको दुःखदायी होते हैं ॥१२॥

नयनांते स्फुरते प्रतिक्षणं कपटी मे नवनीरदद्युतिः ।
तदपि प्रतिवक्ति पूर्ववत् न वचश्चित्रमतः परं कियत् ॥१३

वे नवीन मेघ कान्तिवाले कपटी श्रीहरि प्रतिक्षण नयन में स्फूर्त्त हो रहे हैं। तो भी पहले की तरह आलाप करते हैं। उनके इस कार्य्य में कोई आश्चर्य्य नहीं है ॥१३॥

नवनीपकरम्बिता ह्यमी विपिना हन्त वसन्तसंस्कृताः ।
जनयन् हृदि तीव्रवेदनां मम कुर्वन्ति वियोगदैर्घ्यताम् ॥१४

नवीन कदम्बों (नीपों) से वेष्टित, वसन्त शोभा से संस्कृत प्राप्त यह वन मेरे हृदय में तीव्रवेदना उत्पन्न कर वियोग दुःख को बढ़ा रहा है ॥१४॥

सखि पूर्वनिशान्तरे मुहुर्हरिणाहं मधुरां यियासुना ।

तमवोचमिदं दुनोति मामनुनीतापि न मानमन्दिरे ॥१५

हे सखि ! मथुरा जाने वाले हरि ने पूर्व रात्रि में मान-मन्दिर में आकर हमें अनुनय किया था वह अनुनय मेरे लिए दुःखद होरहा है ॥१५

सखि तस्य दरप्रमोददा मिलनाशापि गता विदूरताम् ।
मथुरानगरं विहाय तत्सगतो दूरतरां कुशस्थलीम् ॥१६

हे सखि ! उसकी प्रमोददायिनी मिलन आशा अब दूर चली गयी । सुना है कि वे मथुरा छोड़कर दूर देश द्वारका चले गये हैं ॥१६

मिलनावधिवासरो गतः कुटिलो हन्त तथापि नागतः ।
सुख विस्मृतगोष्ठवर्त्मना न च दूतः किल तेन प्रेषितः ॥१७

मिलन दिवस चला गया तो भी वे कुटिल नहीं आये । वे तो सुख में आकर गोष्ठ नगरी को ही भूल गये । उन्होंने अब तक किसी दूत को भी नहीं भेजा ॥१७॥

अयमेव मया पुनः पुनरनुतापः क्रियते प्रतिक्षणम् ।
रजनीकरसुन्दरं पुनर्वदनं तस्य हि नावलोकितम् ॥१८

मैं प्रतिक्षण बार-बार यह अनुताप कर रही हूँ कि उनके निशाकर की भाँति सुन्दर वदन का अवलोकन नहीं कर सकी ॥१८॥

स्थिरजंगम जंतुमोहनो वकुलालंकृतभागकानने ।
मम कर्णपथं किमेष्यति हरिवेणुध्वनिरिन्द्रयोत्सवः ॥१९

हाय ! फिर क्या वकुलों से अलंकृत वृन्दावन के वनों में स्थिर जंगम जन्तु मोहनकारी, इन्द्रियों के उत्सवदायी श्रीहरि की वेणुध्वनि मेरे कर्णपथ की पथिक होगी ॥१९॥

विलपंति विलासलालसा रतिखेदाश्रु विमिश्रलोचनाः ।
शुक संमज्जयति व्यथोदयः श्रुतिगम्यः करुणाम्बुधौ न किम् ॥२०

अहो विलास की लालसा में, रति से खेत प्राप्ता रमणियाँ विलाप कर रही हैं। हे शुक ! जिसका श्रवण महान् दुःखदायी हो रहा है। इसको श्रवण कर सब दुःखसागर में डूब जाते हैं ॥२०॥

शृणु गोकुलवल्लवीजन प्रणयं मत्सुखदं ममाननात् !
मम याभिरहो कृते शुक पतिपुत्रालयदेहमुज्झितम् ॥२१

हे शुक ! गोकुल रमणियों के मत्सुखदायी प्रणय का रहस्य हमारे मुख से सुनो। अहो ! जिन्होंने मेरे लिये पति पुत्र-गृह-देह सबका त्याग किया है ॥२१॥

निजदुःखभराद्व्यथन्ति ता न तथा कोटिगुणोदयादपि ।
अनृतश्रवणेन मद्यथा तनुतापास्तिमितेन्द्रियं यथा ॥२२

वे कोटिगुण वर्द्धित अपने दुःख को नहीं गिनती हैं। परन्तु हमारे लेशमात्र दुःख श्रवण से वे मूर्छित होजाती हैं ॥२२॥

शुक तत्रहि राधिकाभिधा रमणी राजति मत्प्रियोत्तमा ।
शरदिन्दु विनिन्दकानना नववृन्दावन चक्रवर्तिनी ॥२३

हे शुक ! वहाँ मेरी प्रियोत्तमा, शरच्चन्द्रविनिंदित मुख वाली, नवीन वृन्दावन चक्रवर्तिनी राधिका नाम्नी रमणी विराजमान हैं ॥२३॥

मयि दूरतरं गते प्रिये विरहेणा द्य गता विषादताम् ।
विपिने दवतापिते यथा पतिता दैववशात्कुरङ्गिणी ॥२४

हमारे दूर देश में आने पर वह आज विपिन में दैववश अग्निदग्धा हरिणी की भांति विषाद को प्राप्त होरही है ॥२४॥

श्रुतिमार्गमुपागतं मम प्रियराधेति पदं सकृत्सखे ।
जन यत्त्यधिकं न कं सुखं नहि जाने पदशक्ति मुत्तमाम् ॥२५

हे सखे ! "राधा" यह प्रिय शब्द एक ही बार कर्णपथ में जब उपस्थित होता है तब उस समय जो सुख होता है उसे मैं

नहीं कह सकता ॥२५॥

यदङ्गसौन्दर्यमतुल्यशोभं वक्तुं समर्थो न सहस्रवक्त्र ।
तथाप्यहं तत्स्मृतिमत्तचित्तो दिङ्मात्रमेव प्रवदामि किंचित् ॥२६

जिसके अंगसौन्दर्य, अतुलनीय शोभा को सहस्रवदन शेष भी नहीं वर्णन कर सकता । तो भी मैं उनके स्मरण से उन्मत्त चित्त हो, दिग्दर्शनमात्र से कुछ कहता हूँ ॥२६॥

एणीदृशः सिन्दुररक्तपुष्पश्रेणीच्छविग्रंथितमध्यभागा ।
पृष्ठप्रयागे सुतरां लुठन्ती वेणी त्रिवेणीव विभाति यस्याः ॥२७

जिसकी वेणी पृष्ठ देश रूप प्रयागराज में त्रिवेणी की भाँति विराजमान है, जिसके बीच बीच में सखियों के द्वारा सिन्दूर की भांति रक्त पुष्पों का ग्रन्थन किया हुआ है ॥२७।

(युग्मं) निर्लाञ्छन: क्षीणरुचिश्च सर्वदा प्रकाशमानस्तमसा ननिर्जित:
मध्ये नटत्खंजनयुग्ममण्डितस्तदूर्ध्वदेशे विलसद्धनुर्द्वय: ॥२८

कलंकरहित, अक्षीण रुचिमय, सर्वदा प्रकाशशील, अन्धकार से अजित मुख चन्द्रमा विराजमान है । उसके बीच नृत्यशील दोनों खंजन पक्षी की भाँति नेत्रयुगल हैं । उसके ऊपर दो धनुष विलास कर रहे हैं, वे भ्रूयुगल हैं ॥२८॥

गांगेयकक्षाव्रततौ कृतोदयश्चन्द्रो यहि स्याद्भ्रमरावलीवृत: ।
तदा कथंचिन्मुखतुल्यतां लभेच्छ्रीराधिकाया: कृत पुण्य पद्धति: ॥२९

यदि सुवर्णलतिका में चन्द्र का उदय हो उसमें फिर भ्रमरों को रख दिये जावें तो श्रीराधिका के मुख के साथ कुछ तुलना प्राप्त हो सकती है ॥२९॥

कंठं त्रिरेखांकितकं वुतुल्यं यस्याः सुधासुन्दरवाक्य वृन्दम् ।
मृणालमाधुर्यहरं च वाहुद्वन्द्वं सरोज द्युति पंचशाखम् ॥३०

उनका कंठ त्रिरेखा से अंकित शंख की भांति है । जिससे

सुधासुन्दर वचनावली निकलती रहती है। दोनों वाहु मृणाल माधुर्य्य को हरण करने वाले हैं। हस्त दोनों कमल की भांति हैं ॥३०॥

हारैर्मनोज्ञं हरहासतुल्यैः समुल्लस द्यौवनलक्षणाभम्।
उत्तुंगता पीनविशालताढ्यं वक्षःस्थलं भाति सखे यदीयम् ॥३१

हे सखे! जिसका वक्षःस्थल हरहास्य की भाँति हीरों से मनोहर है मानो यौवन उल्लसित हो रहा है। तथा जो उच्चतर परिपुष्ट और विशाल हैं ॥३१॥

आवर्तनाभीक मलंकृतं वलित्रयेण यस्योदरमल्प पौरुषम्।
तिरस्कृताश्वत्यनवीनपल्लवं विराजते रोमसुराजिराजितम् ॥३२

जिसका उदर देश आवर्त्तमान नाभिकमल तथा त्रिवलि-रेखा से शोभायमान है। जो अश्वत्थ के नवीन पत्रों को तिरस्कृत कर रहा है तथा जिसमें रोमावली विराजित है ॥३२॥

विनिद्रसत्कोकनदद्वयद्युतिं तिरस्करोति प्रसरन्मरीचिभिः।
मंजीरमंजुध्वनिधोरणीधरं नखद्युतिं भाति यदंघ्रियुग्मकम् ॥३३

जिसके चरण युगल फैली हुई कान्तिछटा से मुद्रित उत्तम रक्त कमल कान्ति को तिरस्कृत कर रहे हैं तथा जो नखकान्तियों से शोभायमान है और जिनमें नूपुरों की मनोहर ध्वनि को धारण किये हैं। ३३॥

त्रिविष्टपे यद्यपि विग्रहोपमा तस्या यथार्था नहि दृश्यते मम।
तथाप्यलक्ष्ये च तदीय विग्रहे मनः प्रवेशाय परं निगद्यते ॥३४

जगत् में यद्यपि उनके विग्रह की यथार्थ उपमा नहीं दीखती तो भी उस अलक्ष्य विग्रह में मनः प्रवेशार्थ मैं कुछ वर्णन करता हूँ ॥३४॥

यद्रूपमालोक्य कदापि कुत्रचिद्विलज्जिता निर्द्धूतगर्वसंचया।
कर्तुं तपस्तादृशरूप सिद्धये पद्मापि पद्मालयवासिनी ह्यभूत् ॥३५

जिसके रूपों की छटा समानता किसी ने कभी कहीं नहीं देखी है। जिसके दर्शन से लक्ष्मी भी विलज्जिता तथा गर्व्व-नाश के कारण दुःखिता होकर उस प्रकार सौन्दर्य प्राप्ति करने की इच्छा से तपस्या कर रही हैं। अतः कमलवन में श्रीलक्ष्मी की स्थिति उचित होरही है ॥३५॥

लोके प्रकाशेन यदीयमूर्तेः सृष्टिश्रमः सार्थकतामवाप ।
स्वयम्भुवः कर्मकृतं प्रयत्नाद्यतो यशः प्राप्तिमृतेन सार्थम् ॥३६

जिसकी मूर्ति को लोक में प्रकाशित कराने के कारण ब्रह्माजी का सृष्टिश्रम सार्थक होगया है। क्योंकि यत्न के साथ जो कुछ किया जाता है यदि उसमें यश नहीं होता है तो वह निरर्थक माना जाता है ॥३६॥

लोके स्त्रियो यद्यपि सन्त्यनल्पा विलासलीलारस पूर्णगात्राः ।
तथापि मन्मानसरत्नहर्त्री राधाभिधेयैव नच द्वितीया ॥३७

यद्यपि पृथिवी में विलास लीला रस में परिपूर्ण शरीर वाली बहुत रमणियां मौजूद हैं तो भी मेरे मानसरत्न हरण-कारिणी राधानाम्नी रमणी से द्वितीया (दूसरी) कोई नहीं है ॥३७

चातुर्य सीमा विधिना धृता किं त्रिविष्टपस्था अपि कोविदेन ।
देहे तदीये स्तनशैलदुर्गे संगोपितुं क्रूरजनस्य भीत्या ॥३८

क्या महान् चतुर विधाता ने जगत में से चातुर्य्यसीमा को क्रूरजनों के भय से उसके स्तनशैल दुर्ग रूप देह में छिपाकर रख दिया है ॥३८॥

भ्रूभंगदूरीकृतसत्कुलाङ्गना नाम्यस्तधैर्यादि गुणोजितारम्भूः ।
यस्याः स्मितेनैव सखे सकौतुकं विनिर्जितोहं गतधैर्यपद्धतिः ॥३९

जिसने भ्रूभंग से उत्तम कुलांगनाओं का धैर्य्यादि गुण दूर किया है तथा जिसके मन्दहास्य का दर्शन कर कन्दर्पजयी मैं भी पराजित होगया और मेरी धीरता नाश होगयी ॥३९॥

यस्या वयस्या ललिता विशाखा चित्रासुदेवी च तथेन्दुलेखा।
श्रीतुङ्गविद्यापि च रंगदेवी श्रीचम्पकल्लीति भवंति चाष्टौ ॥४०

जिसकी ललिता, विशाखा, चित्रा, सुदेवी, इन्दुलेखा, तुंगविद्या, रंगदेवी तथा चम्पकलता ये आठ सखियाँ हैं ॥४०॥

कुरंग कान्ता इव मुग्धनेत्रा सुवर्णशोभा हरि विग्रहाभाः।
यद्दृष्ट दिक्षु द्विजराजवक्त्रा भ्राजन्ति यत्सेवनविज्ञमेधाः ॥४१

जिसकी अष्टदिशाओं में ये हरिणी की भांति मुग्धनेत्र वाली, सुवर्ण शोभा तिरस्कारिणी, चन्द्रमुखी, सेवा में परम चतुरा सखियां विराजमान हैं ॥४१

तां मद्वियोगानलवर्चिमालया समन्त तस्तप्तकलेवरां प्रियाम्।
श्वासोद्गमेना सभितार्तिजीवितां सखे भवांस्तत्र विलोकयिष्यति ॥४२

हे सखे! तुम वहां मेरी वियोगाग्नि अर्चिमाला से सर्व्व-प्रकार तप्तकलेवरा, प्रिया राधा को देखोगे। केवल श्वास चलने के हेतु जिसकी जीवनाशा अनुभूत हो रही होगी ॥४२॥

मद्विप्रलम्भज्वरजर्जराङ्गी वैवर्ण्यविप्लावित देहकान्तिः।
मद्वल्लभा मुग्धतरा दुनोति विधुन्तुदग्रस्तशशि प्रभेव ॥४३

मेरे वियोग ज्वरों से जर्जरांगी, वैवर्ण्यता से धौत देह कान्तिवाली, मेरी प्राणवल्लभा, मोहिता राधा राहू ग्रसित चन्द्र-प्रभा की भांति वहां विराजमान होरही होगी ॥४३॥

निरन्तरालस्खलदश्रु निर्झरैर्देशं नदीमातृक मेव कुर्वती।
सखी जनाश्वासनपुष्टयाशया यथा कथञ्चिच्च विभर्ति जीवितम् ॥४४

वह निरन्तर अश्रुधाराओं से समस्त व्रजदेश नदी मातृक अर्थात् बाढ़ से परिपूर्ण नदी रूप करती हुई सखियों की आश्वासन आशा से यथा कथश्चित अर्थात् जैसे तैसे जीवन को धारण कर रखा है ॥४४॥

वयोग वैश्वानर वर्चितीव्रतादग्धत्व मन्त-करणं किलाप्नुयात्।

आसारतुल्यैर्नयनाश्रुनिर्झरैस्ततिसिंचितं चेन्न भवेच्छुकाधिप ॥४५

हे शुकराज ! यदि नदियों की भांति नयनाश्रुनिर्झरों से निरन्तर उसके अन्तःकरण सिंचित नहीं होता तब वह वियोगाग्निज्वाला तीव्रता से अब तक जल जाता ॥४५॥

विच्छेदवैश्वानरचण्डकान्तिभिः प्रसर्पिताभिश्च विलीनजीवनः ।
श्वासानिलोष्णत्वबृहत्तराजितो निदाघकालो भजते सदा तनुम् ॥४६

उस राधिका का जीवन, प्रसारित वियोगाग्नि की प्रचण्ड कान्ति से विलीन होरहा होगा । उसका शरीर सर्व्वदा श्वासाग्नि की महान् उष्णता से निदाघ ऋतु में मनुष्यों की भांति सूख गया होगा ॥४६॥

सखीप्रयत्नेन यथाकथंचिच्छरीरचेष्टामवगम्य राधिका ।
हा प्राणनाथेति पुनः पुनर्वदन् विनष्टचेष्टं शुक याति मूर्छनम् ॥४७

हे शुक ! वह राधिका सखियों की चेष्टा से यथा कथञ्चित शरीरचेष्टा का समाधान करती हुई निरन्तर हा प्राणवल्लभ ! इस प्रकार बार बार बोलती है तथा चेष्टाशून्य हो मूर्च्छा प्राप्त होजाती है ॥४७॥

निजप्रियालीविधुरस्य दर्शनादत्यन्तदुःखाब्धिनिमग्नमानसैः ।
सखीजनैः कल्पिततल्पकोपरि पङ्केरुहैर्निःपतिता च सेव्यते ॥४८

अपनी प्रियसखी का इस प्रकार दुःखचेष्टा देखकर सखियां भी अत्यन्त दुःखसागर में निमग्न मना होजाती हैं । उस समय वे सब कमलों की शय्या बनाकर उसके ऊपर उसको रख कर सेवा करने लगती हैं ॥४८॥

श्रुत्वा प्रसङ्गेन जनैरुदाहृतं ममाभिधेयं त्वरितं समुत्थिता ।
विलोकयन्ती चकितेक्षणां प्रिया सखीजनान् दुःखयति प्रतिक्षणम् ॥४९

प्रसंगवश मनुष्यों के द्वारा उच्चारित मेरे नाम का श्रवण कर वह शीघ्र उठ जाती है तथा चकितनयन से देखती हुई

प्रतिक्षण सखियों को दुःखाती है ॥४९॥

ततस्त्वया तत्र गते न वाच्यं समागतः कृष्ण इति प्रयत्नात् ।
तामन्यथा मोह निमग्नचित्तां कर्तुं सचेष्टां शुक कः समर्थः ॥५०

अतः हे शुक ! तुम वहां जाकर "श्रीकृष्ण आरहे हैं" इस प्रकार यत्न के साथ कहना । जिससे वह सचेष्ट होकर कुछ कहने लगेगी ॥५०॥

उत्थाय हस्ताम्बुरुहे प्रियायास्तस्या भवान् सङ्गमनं करोतु ।
भयं तिरस्कृत्य शुकेन्द्रमौले सोत्कण्ठचित्तां वदतात् क्रमेण ॥५१

जब वह उठ बैठेगी तब तुम निर्भय होकर उसके हस्तकमल में बैठकर उत्कंठित चित्ता उसको धीरे धीरे कहना ॥५१

श्रीकृष्णसन्देशहरः समीपं समागतोऽहं तव तत्प्रियेच्छुः
श्रीद्वारवत्यादयितेन तेन वदामि तद्यत्कथितं तवाग्रे ॥५२

श्रीकृष्ण का सन्देश लाकर आपके पास उनके प्रियकारी मैं आया हूँ । द्वारकानाथ ने हमें आपके पास भेजा है । उन्होंने जो कहा है सो उसे आपको सुनाता हूँ ॥५२॥

कुशस्थली रत्नविनिर्मिता पुरी राज्यञ्च भूमीश्वरवर्गसत्कृतिः ।
न तोषयन्ते विरहेणजर्जरं मामिन्दुवक्त्रे भवतीं विना प्रिये ॥५३

हे चन्द्रवदना ! हे प्रिये ! रत्नों से विनिर्म्मित यह द्वारकापुरी, राज्यवैभव, राजाओं का आदर ये सब आपके बिना विरह-जर्जरित हमें सुखी नहीं कर सकते हैं ॥५३॥

हर्षाकराणि मम भाग्यतरोः फलानि
बीजानि पञ्चशरकेलि कुतूहलस्य ।
प्रेमावृतानि१ च मम स्मृतिमागतानि
त्वच्चेष्टितानि लुठयंति ममान्तरंगम् ॥५४

कन्दर्प क्रीड़ा से कुतूहल मेरे भाग्य वृक्ष के हर्षकारी फलबीजरूप तुम्हारी प्रणययुक्त चेष्टायें मेरी स्मृति में आकर मेरे हृदय को

१—प्रेमाधिकान च पाठ ।

विदीर्ण कर रही हैं ॥५४॥

स्मर विदलित मर्मा विश्लथद्धैर्यवर्मा
विगतसुरत शर्मा त्यक्त शारीरकर्मा ।
अकृत ललितनर्मा लायकः क्लान्तवर्ष्मा
विरहमिहिरघर्मा वेष्टितो लीनधर्मा ॥५५

कामपीड़ा से मेरा मर्म्मस्थल विदीर्ण होगया है, तथा मेरा धैर्य्य-कवच टूट गया है । मैंने सुरत लज्जा को छोड़ दिया है और शरीर के समस्त कर्म दूर होगये हैं । मैं अब नर्म्मालाप करने में असमर्थ तथा मलीन शरीर होरहा हूँ । विरह सूर्य्य के ताप से मेरा शरीर घर्म्माक्त होगया है, मेरी वृत्तियां लोप होगयी हैं ॥५५

निविडकठिन वाधा जर्जरीभूतगात्रो
धवलतरकपोलः श्वास शुष्काधरश्रीः ।
सलिलभरनेत्रः शोकसंविग्न चित्तः
सुमुखि तव सखा हं किं करोमि क्वयामि ॥५६

कठिन वाधाऐं मुझे घेरे हुए हैं, मेरा शरीर जर्जरित होगया है, कपोल देश ने धवलिमा को धारण कर लिया है तथा श्वास से अधरशोभा शुष्क होगयी है । मेरे नयन जलधाराओं से भर गये हैं और चित्त में शोक-विघ्नादि आगया है । हे सुमुखि ! तुम्हारा सखा, मैं अब क्या करूँगा ॥५६

स्वरशिखरदृगन्तैर्भुक्तवीराभिमानां
हृत मनसिजगर्वां दूरगां त्वां विदित्वा ।
तव विजयवियत्नोऽसूयया त्वद्वयस्यं
विरहसहचरोऽयं वाधते मामनङ्गः ॥५७

विषायते भुक्तमन्नं चन्दनं पावकायते ।
प्रिये तव वियोगेन सर्वं शून्यायते मम ॥५८

कटाक्षापत से वीररमणियों का अभिमान नाशकारिणी, कन्दर्प-

दर्पनाशिनी, दूरगता तुमको जानकर, विरह सहचर अनंग असूया करता हुआ मेरे को बाधा दे रहा है। क्योंकि वह तुमसे पराजित होगया है। अब तुम्हारे बन्धु हमें जानकर सता रहा है ॥५७॥ हे प्रिये! सुनिये! तुम्हारे वियोग से मेरे लिये भोजनान्न विष की भांति, चन्दन अग्नि की भांति होरहे हैं। अधिक क्या कहूँ, देखिये, मेरे लिये समस्त वस्तु शून्यरूप प्रतीत हो रही है ॥५८॥

कालः कोटियुगायते क्षणमितो देहं च दग्धायते
ग्लौज्योत्स्ना बहुताप मुद्वमति मे कामस्तु कालायते।
दुःखं सन्निधितामुपैति निविडं सौख्यं च दूरायते
सर्वं त्वद्विरहे विपर्ययमभूद्विच्छेदमेकं विना ॥५९

हे राधे! तुम्हारे विरह से क्षणमात्र समय कोटियुग की भांति मेरे लिये होगया है, शरीर तो जला हुआ है, मेरे लिये चन्द्रकिरण अग्निकणाओं का वर्षण कर रहा है तथा काम तो कालमृत्यु की भांति होरहा है। निरन्तर दुःख निकट में रहकर राजत्व कर रहा है, सुख तो दूर में भाग गया है। इस प्रकार मेरे लिये समस्त विपर्य्य होगये हैं, केवल विच्छेद साथी रह गया है ॥५९

मोहोन्मादविषादनक्रनिकरैराक्रान्त मध्यस्थले
चिन्तावर्तविघूर्णा दुःखसलिले दुर्लक्ष्यकूलद्वये।
औत्सुक्यादितरङ्ग संघ सहिते मूर्छातल स्पर्शके
हा मामुद्धर विप्रलम्भ जलधौ मज्जन्तमिन्दुप्रभे ॥६०

हे चन्द्रशोभाधारिणा! मैं वियोगसागर में डूब गया हूँ। मेरा उद्धार कीजिये। जिसमें मोह-उन्माद-विषाद ये सब कुम्भीर हैं। वे सब मध्यभाग में घूम रहे हैं। जो चिन्तारूप आवर्त्त (घूर्णन) तथा दुःखरूप जल से युक्त है। जिसके दोनों कूल नहीं दीखने में आरहे हैं। औत्सुकतादि जिसमें तरंगावली है तथा

मूर्च्छा ही जिसका तलदेश है ॥६०॥

यथा दरिद्रो वहुवित्तलाभं यथा क्षुधापीड़ितमानसोऽन्नम् ।
यथा श्रवन्तीं द्रवतप्तदेहः सच्चातकः स्वातिकणां च यद्वत् ॥६१

विभातलक्ष्मीमिव चक्रवाकः प्रसूनमालामिव चञ्चरीकाः ।
धाराधरो मेघरवानुलापी तथा मनो वांछति मे भवन्तीम् ॥६२

जिस प्रकार दरिद्र वहुवित्त लाभ के लिए चाहता है, जैसा कि स्वाति बूँद की उत्ताप पीड़ित उत्तम चातक इच्छा करता है, चक्रवाक की प्रभात शोभा में जिस प्रकार उत्कण्ठा रहती है तथा भ्रमर पुष्पमाला में जैसा उत्सुक होता है, क्षुधातुरों के अन्न प्राप्ति की भांति तथा मेघ की गर्जनस्पृहा की भांति मेरा मन उस प्रकार आपको चाहता रहता है ॥६१।६२॥

सविनयं शृणु मद्वचनं प्रिये तव वियोगविभावसुवर्चिभिः ।
अलघुपीडितमानससारसः कथमहो समयं गमयाम्यहम् ॥६३

हे प्रिये ! सविनय मेरे वचन को सुनिये, तुम्हारी वियोगाग्नि की ज्वाला से मेरा मानस सारस अत्यन्त पीड़ित होगया है, मैं अतिकष्ट से समय बिता रहा हूँ ॥६३॥

प्रिया परिष्वङ्गकृताभिधाष्ट्र्यं सखीसमीपे कृतकोपयुक्ता ।
निर्द्धूनितभ्रू ललिते वचोभिभू‍र्योऽपि किं दास्यसि मे प्रमोदम् ॥६४

हे भ्रू को मनोहर नचाने वाली ललिते । हमारे आलिंगिन में धृष्ठता करने वाली तथा सखियों के समक्ष प्रणय कोपमयी आप फिर क्या मेरे को प्रमोदित करोगी ॥६४॥

प्रिये विशाखे दलपंचशाखे त्वदिङ्गितेनैव मम प्रियाप्तिः ।
जातानुभूतं च सुखं तवाहं न पारये प्रत्युपकारदानम् ॥६५

हे कमलदल की भांति हस्तवाली विशाखे ! तुम्हारे संकेत से ही मेरे लिये प्रिया की प्राप्ति होती है । तुमने हमें जो सुख दिया है उसका अनुभव मैं ही जानता हूँ, उसका प्रत्युपकार नहीं कर

सकता हूँ ॥६५॥

प्रतिक्षणं वर्द्धितकामसागरे स्वकान्तिनिर्वापितदुःख दाहके ।
चन्द्रावलि त्वां हृदयं ममेच्छति चन्द्रावली यद्ध्दयं चकोरकः ॥६६

प्रतिक्षण कामसागर को बढ़ाने वाली, अपनी अंगकान्ति से दुःखाग्नि निवारक हे श्रीचन्द्रावलि ! मेरा हृदय चकोर चन्दों से गठित तुमको चाहता है ॥६६

श्रीश्यामले श्यामलवामधामा कलिन्द कन्यातटकुंजवीथ्याम् ।
भूयोऽपि तांस्तान्कुतुकान्करिष्ये जानीहि गोष्ठाङ्गणमागतं माम् ॥६७

हे श्यामलकान्ति से मनोहर श्रीश्यामले ! मैं कालिन्दी तटकुंज मार्ग.फिर तुम्हारे साथ उन उन कौतुकों को करूँगा । मैं गोष्टांगन में आगया हूँ ऐसा जानना ॥६७॥

धन्ये तव स्मितमहोत्सवमंडितानि नानाविधध्वनिविराजित साक्षराणि ।
प्रेमोदयाम्बुधितरंगसहोदराणि श्रोत्स्यामि किं पुनरपि प्रतिभाषितानि ॥६८

हे धन्ये ! तुम्हारे स्मितमहोत्सव से मण्डित, प्रेमोद्गग-सुधा-समुद्र तरङ्गों से विमिश्रित नाना प्रकार ध्वनियों से विराजित, प्रतिभाषित अक्षरों का श्रवण क्या मैं पुनर्वार कर सकता हूँ ॥ ६८ ॥

भूयोपि काञ्चनलते मम वामभागे
गुञ्जन्मलिन्द भर वंजुल मंजु कुञ्जे ।
स्थित्वा मदुद्भवकरी परिहासकेलिं
किं कल्पयिष्यति कुतूहल कर्णरम्याम् ॥ ६९

हे काञ्चनलतिके ! फिर क्या तुम गुंजायमान भ्रमरों से शोभित मनोहर कुंज में मेरे वामभाग में ठहर कर कर्णकुतूहल, मेरी प्रसन्नकारिणी परिहासकेलि को करोगी ? ॥ ६९ ॥

क्वास्त्यत्र गोपसरसीरुह लोचनाभी
रासः कृतः शरदि सुन्दरशेखरेण ।

इत्थं विचार्य रुदिताश्रु विमिश्रनेत्रो
भद्रे क्षिपामि च दिनानि यथा कथंचित् ॥ ७०

हे भद्रे ! "गोप कमलनयनियों को छोड़कर जगत में अन्य कौन रमणी सौभाग्यवती है ? अर्थात् कोई नहीं है" इस विचार से सुन्दर शेखर मैंने शरतकाल में उन सबके साथ रास किया था। अब उसका कथञ्चित् स्मरण कर रोदन करता हुआ दिवसों को बिता रहा हूँ ॥ ७० ॥

एवं वियोगदव दग्धतरान्तरङ्गाः संदेशकैः कुशलशेखर शान्त्वयित्वा ।
तामत्प्रिया व्रज पुनः पितुरालयं मे वाक्येन तद्विधुर नाशचिकीर्ष-
कस्य ॥ ७१

हे कुशलराज ! इस प्रकार वियोगाग्नि से दग्धान्तर वाली मेरी प्रिया उन गोपांगनाओं के सन्देशों से सान्त्वना देकर फिर पिता की बसती भूमी में पहुँचना तथा मनोहर सन्देश वचनों से सब दुखाग्नि को दूर करने के लिए चेष्टा रखना ॥ ७१ ॥

सदा ममार्ति स्मृतिजन्य तापविक्षिप्तचित्तां स्खलदश्रु धाराम् ।
शुकेन्द्र हे वोक्ष्यसि मातरं मे वियोग दुःखप्रतिमामिव त्वम् ॥ ७२

हे शुकराज ! अनन्तर वहाँ मेरे स्मरण जात तापों से विक्षिप्त चिन्ता, निरन्तर अश्रुधाराओं को गिराने वाली, मेरी माता यशोदा को देखोगे। मानो वियोगदुःख प्रतिमाकार से वहाँ विराजमान हो रहा है ॥ ७२ ॥

विन्यस्तनेत्रा पथि वृष्णिपुर्या हस्तोदर न्यस्तक पोलदेशा ।
या गान्दिनीनन्दनदुष्टकं सौभृशं सदा क्रोशति दुःखितात्मा ॥ ७३

जो हाथों में कपाल रखकर मथुरापुरी मार्ग में नेत्र डारती हुई दुःखात्मा के साथ अक्रूर तथा कंस को निरन्तर गाली सुना रही होगी ॥ ७३ ॥

दृष्ट्वा कदाचिदुपरि निद्रिताक्षी स्वप्ने सखे मां कृतबालकेलिम् ।

पुनः प्रबुद्धा न विलोक्य तत्र या नष्टचेष्टामुपयाति मूर्च्छाम् ॥ ७४

यदि वह कभी निद्रितांगी हो स्वप्न में मेरी बालक्रीड़ाओं को देखती है तो फिर नहीं जागती है, उस समय उसकी चेष्टा नष्ट हो जाती है तथा वह मूर्च्छिता हो जाती है ॥ ७४ ॥

पुनश्च तत्रैव वियोगखिन्नं जीर्णातिदेहं पितरं व्रजेशम् ।
दृष्टा भवाँस्त्यक्तसमस्तचेष्टं यथा कथंचिद्धृतजीवितं तम् ॥ ७५

फिर तुम वियोगखिन्न, अत्यन्त जीर्ण शरी, समस्त चेष्टाओं से रहित, जिस किसी प्रकार से जीवन धारण करने वाले, पिता, ब्रजराज का दर्शन करोगे ॥ ७५ ॥

तदन्तिकं प्राप्य मदीयनाम्ना तदीयपादेषु नतिं करोतु ।
मुहुर्मुहुर्दण्डवदुक्तपूरैः पुनश्च तौ त्वं सुखय क्रमेण ॥ ७६

तुम उनके पास जाकर मेरे नाम से उनके चरणों में गिर जाना । फिर वारवार प्रणाम कर वचनामृतों से दोनों को सुखी करना ॥ ७६ ॥

भावेन वात्सल्यरसोदयेन पूर्वं भवद्भ्यां पितरौ शिशुत्वे ।
संलालितोऽहं युवयो ऋणीत्वं प्राप्त्वा समीपं भवतो वसिष्ये ॥ ७७

हे माता ! हे पिता ! पहिले वात्सल्य रसोदय के साथ शिशुरूप में आप दोनों ने हमें जो लालित किया है उससे मैं आप दोनों का ऋणी हूँ । आप दोनों के पास निरन्तर वास करूँगा ॥७७॥

मा दुःखमुद्वह हृदि व्यथिता भवंतो
कृत्वावशिष्टमपि कार्यमहं जवेन ।
आगत्य गोष्ठमपरोक्षतया तवाग्रे
क्रीडन् सुखं नयनयोः सरसं करिष्ये ॥ ७८

हे माता ! तुम व्यथिता होकर हृदय में दुःख मत उठाओ। कुछ अवशिष्ट कार्य्य रह गया है उसका समाधान कर मैं शीघ्र आ रहा हूँ । मैं गोष्ठ में फिर आकर साक्षात् रूप में आपके

आगे क्रीड़ा कर आपके नेत्रों को सरस करूँगा ॥ ७८ ॥

जाने ध्रुवं यदपि हे पितरौ प्रियोहं
प्राणार्बुदादपि तथापि करोमिहाकिम् ।
दूरस्थितो मम न दूषण मत्र किंचित्
किन्तु प्रगल्भ कठिनस्य विधेरपीदम् ॥

हे माता ! हे पिता ! "आपके प्राणार्बुदों से मैं प्रिय हूँ" ऐसा मैं अवश्य जानता हूँ, तौ भी मैं करूँ क्या ? हाय ! मैं दूर में पड़ा हुआ हूँ। इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। परन्तु कठिन विधाता की यह रीति है ॥ ७९ ॥

अन्यैरपि प्रकटयन्निजबुद्धिमत्वं सन्देशकैः प्रणयपद्धतिपुष्टिकारैः ।
तद्विप्रलम्भ विधुरशुक शान्तयित्वा भूयस्त्वया सखिषु मे गमनं
विधेयम् ॥ ८०

हे शुक ! प्रणयरीति से पुष्ट अन्य सन्देशों से भी उन्हें प्रसन्न कराना। इसमें तुम्हारी बुद्धिमत्ता है। उनके वियोग से दुःखित तुम उनको सान्त्वना देकर फिर मेरे सखाओं के पास पहुँचना ॥ ८० ॥

सार्द्धं मया धृतविचित्र शिखंड चूड़ा
गोचारणे सरस केलिधुरानकुर्वन् ।
ये वेणु वादन विलक्षणशक्तियुक्ता
स्ते मत्समानवयसः शुक वीक्षणीया ॥ ८१

जो मस्तक में विचित्र मयूर चूड़ा धारण कर गोचारण में हमारे साथ सरस क्रीड़ाओं को करते थे तथा जो वेणुवादन में विलक्षण शक्ति को रखते हैं और जो हमारे समान वयस्क हैं उन सखाओं को तुम देखोगे ॥ ८१ ॥

ते मद्वियोगविधुरव्यथिताः सखाय
श्रीदामनाम सुवलार्जुन भद्रसेनाः ।

आलिङ्गनं च भवता निकटं गतेन
तेभ्यः क्रमेण कथनीयममन्द बुद्धे ॥ ८२

वे श्रीदाम-सुवल-अर्जुन-भद्रसेनादि मेरे सखाएं मेरे वियोग से व्यथित हृदय हो रहे हैं। हे विशाल बुद्धिवाला कीर! तुम उनके निकट जाकर उनका क्रम से नाम लेता हुआ मेरा आलिंगन कहना ॥ ८२ ॥

श्रीदामनाम तव केलि कुतूहलानि
स्मृत्वा मुंहमुर्हरलक्षित हृद्व्यथोहम्।
नालोक्य पूरि परिहासविलासयोग्यं
कंचिन्नरं कठिनदैववशाद्वसामि ॥ ८२

हे श्रीदाम! तुम्हारे साथ केलि कौतूहलों का स्मरण कर मैं वार-वार व्यथित हृदय हो रहा हूँ। जिस व्यथा को किसी ने कभी नहीं अनुभव किया होगा। इस नगरी में परिहास विलास में योग्य किसी व्यक्ति को नहीं देख रहा हूँ। अतः कठिन दैववश मैं यहाँ निवास कर रहा हूँ ॥ ८३ ॥

भवान् प्रियावेश धरस्तदीयं गृहं गतः सातु भवत्स्वरूपा।
आगत्य मत्पार्श्वमतर्किताङ्गी ददौ नरैर्यत्प्रमदं विलासैः ॥ ८४

हे सुवल? तुम प्रिया का वेश धारण कर उनके घर पर जाते थे। वह भी देखने में तुम्हारे स्वरूपा है। अतः तुम्हारा स्वरूप बन कर मेरे पास अतर्कित रूप से आकर जो प्रमोद विलास करती थी उसका स्मरण कर रहा हूँ ॥ ८४ ॥

एवं विधामुपकृतिं सुवल त्वदीयां को विस्मरेज्जगति जङ्गम रूपधारी।
हे भद्रसेन यमुनातटकाननेषु किं स्मर्यते विरचितो भवता
विहारः ॥ ८५

हे सुवल! तुम्हारे इस प्रकार उपकार को जगत में जङ्गमरूप-धारी कौन भूल सकता है? हे भद्रसेन! यमुना के तट काननों

में तुम्हारे साथ मैंने जो विहार किया है क्या उसका स्मरण नहीं करते हो ॥ ८५ ॥

हे स्तोककृष्ण सुहृदः प्रमुखा भवन्तो मा मानसे दुःख मथोद्वहन्तु ।
आयास्य इत्युक्तिरलंघ्यवीर्या यस्मान्न मे यास्यसि निष्फलत्वम् ॥ ८६

हे स्तोककृष्ण ! आप सब प्रमुख बन्धु हैं। मन में दुःख मत उठाओ "मैं आऊँगा" इस प्रकार जो कहा था वह कभी निष्फल नहीं होगा। आप सब बड़े पराक्रमी भी हैं ॥ ८६ ॥

ततः पुनर्गोष्ठकृत प्रयाणो विचित्रवर्णद्युति रम्यदेहाः ।
ऊधोभरक्लान्तगतीः स्वनेत्रै र्द्दष्टा भवांस्ता मम सौरभेयीः ॥ ८७

अतः गोष्ठ में पुनः मेरा आगमन होगा। जब तक तुम विचित्र वर्ण कान्ति से मनोहर अङ्गवाली, स्तनभारों से परिपीड़िता मेरी गौओं को अपने नेत्रों से देख रेख करना ॥ ८७ ॥

मद्वेणुनादश्रवणेन शीघ्रं तिरस्कृत क्षुतृदनल्पबाधाः ।
मत्तीर माजग्मुरहो पुरा या वाच्यो मुहुस्तासु मम प्रणामः ॥ ८८

मेरे वेणुनाद श्रवण से उन्मत्त होकर क्षुधा-पिपासा बाधाओं का भी त्याग कर मेरे पास जो पहले आती थीं उन गौओं को मेरा बार बार प्रणाम कहि देना ॥ ८८ ॥

महीरुहा यत्फलपुष्पपल्लवैः सखे कृतालंकृतिरुत्सवोदयः ।
वनेचरं ते प्रियवंधुरोक्तिभिराश्वासनीया विरहेण दुःखिताः ॥ ८६

हे सखा ! जिनके फल-पुष्प-पल्लवों से अलंकृत होकर विविध क्रीड़ा विहार करते थे उनको विरह तथा दुःखित वनचारियों को प्रिय-मनोहर वचनों से आश्वास देते रहना ॥ ८६ ॥

विहङ्गमाः कानः चारिणस्त्वया मद्भावसंभावितविग्रहेन्द्रियाः ।
मद्वाचिकैः कीर्तिः मद्गुणोदयैर्विज्ञापनीया रसिकोत्तमेन ते ॥ ६०

हे सखा ! काननचारी पक्षियों को मेरे सन्देशों से तथा गुणों के कीर्त्तन से खबर दे देना। तुम तो परम रसिक हो। सब

जानते हो। वे पक्षी मेरे भाव की निरन्तर भावना से संयत इन्द्रिय शरीर वाले हैं ॥ ९० ॥

कियन्मया वाच्यमहो शुकेन्द्र संक्षिप्तमेव प्रवदामि किंचित्।
यथा भवेत्सर्वंवियोगशान्तिस्तथैव कर्तव्यमनल्पबुद्धे ॥ ९१

हे शुकराज ! मैं अधिक क्या कहूँगा। मैंने संक्षिप्त रूप में कुछ कहा है। जिससे सबकी वियोग शान्ति होगी तुम ऐसा करना। क्योंकि तुम तो विलक्षण बुद्धि वाले हो ॥ ९१ ॥

प्रयोजनं नास्ति ममैव केवलं व्रजप्रमाणेन तवापि हे सखे।
व्रजौकसां सत्प्रणयस्य दर्शनं विगाहनं प्रेमसरोवरे व्रजे ॥ ९२

हे सखा ! व्रजगमन में केवल मेरा प्रयोजन नहीं है, तुम्हारी भी कार्य्यसिद्धि होगी। तुम व्रजवासियों के सत्प्रेम का दर्शन करोगे तथा प्रेम सरोवर रूप व्रज में तुम्हारा महाअवगाहन होगा ॥ ९२ ॥

तत्रैव वासं कतिचिद्दिनानि करोतु तत्तीव्रवियोगहर्ता।
सन्देशमिन्दीवरलोचनानां तासां पुनः श्रावय मे शुकीश ॥ ९३

हे शुकीश ! तुम उनके तीव्र वियोग का हरण करता हुआ वहाँ दिवस वास करना। फिर कमलनयना उन व्रजगोपियों को मेरा सन्देश सुनाना ॥ ९३ ॥

त्रिभुवनगुरुशीर्षापीडरत्नप्रकाशस्नपितचरणयुग्मा धारपीठाग्रभागः।
सकल गुणनिकायो दैन्यमाविश्चकार हरिरपि रमणीये प्रेम्णि
नैतद्विचित्रम् ॥ ९४

जिनके चरणयुगल के आधार पीठ के अग्रभाग त्रिभुवन के गुरु ब्रह्मा-शिवादि से मस्तक मुकुटों के रत्नों के प्रकाश से रञ्जित है, वे सकलगुणनिधान श्रीहरि रमणीय व्रजवासियों के प्रेम में आकर इस प्रकार दैन्य प्रकाश कर रहे हैं, इसमें कोई विचित्रता नहीं है ॥ ९४ ॥

मधुरिपुवचनं तत्स्वे हृदि स्थापयित्वा
गमनकृतमतिस्तं कीरराजाधिराजः ।
अवनतशिरसा यं तत्प्रियेच्छुः प्रणम्य
हृदि निहितमुकुन्दो गोष्ठमार्गं जगाम ॥ ६५

अनन्तर वह कीरराज मधुरिपु के उन वचनों को सुनकर तथा हृदय में धारण कर वहाँ जाने के लिए इच्छुकमति हो गयी। वह फिर मस्तक नीचे कर श्रीकृष्ण को हृदय में धारण कर प्रणाम करता हुआ गोष्ठ मार्ग के लिए चलने लगा ॥ ६५ ॥

यद्वधि स शुकेन्द्रो नेत्रयोर्गोचरस्त्व
मगमदयन एव न्यस्त दृष्टिर्मुकुन्दः ।
तदवधि विनिवृत्तांगक्रियोभूत्तदानीं
भवति गतिरमन्दा कपि हृत्प्रेम जाता ॥ ६६

वह शुकराज जब तक नेत्रों के गोचर में रहा तब तक श्रीहरि उसके मार्ग में नेत्र दे रहे थे तथा उनकी अङ्गक्रियाऐं निवृत्त हो गयी थीं। हृदय में प्रेम रहने पर इस प्रकार असाधारण गती होती है ॥ ६६ ॥

पुनरपि भवनान्निर्गत्य सोत्कण्ठचित्तो
रथपरिसरमाप्त्वा द्वारकायाश्रधीशः ।
स्वपुरमगमदीशो व्यग्रचित्तो मुरारि
द्विपद परिवृतः सत्स्यंदनेनैव तूर्णम् ॥ ६७

वे द्वारकानाथ फिर उस भवन से बाहर आकर उत्कण्ठितचित्त से रथ के पास उपस्थित हुए तथा व्यग्रता के साथ उस मनोहर रथ में बैठकर अपनी द्वारकापुरी में पहुँचे ॥ ६७ ॥

श्रीगोविन्दमुनीन्द्रवन्दितपदद्वन्द्वारविन्दासव
प्रोन्मत्ताखिलचित्तवृत्ति सुखदे सारङ्गसङ्गोदिते ।
काव्ये नन्दकिशोरचन्द्ररचिते श्रीकीरदूताभिधे
पूर्तिंवर्णितवाचिकोक्तिभिरयं सर्गोऽगमत्पञ्चमः ॥ ६८

श्रीगोविन्द के मुनिगण वन्दित चरणकमल युगल के मकरन्द पानोन्मत्त समस्त रसिकजनों की चित्तवृत्ति में सुखदायी, कौतुकपूर्ण, नन्दकिशोरचन्द्र के द्वारा विरचित इस शुकदूत नामक काव्य का श्रीकृष्ण के वाचिक उक्ति वर्णनमय यह पञ्चमसर्ग समाप्त हुआ ॥ ६८ ॥

इति श्री सकलशास्त्र पारावारीण पञ्चवार्षिकायुः समये वर्णित निखिलदर्शनशास्त्र श्रीनन्दकिशोरगोस्वामि श्रीमद्भागवत चन्द्रमसा कृते श्रीशुकदूतमहाकाव्ये सन्देश वर्णनात्मकः पञ्चम सर्गः समाप्तिमगात् (५)

—०—

षष्ठः सर्गः

अथ क्रमेणोक्तवरेणकीरो ग्रामनतिक्रम्य वहून् गिरींश्च ।
स्मरन्मुहुर्माधवधामनाम बभूव गोष्ठान्तिकतीरचारी ॥ १

अनन्तर वह कीरराज श्रीहरि के निर्देशानुसार अनेक ग्राम-नगर वहुगिरि का अतिक्रमण कर मन में माधव के नाम धाम स्मरण करता हुआ गोष्ठ की निकट भूमी में उपस्थित हुआ ॥ १ ॥

कृष्णोपदिष्टान् पथि कामकेलिस्थलान्परिक्रम्य सज़ातहर्षः ।
पश्यन् कलिन्दस्य सुतातमां जगाम नन्दीश्वरा राजधानीम् ॥ २

श्रीकृष्ण द्वारा निर्देशित मार्ग में मनोहर लीलास्थलियों का दर्शन-स्पर्श कर प्रसन्नता के साथ कलिन्दनन्दिनी यमुना की तट शोभा देखता हुआ नन्दीश्वर राजधानी में पहुँचा ॥ २ ॥

विलोकितास्तेन शुकेन तत्र खिन्ना वियोगेन नगा ह्यगाश्च ।
कृष्णप्रियाणां तु वियोग जातां दशां नरः कः कथितुं समर्थः ॥ ३

उस शुक ने वहां वियोगखिन्न वृत्त-पर्वन्तों का दर्शन किया, तथा कृष्णप्रियाओं की वियोगजात दशा का अनुभव किया। उस दशा का वर्णन कौन कर सकता है ॥३॥

गृहीतहस्तव्यजनैः सखीजनैस्तद्देहदाहत्त्य साधनोद्यमैः ।
वृतां मुहुःकान्त इतीति वादिनीं सरोजतल्पे स ददर्श राधिकाम् ॥४

उसने बार-बार "हा प्राणवल्लभ !" इस प्रकार बोलने वाली, राधिका को कमलशैया में शयन करती हुई देखा। उनके शरीर दाह को दूर कराने के लिए सखियां हाथ में व्यजनादि साधन लेकर उनको घेर कर बैठी हुई थीं ॥४॥

स्थित्वा तदग्रस्थितमल्लिवल्यां जगाद कृष्णेति कलेन कीरः ।
यदा तदैव प्रतिवुद्धचेष्टा बभूव विष्वक् चकिताक्षिणी सा ॥५

उसने राधिका के समक्ष मौजूद मल्लिलता में बैठ कर "कृष्ण कृष्ण" इस प्रकार शब्द किया। उस समय राधिका की चेष्टा जागृत होगयी तथा वह चकित दृष्टि से इधर उधर देखने लगी ॥५॥

हे राधिके मा कुरु दुःखदैन्यतां जवेन जानीहि तमागतं प्रियम् ।
यतः समीपे नामनोद्यतेन ते तेनैव सन्देशहरोऽहमेषितः ॥६

तव शुक ने कहा—हे राधे ! इस प्रकार दुःखदैन्यता मत कीजिए, आपके प्राणवल्लभ शीघ्र ही आने वाले जानना। निकट में आने वाले आपके प्राणप्यारे ही ने सन्देश देकर हमें भेजा है ॥६

श्रुत्वा तदीयवचनं ललिताग्रगण्याः
सख्यः स्मितस्नपित सुन्दर कोमलोष्ठ्यः
आपुर्मुदं निजसखी सुखसाभिलाषा
सापि प्रियागमनकश्रवणेन हृष्टा ॥७

ललितादि प्रिय सखियां उस शुक के इस प्रकार वचन सुनकर प्रसन्न बदना होगयीं, उनके कोमल ओंठ मन्दहास्य से स्नपित

होकर सुन्दर वन गये। वे सखियां निरन्तर अपनी सखी के सुखाभिलाष को चाहती थी। वह राधिका भी प्रिय का आगमन सुनकर प्रसन्न होगयीं ॥७॥

उत्कण्ठिता प्रियहितश्रवणे जगाद एनं समानयत कीरवरं वयस्याः।
सख्योऽपि तद्वचनतः कलितप्रयत्नास्तद्धारणे तरलनेत्र युगा बभूवुः ॥८

प्रिय का हित श्रवण कर उत्कंठिता हो उस कीर को पास में लाने के लिए वयस्कों को कहने लगी। सखियां उनका आदेश पाकर उसे धरने (पकड़ने) के लिए यत्नशीला हुई। उनके नेत्र चञ्चल होने लगे ॥८॥

कीरस्तु पत्तनपते र्वचनानुसारी त्युक्ता तदैव ललिताग्रलतावलम्बम्।
वीक्ष्यश्रमं निजकृते कृतमालिवर्गैं राधाकरे स्वयमहोन्यविशत्प्रणम्य ॥९

उस समय कीरराज द्वारकानाथ के वचनानुसार अपने को धरने के लिए सखियों का परिश्रम जानकर स्वयं ही प्रणाम करता हुआ राधिकाहस्त में बैठ गया ॥९॥

सर्वा विहाय वहुयत्नवती किमेष अङ्गीचकार वृषभानुसुतां वियत्नाम्।
ज्ञाता पुनः कथमनेन कदाप्यदृष्टा तामेव ता इतिवितर्क्यगतासमीपम्।१०

सब ने उसे धरने के लिये बहुयत्न किया परन्तु वह किसी के हाथ में न आकर स्वयं ही राधिका के हाथ पर बिना यत्न से कैसे आया, इसने तो प्रिय सखी को कभी नहीं देखा था। इस प्रकार सखियां नाना प्रकार के तर्क-वितर्क करने लगीं ॥१०॥

ईषत्स्मितोदयमुखी तमुवाच राधा स्वस्त्यस्तु ते शुकसखे नगरे मुकुन्दः।
आस्ते सुखंपुर नितम्बवतीकदम्बालम्बेन बिम्बरुचिराधरसेवकः किम्।११

श्रीराधिका ईषत् मन्दहास्य करती हुई उसके लिये कहने लगीं। हे शुक! तुम्हारा कल्याण हो, हे सखे! द्वारकानगरी में श्रीहरि सुख से विराजमान तो हैं पुररमणियों के आश्रय से उनका बिम्बाधर सुन्दर तो हैं ॥११॥

सम्पत्तिसेवितपदः सुखमस्ति कृष्णः
संप्राप्तराज्यतिलको वहुलोकदृष्टा ।
याथार्थ्यमेव कथयामि मुहुस्तवाग्रे
त्वद्विप्रलम्भविधुरस्य कुतः सुखाप्तिः ॥१२

अब शुक कहने लगा, श्रीकृष्ण विविध सम्पत्तियों से सेवितपद होकर सुखपूर्वक विराजमान हैं । उन्होंने राज्यतिलक प्राप्त किया है, उनके बहुत सेवक मौजूद हैं । परन्तु आपके समक्ष यथार्थ कह रहा हूँ कि तुम्हारे विप्रलम्भ से विधूर अर्थात् वियोग दुःखित उनको सुख प्राप्ति कहां हो सकती है ॥१२

स्वज्ञातिवन्धुवलितस्य पुरःस्थितस्य
राजाधिराज इति भूपगणैः स्तुतस्य ।
लज्जामि तस्य सदसि व्रजवार्तयापि
वाधा कथं विरहजा शुक भावनीया ॥१३

अनन्तर राधिका कहने लगी—हे शुक ! वहाँ तो वे निज असंख्य ज्ञाति-वन्धुओं से परिवेष्टित हैं, राजाओं से राजाधिराज करके संस्तुत हो रहे हैं । व्रज की वार्त्ता करने में सबके आगे लज्जा आती होगी । वे विरह दुःखानुभव किस प्रकार कर सकते हैं ॥१३

सत्यं वचस्तव तथापि भवद् वियोगवाधा-
तुरोऽभिलसति प्रकटी भवंति ।
स्थित्वापि चातकवरो निकटे जलस्य
वाञ्छत्यहोऽअगलितं जलमेव नान्यत् ॥१४

अब शुक कहने लगा—आप सत्य कहती हो, तो भी आपकी वियोगवाधा से आतुर होकर वे विराजमान हैं । उनकी वह दशा बाहर प्रकट होजाती है । देखिये—चातकवर, जल के निकट रहने पर भी आकाश जल को चाहता रहता है । अन्य जल में उसकी रुचि नहीं रहती है ॥१४॥

एतादृशी यदि भवेद्धृदये तदीये
　　　　　वांछा पुनः किमिति सोऽत्यजदस्मदाद्याः ।
पुष्पोत्स्खलन्नवपरागरसेणसिक्ता-
　　　　　मिन्दिन्दिरस्त्यजति नैव कदापि वल्लीम् ॥१५

अनन्तर राधिका कहने लगी-यदि उनके हृदय में इस प्रकार की वांछा मौजूद है तो वे हम सबका त्याग क्यों कर गये ? देख ! भ्रमर पुष्पों से स्खलित नवीन परागरस से सिक्त होकर भी कभी लता को नहीं छोड़ता है ॥१५॥

दोषस्तथापि न भवेन्मधुसूदनस्य
　　　　　झंझानिलेन यदि नीयत अन्यदेशे ।
शास्त्रं स्फुटं वदति नास्ति नरस्य दोषः
　　　　　प्राप्तस्य यद्विवशतामिति धर्मरूपम् ॥१६

शुक कहने लगा, तो भी उसमें मधुसूदन का पक्षान्तर में भ्रमर का दोष नहीं है । झंझानिल उसको अन्यत्र लेजाता है पक्षान्तर में दैववश वे श्रीहरि अन्यत्र चले गये हैं । धर्म्मशास्त्र में ऐसा कहा जाता है कि मनुष्य के विवश होजाने पर उसका कोई दोष नहीं होता है ॥१६॥

ज्ञातं मयानुनवशास्त्रमपि त्वयापि
　　　　　तस्माद्गुरोः कितव पूज्यपदादधीतम् ।
आबाल्यतत्कितवतां कृतिविज्ञबुद्धौ
　　　　　तैस्तन्मयि प्रभवते भवतां विवादैः ॥१७

अनन्तर राधिका कहने लगी मैंने अनुनयशास्त्र देखा है, तुमने भी कपटियों से पूजित उन गुरुचरण से सीखा है । पण्डितों की बुद्धि में उनकी बाल्यकाल से ही कितवता जानी गयी है । तुम्हारे साथ विवादों से मेरी बुद्धि में भी कितवता आ सकती है । अतः विवादों को छोड़ देओ ॥१७॥

त्यक्ता त्रपा समुचिता कुलसुन्दरीणां
त्यक्तं सदेहगृहकृत्यमहो यदर्थम् ।
त्यक्ता क्षणेन कठिनोत्तमबंद्यचित्तो दूरं
गतः किमपरं कितवत्त्वमस्ति ॥१८

कुल सुन्दरियों की लज्जा का उन्होंने नाश कर दिया। जिनके लिये देह-गेह गृहकृत्य इन सबको हमने छोड़ दिया। कठिन उत्तमों से वन्द्यमान हृदय, वे हमें छोड़कर दूरदेश में चल दिये। इससे अधिक कितवता क्या हो सकती है ॥१८॥

मा ब्रूहि चारुवदने कठिनेदृशोक्ति
स त्वत्प्रियो भवति तस्य च वल्लभा त्वम् ।
दृष्टो मया तव वियोगसमुद्रमग्नः
कृष्णो मुहुः सशपथं परिगद्यतेऽति ॥१६

अब शुक कहने लगा, हे मनोहरवदने ! इस प्रकार कठिन वचन मत कहिये। वे आपके प्रियवल्लभ हैं, आप भी उनकी प्रिय-वल्लभा हैं। मैंने साक्षात् देखा तथा अनुभव भी किया। मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि श्रीहरि तुम्हारे वियोगसागर में डूबे हुए हैं ॥१६॥

यत्कृते कृतमस्माभिरस्मदर्थे च यत्कृतम् ।
तेन तत्र भवेत्साक्षी विधाता किं विकत्थनैः ॥२०

अनन्तर राधा ने कहा—हे कीर ! उनके लिये हम सबने जो किया, और उन्होंने हमारे लिये जो किया है, उन सबका विधाता साक्षी है। अधिक बोलने से क्या होता है ॥२०॥

(छंद) नास्ति दूषणमत्र यादववंशभूषणकर्तृकं
किन्तु मेचकवर्णजङ्गममात्र एव विराजते ।
तद्भुजङ्गमचञ्चरीकपरेण पुष्टत्रलिप्रियाः
सन्त्युदाहरणे जना वहवोऽत्र दुस्त्यजकर्मकाः ॥२१

इसमें उनका कोई दोष नहीं है। वे तो यादवों के भूषणस्वरूप हो रहे हैं। परन्तु यह तो मेचक (काला) वर्णमाला जंगममात्र में मौजूद रहता है। देखिये कोकिल जन्म से काकों से परिपालित होकर पंख लग जाने के पश्चात् उन्हें छोड़कर चली जाती है। इस विषय में अनेक व्यक्तियों का उदाहरण मौजूद है। मनुष्य अपने स्वभाव को नहीं छोड़ सकता है ॥२१॥

धीवरः शफरीर्यथा वडिशेन लोभवतीर्जले
लुब्धको हरिणीगणानिव गीतलोभितमानसान् ।
आगतान्निजपार्श्व एव शरैः शुकोत्तम विध्यति
तादृशी कुदशा कृता हरिणैव गोदुह योषिताम् ॥२२

हे शुकोत्तम ! धीवर वडिश (कांटे) में आमिष देकर जल में जिस प्रकार लोभवती मछली को पकड़ता है, वन में वधिक पहले जिस प्रकार मधुरगान के द्वारा गानप्रिय हरिणियों को पास में लाकर पश्चात् उन्हें पकड़ लेता है अथवा बाणों से बींध डारता है ठीक उसी प्रकार हरि ने कुरंगीनयना ब्रजबालाओं की कुदशा की है ॥२२॥

दुःखभंजन लोकरंजन नामधेय यथार्थता
श्रीपतेः क्व गताद्य विश्रुतदीनलोकदयालुता
दुःखितान् विरहेण दीनहृदस्तदंघ्रिजुषो यतो
नानुरंजयति स्वदर्शन जोत्सवेन वनौकसः ॥२३

आज उनके दुःखभंजन, जनरञ्जनादि नामों की यथार्थता कहाँ गयी है ? आज उनकी दीनलोक दयालुता खोगयी है। विरह से दुःखित, दीनहृदय, उनके चरणसेवक, वनवासियों को अपने दर्शनदान उत्सव से क्यों नहीं सुखी करते हैं ॥२३॥

हे शुक द्विजवंशभूषण तस्य दूषणजल्पनैः
किं प्रयोजनमस्ति किन्तु वियोगदुःखितमानसाः ।

किं वदन्ति जना न सोऽस्तु यथाविधः स तथाविधः
स्वीकृतं परिपालयन्ति विवेकिनः खलु तेन किम् ॥२४

हे शुक ! हे पक्षिवंशभूषण ! उनके दूषणों के वर्णन में हमारा क्या प्रयोजन है ? परन्तु वियोग से मनुष्य दुःखित हृदय होकर क्या नहीं कहता ? अर्थात् दुःखी मनुष्य सब कुछ कहता है। वे जैसे हैं तैसे हैं। परन्तु विवेकीजन अपने वचन का प्रतिपालन अवश्य करते हैं। उन्होंने तो कुछ नहीं किया ॥२४॥

गतः स मथुरापुरीं कितवपूज्यपादाम्बुजो
न मेऽत्र विधुरोदयो भवति किन्तु तत्त्वं शृणु।
अशिक्षयदयं बनान् विधुरदत्वमस्मदृशां
यतो भवनमीदृशा विधुरदाः पुरा सौख्यदाः ॥२५

वे कितवपूजितचरण श्रीहरि मथुरापुरी चले गये, इसमें मुझे कोई दुःख नहीं है। परन्तु तत्व कहती हूँ। सुनो, उन्होंने तो हम सबको यह सिखाया है। दुःखदायक हैं यह हमने जान लिया है। उनका संग तो पहले सुख देता है परन्तु विचार करने पर परिणाम दुःखरूप है ॥२५॥

बभूव सुखसंचयैर्व्रजवनं पुरा पूरितं
न तत्र यदि गान्दिनीकठिनकुक्षिजन्मा नरः।
करोतु शुक विघ्नमिन्दुमुख विप्रलम्भोदयं
नृशंसनृपवंशयशस्यगुणकंससौख्यं करः ॥२६

पहले ब्रजवन सुखसमूह से पूर्ण होगया था। परन्तु उसमें गान्दिनी के कठिन उदर में जन्म प्राप्त अक्रूर ने रमणियों के वियोग उदयकारी विघ्न डाला है। वह नृसंस राजवंश में प्रसिद्ध कंस का हित करने वाला था ॥२६॥

गतः कठिनतां हरेः कमलकोमलस्वान्तभाक्
ममानुनयकोविदः प्रणयरीतिविज्ञोपि च।

पुरन्दरनवायुधोच्चकठिनस्य संगेन स :
श्वफल्कतनयस्य वावत इहाद्य किं दुर्गुणः ॥२७
मेरे अनुनय को जानने वाला, प्रणयरीति में पण्डित, कमल से कोमल श्रीहरि का हृदय अब कठिनता को प्राप्त होगया है। इन्द्र के नवीन आयुध से अति कठिन अक्रूर के संग से उनमें यह दुर्गुण आगया है ॥२७॥

शुकेन्द्र पुरसुन्दरीसदसि सन्निविष्टो हरिः
सभाजितमुखाम्बुजस्तरलतत्कटाक्षैर्मुदा ।
अपि स्मरति निन्द्रया व्रजवधूः कदापि प्रभु
र्न वा कथमहो तदा भवति चास्मदीया स्मृतिः ॥२८
हे शुकराज ! श्रीहरि पुरसुन्दरियों की सभा में विराजमान होकर उनके चञ्चल कटाक्ष से विद्ध मुख हुए हैं। क्या प्रभु निन्द्रा छल से भी हमारा स्मरण कर रहे हैं। नहीं तो हम सब की स्मृति कैसी हो सकती है ॥२८॥

आयास्यत्यम्बुरुहनयनः किम्नुनर्गोष्ठमध्ये
धिन्वन् गोष्ठालयजनमनः सोऽवलोकस्मितेन ।
तूष्णीं मिथ्यावचनरचने कृष्णसारस्य यात्रा
वद्धस्या सं भवति दयितापांगपाशेन किं वा ॥२९
वे कमलनयन श्रीहरि गोष्ठवासियों के मन को अवलोकन स्मित के द्वारा प्रसन्नता प्राप्त कराने फिर क्या गोष्ठ में आवेंगे ? मिथ्यावचन रचने में क्या रखा है। दयिताओं के अपांग जाल से बद्ध कृष्णसार की अर्थात् कृष्णश्रेष्ठ की यात्रा क्या हो सकती है ? ॥२९॥

पूर्वं येन प्रतिदिनमहो हर्षवर्षा कृताभूत्
सोऽयं गोष्ठः शृणु शुक विषं वर्षते दुःखरूपम् ।
चित्रं लोका अहह तदिमं पश्यतागत्य शश्वन्
मेघश्चैको रसविषमयीं कुर्वते पूर्वं वृष्टिम् ॥३०

हे शुक ! सुनो, पहले जिसने प्रतिदिन हर्षवर्षा की है आज वह गोष्ठ दुःखरूप विष का वर्षण कर रहा है। इससे पहले मेघ आकर रसविष का वर्षण कर जाता है। यह देखने वालों को बड़ी आश्चर्यता होती है ॥३०॥

स्वीयप्राणाहरणकुतुके दुःखदानेन यत्नं
कुर्वन्तं तं स्वचतुरतया ज्ञायमानानुकूलैः।
वारं वारं प्रणतिनतिभिस्तत्कथा सेविताभूद्
यैर्वाऽस्माकं समयसमये प्राणरक्षां करोति ॥३१

दुःखप्रदान के द्वारा अपने प्राण आहरण कौतुक में यत्न करने वाला उनको अनुकूल जानकर हम सब वार-वार प्रणामनति के द्वारा उनकी कथा का सेवन करती हैं। जो हम सबकी समय पर प्राणरक्षा करने में समर्थ होता है ॥३१॥

नो जानीमः कठिनगुरुणा किं कृतं कार्मणं यद्
विच्छेदेऽपि स्थलजलभुवि व्योम भागे च यत्र।
दृष्टिः कुत्रापतति यदि मे तत्र तत्रैव कृष्णो-
मेघश्यामः स्मितपरिचितो दृश्यते किं करोमि ॥३२

कठिनराज उन्होंने क्या किया है सो हम नहीं जानती हैं। जिन के विच्छेद में जल-स्थल-पृथिवी-आकाश सर्व्वत्र जहाँ मेरी दृष्टि पड़ती है वहाँ वहाँ मेघश्याम श्रीकृष्ण स्मितयुक्त होकर देखे जाते हैं ॥३२॥

एकं चेतो भवति विधुरं किं वियोगेन जन्यं
शंकां मा मा कुरु शुक यतो मादरेण प्रवक्ति
आश्लेषं मे कलयति न च व्याहृतं मे शृणोति
तस्मात्स्वान्तं ज्वलति नितरामिन्धनं वन्हिनेव ॥३३

हे शुक ! यदि आपकी ऐसी अवस्था रहती है अर्थात् आप

सर्व्वत्र श्रीकृष्ण को देखती हो तो वियोग कहाँ रह सकता है" इस प्रकार शंका मत करो। क्योंकि वे सर्व्वत्र देखे जाते हैं यह सत्य है। परन्तु न वे आदर से बोलते हैं, न मेरा आलिंगन ही करते हैं, न मेरे वचनों को सुनते हैं। अतः इससे मेरा हृदय निरन्तर अग्नि के द्वारा ईंधन की भाँति जलता रहता है ॥३३॥

सन्तुष्टो त्वं भव हरिजनोर्दर्शनेनैव चित्ते
ब्रूते चेद्भाषितमिति भवानुत्तरं तत्र वच्मि।
पूर्वं नीता शुकवर यया वासरा वाटिकायां
सास्वादं सा कथमलिवधूतुष्टिमाप्नोति वीक्ष्य ॥३४

"श्रीहरिविग्रह का तुम्हें दर्शन तो अवश्य होता है अतः चित्त में प्रसन्नता रखिये" इस प्रकार यदि तुम कहते हो तो हे कीर! उसका उत्तर मैं देती हूँ। सुनो, पहले वाटिका (बगीची) में जिसके द्वारा हमने दिवसों को बिताया है वह भ्रमरवधू क्या अब प्रसन्न हो सकती है? ॥३४॥

मनः क्रूरं दूरादपि न भजते मत्तनु[1] तनुं
शरीरं खेदेनापतनमवलम्बं रचयति।
हृदि प्राणः खिन्नो भ्रमति मम देहाज्जिगमिषु-
स्ततः पृच्छामि त्वां किमिह करवामः प्रियसखे ॥३५

क्रूर मन दूर से भी स्वस्थ नहीं प्राप्त हो रहा है। शरीर खेद से गिरता जाता है। प्राण हृदय में खिन्न होकर शरीर से बाहर निकलने के लिए घूम रहा है। हे प्रियसखा! अतः मैं तुमको पूछती हूँ कि अब हम सब क्या करेंगी ॥३५॥

अहो यस्या लोके निमिषजनितं नासहमहं
विलम्बं या पूर्वं निमिविधिचरित्रं च शपती।

---

[1] मम शरीरस्य क्षीणतां

व्यतीता स्तस्या मे शुक वहु समा स्तं प्रियमृते
तथापि प्राणो मे हृदि वसति धिङ्मां कपटिनीम् ॥३६

अहो जिनके निमिषमात्र अवलोकन से ही हमारे लिये असह्य होजाता था, जिससे हम निमिविधि चरित्र का गान करती थीं "अर्थात् विधाता ने पलकरहित रूप में मीनों को जो बनाया है वह अत्यन्त सुन्दर है, सखि ! यदि विधाता हमें पलकरहित करके बनाता तो अच्छा होता । क्योंकि उससे हम श्रीकृष्ण का निरन्तर अवलोकन करतीं" इस प्रकार प्रार्थना करती थीं। हे शुक ! उन प्रिय के बिना हमारे बहुत दिवस बीत गये तो भी मेरे हृदय में प्राण मौजूद है। मेरे को धिक्कार है, मैं प्रेम-कपटनी हूँ ॥३६॥

कथञ्चिन्नेत्राश्रु प्रसरसलिला हेति रसिता
वियोग प्रावृट्तां गमय वरटे तत्स्मृत गुणैः ।
अहो श्रीमत्कृष्णागमन शरदि त्वं प्रियतमा
स ते कान्तः कृष्णः पुनरपि विलासान् वितनिता ॥३७

हे रमणिशिरोमणि ! किसी भी प्रकार उनके गुणों का स्मरण कर वियोग वर्षाऋतु का अतियापन कीजिये । इस प्रकार रोदन मत कीजिये । क्योंकि तुम्हारे नेत्रों से निरन्तर अश्रुधारा जो बह रही है उससे वर्षा बढ़ जायेगी । आगामि शरद्काल में श्रीहरि का आगमन होगा । प्राणवल्लभ आकर फिर तुम्हारे साथ विलास करेंगे ॥३७॥

यदि प्राणाः स्वान्ते तव सखि वसन्ति स्फुटमहो
तदानीं त्यागः संभवतु तव तेषां किल गिरा ।
परिक्रीडन्ते ये स्मृतिकृतसहायेन नितरां
घनश्यामाम्भोधौ कथ महह तत्र व्यथितताम् ॥३८

हे सखि ! यदि तुम्हारे हृदय में प्राणसमूह मौजूद रहेगा तो

ठीक है, क्योंकि उस समय तुम्हारे वचनादेश से वे प्राण शरीर से पृथक होकर स्मरण सहायक के साथ श्यामसागर में क्रीड़ा करेंगे। अतः तुम व्यथिता क्यों होरही हो ॥३८॥

अस्माकं हृदयालवालजनिता प्रीतिर्लता कोमला
कृष्णेन स्मितसत्कृतेक्षणवचोभंगीभिरेधीकृता ।
या सेयं विरहानलार्चिनिकरैः संतापिता सर्वतो
भूयः कुन्दलिताऽभवत्तव वचः पीयूषसंसिचनैः ॥३९

अब राधिका कहने लगी। हम सबके हृदय रूप आलवाल में जो कोमल प्रीतिलता उत्पन्न हुई है, जिसको श्रीकृष्ण ने स्मित-युक्त कटाक्ष वचन सुधा तरङ्गों का सिंचन के द्वारा बढ़ाया है, जो अब विरहानल ज्वाला से तपकर शुष्कप्राय होगया है, वह प्रीतिलता क्या तुम्हारे वचनसुधा सिंचन से अंकुरित हो रही है ॥३९॥

इत्थं वर्णनजातपूर्वरुचिरक्रीडाविलासस्मृति-
व्याक्षिप्तेन्द्रियवर्गवृत्तिविगलद्धैर्या वियोगाकुला ।
नेत्रांभःस्खलनेन सिंचिततनू रोमांकुरोत्फुल्लभा
श्रीराधा विललाप दुःखहृदया निर्धूतलोकत्रपा ॥४०

इस प्रकार वर्णनजात मनोहर पूर्व क्रीड़ाविलासों का स्मरण से श्रीराधिका की समन्त इन्द्रियवृत्ति रुक गयी, उनको धैर्य नहीं रहा, वे वियोग से व्याकुल होगईं। उनका शरीर नेत्रजल पतनों से भीज गया। वे रोमांचित होकर दुःख के साथ विलाप करने लगीं। उनको लोक में कोई लज्जा नहीं रही ॥४०॥

हे गोविन्द मुकुन्द कुन्ददशना मन्दार विन्दानन
श्री वृन्दावनचन्द्र सुन्दरवरा नन्दाकृते श्रीपते ।
हे चातुर्यकला निदानरसिक प्रेम प्रकाशोदय
मज्जन्त्या विरहार्णवे मम सकृद्धस्ता वलंबं कुरु ॥४१

हे गोविन्द ! हे मुकुन्द ! हे कुन्दपुष्प की भाँति दन्त वाले ! हे कमलनयन ! हे वृन्दावनचन्द्र ! हे सुन्दरराज ! हे आनन्दाकार ! हे श्रीपति ! हे चातुर्य्यकला के निदान ! हे रसिकवर ! हे प्रेमप्रकट के लिये उदय प्राप्त ! मैं विरहसागर में डूब रही हूँ। आप मेरे हाथों को एक बार पकड़िये ॥४१॥

एवं रोदनपूर्वकं बिलपती बाला प्रवाला धरा
शुष्यद्वक्त्र सरोरुहा समगमन्मोहं महान्तं यदा।
श्रीकृष्णोन यथा तदग्रकथितं चाटूक्तिभिर्लालितं
सन्देशं कथितु समारभत तन्मोहस्य शान्त्यै तदा ॥४२

इस प्रकार राधिका रोदन विलाप करती हुई महान् मोह को प्राप्त होगयीं। उनका प्रवाल की भाँति अधरबिम्ब मलिन होगया तथा मुख कमल शुष्क होने लगा। श्रीहरि ने उस शुक के लिए लालन करते हुए जिस प्रकार सन्देश देने के लिए सिखाया था ठीक उसी प्रकार वह शुक राधिका के मोह शान्ति के लिए सन्देश कहने का आरम्भ करने लगा ॥४२॥

धन्या त्वं पृथिवीतले तव समा नैकापि सीमन्तिनी
यामाधाय सदा स्वकीयहृदये पूर्णेन्दु बिम्बाननाम्।
कृष्णो मन्मथबाण भिन्नहृदयः पौराङ्गना संसदि
भूयस्त्वां स्मरति प्रियापुरवधू सौभाग्य गर्वापहाम् ॥४३

तुम पृथिवी में धन्या हो, तुम्हारे समान अन्य कोई रमणी नहीं है। श्रीकृष्ण पूर्णचन्द्रानना जिनको हृदय में सर्व्वदा धारण कर रहे हैं। वे पुररमणियों की सभा में मौजूद रहने पर भी उनके सौभाग्य गर्व्वहारिणी आपकी ही बार-बार स्मरण करते हैं ॥४३

दृष्ट्वा स्वप्नेस्मितसुखमुखीं त्वां दयालुः कदाचित्
कर्तुं यावत् यतत उशतीं तावकालिङ्गनं सः।
बुद्धो दृष्ट्वा विरहविवशस्तावदेव प्रबुद्धो

राधावाधाव्यथित हृदयो हा विलापं करोति ॥४४

श्रीहरि वे कभी शयन के समय स्वपन में स्मितमुखी तुमको देखकर जब आलिंगन करने की चेष्टा करते हैं उस समय फिर तुम्हें न देखकर विरह में विवश हो जागृत होजाते हैं और बाधा से व्यथित हृदय होकर हाय ! हाय ! विलाप करते रहते हैं ॥४४॥

तस्याशक्यं विरह विधुरं मद्गिरा वर्णितु' तत्

स्वोत्तापेन स्मरकवलिते तस्त्वयैवानुमेयम् ।

रात्रौ कोकी भवति विकला चक्रवाकं विनैव

कोकः कोकीं भवति युवयो स्ताद्दशी भावनाभूत् ॥४५

वह विरह दुःख हमसे वाणियों के द्वारा वर्णित नहीं हो सकता है। हे अपने उत्तापित हृदय के द्वारा कन्दर्पकवलिते ! तुम ही उसका अनुभव कर सकती हो। रात्रि में चक्रवाक के बिना कोकी विकला होजाती है तथा कोक भी कोकी के बिना व्याकुल होजाता है। दोनों में ऐसा सम्बन्ध रहता है। आप दोनों में भी ऐसी भावना मौजूद है ॥४५॥

राधे मा कुरु रोदनं मम वचः श्रद्धा हृदि स्थापय

स्वागन्तु' कृत लाल सोपि नितरां गोष्ठं न चागच्छति ।

तत्त्वं शृणु तस्य दोस कणिको नैरास्ति तद्वल्लभे

पक्षैर्हीन विहङ्गमः कथमहो गन्तु' समर्थो भवेत् ॥४६॥

हे राधे ! इस प्रकार रोदन मत कीजिये। मेरे वचनों को हृदय में स्थान दीजिये श्रीकृष्ण प्रतिदिन गोष्ठ के लिये आने की इच्छा करते हैं। परन्तु जो नहीं आते हैं उनका उसमें कोई दोष नहीं है। हे वल्लभा ! यदि पक्षि पंख से रहित हो जाता है तो वह जाने आने में असमर्थ हो जाता है ॥४६॥

देहस्तस्य विशीर्यति प्रतिदिनं त्वदि प्रलंभे हरे

श्चित्त' त्वन्निकटे सदैव वसति ध्यानेन ते सुन्दरि ।

किञ्चित्काल मलं वियोग विधुरः क्षिप्त्वा महासंकटे
शीघ्रं यास्यति निश्चितं नयनयो स्ते सौख्यदस्त्व हरिः ॥४७॥

तुम्हारे वियोग से उनका शरीर प्रतिदिन जीर्ण हो गया है। उनका चित्त तो तुम्हारे पास निरन्तर वास कर रहा है। वे कुछ समय तुम्हारे ध्यान करते हुए बिताते हैं। परन्तु वियोग वश होकर पर मुहूर्त में महा संकट में पड़ जाते हैं। वे शीघ्र ही आकर तुम्हारे नयनों को सुखी करेंगे ॥४७॥

त्वं चापि व्यसनं कठोर कठिनं तीर्त्वा कथञ्चित्पुन-
र्मोदं प्राप्स्यसि यद्ध्रुवं नहिं सुखं दुःखैर्विना लभ्यते।
एवं युक्ति विमिश्रितं विरहिणी श्रुत्वा वचः संहितिं
श्रीकृष्णागमनेन सा च मुदिता कृष्णप्रिया सर्वतः ॥४८॥

आप भी कठिन से कठिन इस दुःख से पार होकर अवश्य आनन्द प्राप्त करोगी। दुःख के बिना सुख नहीं मिलता है। इस प्रकार युक्ति विमिश्रित उस शुक के बचनों को सुन कर विरहिणी वह राधा "श्रीकृष्ण का आगमन होगा" ऐसा मान कर सर्वप्रकार से प्रसन्न हो गयी ॥४८॥

कीरं तं स्वकरेण दाडिमफलं संभोजयन्ती मुदा
दूतोऽयं मम वल्लभस्य नितरांज्ञात्वेति सा लालयन्।
सख्योऽपि स्मित कोमलाधरपुटाः प्रत्येक मालिङ्गनै
रानन्दाम्बुधिमज्जिताश्च समलञ्चक्रुः प्रियव्याहृतैः ॥४९॥

आप अपने हाथों से उस कीर को दाडिमफल का भोजन कराती हुई "यह मेरे प्राणवल्लभ का दूत है" इस ज्ञान से उसको लालित करने लगीं। उस समय सखियों का कोमल अधर स्मित युक्त होने लगा। प्रत्येक ने प्रत्येक का आलिंगन किया। वे सखियां आनन्द सागर में डूब गयीं तथा प्रियालापों से शोभिता होने लगीं ॥४९॥

अथ शुको वददिन्दु मुखीं पुनर्व्रजपतेर्भवनं नय मां पितुः ।
इति तदा गदिता वृषभानुजा
सहचरीं निजगाद शशिप्रभाम् ॥५०॥

अनन्तर शुक ने चन्द्रमुखी राधिका को कहा । हे स्वामिनि ! हमें फिर एक बार पिता व्रजराज के भवन में ले चलिये । उस समय वृषभानु नन्दिनी उसका इस मनोहर वचन का श्रवण कर निज सहचरी शशिप्रभा को कहने लगीं ॥५०॥

अयि शुकं नय गोपयते गृहं जनकयो विरहाग्नि निवारकम् ।
इति निशम्य सखीवचनं च सानयदिदं स्वकरस्थितभालयम्॥५१॥

अयि ! शशिप्रभे ! पिता माता दोनों के विरहाग्नि निर्वापक इस शुक को व्रजराज के घर पर ले जाओ । राधिका के इस प्रकार आदेश पाकर वह अपने हाथ में उसे रख कर वहाँ ले गयी ॥५१॥

तत्र पुत्र विरहेण कृशाङ्गीं हा सुतेति च मुहुर्विपलन्ती ।
द्रच्यसोत्त्णविनिर्गतनीरां मातरंपुरपतेः शुक भूयः ॥५२॥

वहाँ शुक ने पुत्रविरह से कृशांगी "हा पुत्र !" इस प्रकार वार वार विलापकारिणी, नयनों से जलधारा बहाने वाली द्वारकापुर पति की माता को पुनः देखा ॥५२॥

तेन सार्द्धमगमच्च सखी या सा जगाद निकटं तदुपेत्य ।
आगतस्तनय वाचिकहारी ते प्रियंकरमहो व्रजमातः ॥५३॥

वह शुक के साथ में रहने वाली सखी शशिप्रभा माता के निकट में उपस्थित होकर कहने लगी । हे व्रजमाता ! तुम्हारे पुत्र का सन्देशहारी तथा तुम्हारा प्रियकर यह आया हुआ है ॥५३॥

किंचिदेव गतविग्रहचेष्ठा तद्वचःश्रवण तः परिहृष्टा ।
क्वास्ति मे तनयवाचिकहारी क्वास्तिकिंभ्रम इति प्रजगाद ॥५४॥

उसके वचन सुनकर यशोदा किञ्चित सचेता होकर प्रसन्नता

के साथ "मेरे पुत्र का सन्देशहारी कहाँ है ? कहाँ है ? क्या यह मेरा भ्रम है" इस प्रकार बोलने लगीं ॥५४॥

वीक्ष्य तां शुकवरस्तदवस्थां संममज्ज करुणाम्बुधिमध्ये ।
आविलोकित चरी न पुनश्च प्रेमरीतिरिति विस्मयसिंधौ ॥५५॥

शुकवर यशोदा को तथा उनकी उस अवस्था को देख कर करुणासागर के बीच डूब गये उसने ऐसी दशा कभी नहीं देखी थी न इस प्रकार प्रेमरीति का अनुभव किया उसको बड़ा भारी विस्मय उपस्थित हो गया ॥५५॥

साब्रवीत् सहचरी पुनरुच्चैः सावधान हृदया भव मातः ।
पश्य दूतमिम मग्रचरं ते तत्करे तमुपवेशयदुक्त्वा ॥५६॥

वह सहचरी फिर उच्च स्वर से बोलने लगी, हे मात ! सावधान हृदया हो। देखिये तुम्हारे समक्ष यह मौजूद है। ऐसा कहती हुई यशोदा के हाथ पर उसने शुक को बैठाया ॥५६॥

सापि दक्षिणकरेण शुकेन्द्रं लालयन्मुद मवाप यशोदा ।
स्वात्मजस्य कुशल समपृच्छन् मन्द मन्द मधुरेण कलेन ॥५७॥

यशोदा भी दक्षिण हाथ से शुक का लालन करती हुई आनन्द प्राप्त हो गयीं अनन्तर वह मन्द मन्द मधुर स्वर से पुत्र का कुशल पूछने लगीं ॥५७॥

मच्छिशुः कथय किं सुखमास्ते द्वारकानगर एव मुकुन्दः ।
विस्मृता ब्रज निवासिन एते तेन कीर वर मोहित चित्ताः ॥५८॥

हे शुक ! कहो मेरा बालक मुकुन्द द्वारकानगरी में सुख से है। वह इन मोहितचित्त ब्रजवासियों को भूल गया है ? ॥५८॥

लालयेन्त मनुकूल चरित्रैः को नरः प्रकृतिरीत्यनभिज्ञः ।
पत्तनेति च विचार्य मनो मे मज्जति व्यसनदुस्तरसिंधौ ॥५६॥

वहां तो उसकी प्रकृति को कोई नहीं जानता होगा। कौन अनुकूल चेष्टाओं से उसका लालन करता होगा। इसका विचार कर मेरा मन विस्तार दुःख सागर में डूब जाता है ॥५६॥

नास्ति मे हृदिपरा शुक चिन्ता किन्तु राजति सुखं व्रजवन्धुः।
सर्वदेति पद मुत्सवदं मे कर्णयोः सुखभरं वितनोतु ॥६०॥

हे शुक मेरे हृदय में ऐसी कोई चिंता नहीं हैं। परन्तु कहो व्रजबन्धु वह सुख पर्वक वहां मौजूद हैं ? इस वचन का सरस उत्तर देकर मेरे कर्णों में उत्सव सुख प्रदान करो ॥६०॥

बालकेलिरधुना मम तस्य गेहनीत नवनीतसुचौर्या।
आगता कलयति स्मृतिमार्गं व्याकुलं हृदयमिन्दुमुखस्य ॥६१॥

चन्द्रमुख उसको बाल क्रीड़ा, गेह स्थित नवनीत की चोरी मेरे स्मृति मार्ग में आकर हृदय को व्याकुल कर रहे हैं ॥६१॥

केशवःस्मरति किं व्रजवन्धून् मातरं च पितरं च कदाचित्।
हस्तपालित गवां निकुरम्वान् पर्वतं च यमुनां च वनानि ॥६२॥

वह केशव अपने व्रजवन्धु माता-पिता-हस्तों से पालित गो-समूह-गिरिराज-यमुना-वनादिकों का कभी स्मरण करता है ? ॥६२॥

सत्यमेव वद किं मम पुत्र आगमिष्यति पुनर्व्रजवीथीम्।
हर्षयिष्यति च गोकुलवन्धू सस्मिते क्षण सरोज मुखेन ॥६३॥

हे शुक ! सत्य कहो क्या मेरा पुत्र पुनः व्रज मार्ग में आवेगा ? वह ब्रज में आकर स्मितदृष्टियुक्त मुख कमल से गोकुल बन्धु-जनों को प्रसन्न करेगा ॥६३॥

आगमिष्यति यदि व्रजदेशं तर्हि तन्मुखमुदारसुशोभम्।
वीक्ष्य गोकुल निवासिन एते हर्षिताः सकलपूर्णतरेहाः ॥६४॥

यदि उसका व्रज में आगमन होगा तब उदार-शोभायमान

उसके मुख का दर्शन कर ये सब गोकुल वासी प्रसन्न हो जायेंगे तथा उनकी सकल चेष्टा सफल हो जावेंगी ॥६४॥

पश्य गोकुलमिमं विरहार्तिं नो भुनक्ति हरितानपि भक्ष्यान् ।
वामहस्तधृत शैलवरेण रक्षितं कठिन वृष्टिभयाद्यत् ॥६५

विरहपीड़ित इस गोसमूह को देखो । वह हरे घास को भी नहीं खा रहा है । जिसकी उसने वाम हाथ मे पर्वतराज धारण कर वृष्टि भय से रक्षा की है ॥६५॥

नास्ति कोऽपि भुवने नरनाम्ना मत्समो निहतभाग्यबलो यत् ।
नावलोक्य तनयं तमहो हं हा विभर्मि शुक जीवनभारम् ॥६६

जगत में मनुष्यों के बीच मेरे समान भाग्यवल किसी के नहीं है । परन्तु क्या करूँ ? जैसी विधाता ने कपाल में लिखी है उसे भोगना पड़ेगा । हे शुक ! उस बालक को न देखकर मैं जो जीवन धारण कर रही हूँ वह केवल भारमात्र है ॥६६

तं शपे मुहुरहं व्यसनांगी गान्दिनी तनयमेव कठोरम् ।
येन कोमलमना ममसूनुर्दूरदेशमहह प्रतिनीतः ॥६७

उस कठोर गान्दिनीनन्दन अक्रूर को मैं व्यसनांगी होकर बार-बार सपती हूँ । जिसने कोमल हृदय मेरे पुत्र को दूर देश में लेजाकर रखा है ॥६७॥

केन सम्वदति मूर्छितदेहा प्यद्य कृष्णजननीति समस्ताः ।
आययुश्च प्रतिवेशनिभावान्यो मुकुन्दजन कोपि तदानीम् ॥६८

आज मूर्छित शरीर मुकुन्दमाता किसके साथ आलाप कर रही है ?" इस प्रकार विचार कर प्रतिवासियाँ तथा उनके पिता ब्रजराजनन्द भी उस समय वहाँ पहुँचे ॥६८॥

कृष्णदूतवर उज्वलचेता वाचिकं क्रमत एव जगाद ।
मा भयं कुरु यतो व्रजदेशं प्राहिणोज्जिगमिषुस्तनयो माम् ॥६९

उस समय श्रीहरि का दूतवर उज्वलचित्त शुक सबके लिये संदेश

देकर कहने लगा, हे व्रजराज ! भय मत कीजिए । क्योंकि तुम्हारे नन्दन ने आने का विचार करके ही व्रज के लिये पहले हमें भेजा है ॥६९॥

त्वत्कृतामुपकृतिं मयि मात विस्मरेज्जगति को नरमात्रः ।
आगतां प्रणय वत्सलता ते तत्स्मृतिं हृदि रुजं वितनोति ॥७०

हे मात ! हममें तुमने जो उपकार किया है उसे जगत में कौन मनुष्य भूल सकता है ? तुम्हारी प्रणय वत्सलता हृदय में स्मरण रूप में आकर अत्यन्त पीड़ा दे रही है ॥७०॥

एवमुत्सवदवाचिकवृन्दै र्धीरकीरमुखजात सुशोभैः ।
हर्षिता विरह ताप विमुक्ता सा भवन्निजसुतस्य यशोदा ॥७१

इस प्रकार धीर कीरराज के मुख उत्पन्न मनोहर उत्सवदायी-बाचिक सन्देशों से हर्षिता होकर वह यशोदा अपने पुत्र के विरहतापों से कुछ स्वस्था हुई ॥७१॥

ता ऊचुरेव सकलाः प्रतिवेशिवासि-
न्यस्तं विना तव सुतं व्रजराजपत्नि ।
शून्यायते त्रिभुवनं निलयं च भीति
मुत्पादय त्यतिशयेन विलोकितं चेत् ॥७२

उस समय समस्त प्रतिवेशवासिनी यशोदा के लिए बोलने लगीं। हे व्रजराजपत्नि ! यशोदे ! तुम्हारे उस नन्दन के बिना हम सबके लिए त्रिभुवन, गृहादि शून्यमय प्रतीत हो रहे हैं । उन सबका दर्शन से अत्यन्त भय उत्पन्न हा रहा है ॥७२॥

व्रजभूमिपतेर्गृहोत्तमं हरिसन्देशहरः समागतः ।
इति तत्र निशम्य बालकाः सुबलाद्या स्त्वरितं सुखागताः ॥७३

"हरि का सन्देशहारी व्रजराज के घर पर आया है" इस प्रकार सुनकर सुबलादि सखा प्रसन्नता के साथ वहाँ उपस्थित हुए हैं।७३

दृष्ट्वा कीरं श्रीयशोदाकरस्थं

ज्ञात्वा श्रुत्वा कृष्णचन्द्रस्य दूतम् ।
देही त्युक्त्वा मातरं तोककृष्ण
स्तेषांमुख्यो वेशय त्स्व स्व पाणौ ॥७४

यशोदा के हस्तस्थित उस कीर को देखकर तथा श्रीकृष्णचन्द्र का यह दूत है ऐसा जानकर उस समय स्तोककृष्ण जो कि उनमें मुख्य है। उसने "दीजिये" ऐसा माता को कहकर अपने हाथ में शुक को बैठाया ॥७४॥

दीर्घोत्कण्ठा कुंठितस्वान्त देशाः श्रोतुं तस्मात्कृष्ण कौशल्यवार्ताम् ।
जाग्रत्पद्माभीष्ट शोभाननास्ते ह्यावव्रुस्तं सर्वशस्तद्वयस्याः ॥७५

दीर्घ उत्कंठाओं से कुण्ठितहृदय, प्रफुल्लकमल की भाँति मनोहर मुख वाले, वे सब कृष्णसखा वयस्य उस शुक से श्रीकृष्ण की कुशलतामय वार्त्ता सुनने के लिए उसको घेर लिया ॥७५॥

आस्ते कृष्णः स प्रमोदो नगर्यां किंवा वार्तामस्मदीयां कदापि ।
प्राप्तैश्वर्यः स प्रसंगेनवक्ति वृन्दारण्ये कल्पितान् कौतुकांश्च ॥७६

श्रीकृष्ण द्वारकानगरी में आनन्द में हैं? क्या वे हमारी वार्त्ता कभी करते हैं? क्या ऐश्वर्य प्राप्त वे प्रसंगपूर्वक वृन्दावन में विरचित कौतुकों का स्मरण करते हैं ॥७६॥

त्यक्ताक्रीडस्त्यक्तपूर्वाकृतिः स द्वारावत्यां श्रूयते राजतेति ।
नो जानीमोज्ञाह्यते वा न वास्मान् कष्टप्राप्तानप्यहो तत्र कृष्णः ॥७७

ऐसा सुनने में आ रहा कि वे क्रीडाओं का त्याग कर पूर्व-व्यवहारों को छोड़ द्वारावती में विराज रहे हैं। हम नहीं जानते हैं कि वहाँ श्रीकृष्ण दुःख प्राप्त हम सबका स्मरण करते हैं किंवा नहीं करते हैं ॥७७॥

स्वस्थस्वान्त श्चित्रमेतच्छृणु त्वं मुंजाटव्यां रक्षिता दाव वन्हेः ।
तेनैवैते पातिता विप्रलंभदावाग्नौ दुःसह्यतापे वयं च ॥७८

हे कीर! स्वस्थचित्त होकर सुनो, उसने पहले मुञ्जाटवी में

दावाग्नि से हम सबको बचाया था। फिर उसने अब दुःसहताप-मय वियोग दावाग्नि में हम सबको डुबाया है ॥७८॥

माहेयीनां पालने तेन साकं जातं मोदं हा व्यतीतं बभूव।
मन्दप्रारब्धेन बीजेन दु खं प्राप्तं भ्रष्टाः स्वर्गतः पुण्यशेषात् ॥७९

गौओं का पालन में उसके साथ हमारे जो आमोद उत्पन्न हुआ था वह अतीत होगया है। पुण्य शेष होने पर स्वर्ग भ्रष्ट मनुष्य मन्द प्रारब्ध बीज के द्वारा दुःख पाता है ॥७९॥

आगत्यास्मान्सानुरागावलोकै र्गोष्ठे कृष्णः किं पुनर्जीवयिष्यते।
कृष्णः किं गोष्ठप्रयाणस्थवार्तां सत्यंब्रूहि व्यक्रराग: करोति ॥८०

क्या श्रीकृष्ण पुनः गोष्ठ में आकर सानुराग अवलोकन के द्वारा हमें जीवित करेगा? हे कीरराज! सत्य कहो! क्या श्रीकृष्ण अनुराग के साथ गोष्ठ में आने की वार्त्ता करता है? वे सब सखायें उनके साथ की हुई नर्म्मवाक्यमयी उन उन ॥८०॥

एवं स्मृत्वा तेन सार्द्धं कृतां च लीलां तां तां नर्मवाक्य प्रभेदाम्।
भूयो भूयो व्याकुलास्ते वयस्थाश्चक्रुर्वक्रं सिक्तमश्रुप्ररोहैः ॥८१

लीला का बार-बार स्मरण कर अश्रुप्रवाहों से मुख को भिजाने लगे ॥८१

एवं तानपि सन्दिदेश सुहृदः कृष्णस्य सद्भाषितै
र्नालोक्य प्रियबान्धवान् हरिरहो युष्मत्समान् पत्तने।
कृष्ण. खिद्यतितान् भवत्सु कुतुकान् स्मृत्वा मुहुर्निश्चितं
तस्माद्गोकुलमागमिष्यति भवन्मित्रोहि मा खिद्यतः ॥८२

इस प्रकार शुकराज उत्तम भाषणों से कृष्ण के सखा उनको सन्देश देकर कहने लगा। अहो द्वारकोपत्तन में श्रीहरि तुम्हारे समान प्रिय बन्धुओं का दर्शन न कर केवल कुतुकोतुम्हारे स्मरण करते हुए दुःखित हो रहे हैं। मैंने इसका बार बार निश्चय किया। अतः आप सबके मित्र श्रीहरि गोकुल में

आने वाले हैं। तुम सब दुःख मत करो ॥८२॥

इत्थं गोष्ठ निवासिनः खगनगांस्ताः सौरभेयीः शुकः
सन्देशैर्यदुवंशजस्य सततं संप्रीणयन् सादरम्।
आज्ञां पालयनम्बुजाननहरेः कृष्णं च संस्मारयन्
सानन्दं रमणीयकाननयुते वासञ्चकार व्रजे ॥८३

इस प्रकार वह शुकराज गोष्ठ निवासी खग, वृक्ष गौ आदि सबको यदुवंश जात श्रीहरि के सन्देशों से आदर के साथ प्रसन्न कर कमलनयन उनकी आज्ञा का पालन करता हुआ उनको श्रीहरि का स्मरण कराकर रमणीय वनों से युक्त व्रज में आनन्द के साथ वास करने लगा ॥८३॥

यावत्कीरवरो वसद्व्रजभुवि प्रेमोदयाडम्बरः
प्राणप्रेष्ठतया मुहु र्व्रजजनैः संलालितःसौख्यभाक्।
तावत्कृष्णकथा सुधाजलनिधौ मग्नाश्च गोष्ठौकसो
नाविन्दन् गतवासराणि मुदिता निर्धूतकष्टोदयाः ॥८४

जब तक उस शुकराज ने प्रमोद आडम्बर के साथ व्रज में वास किया है तब तक व्रजवासियों ने प्राण से प्रिय मान कर उसका लालन किया। सबके साथ उसकी सौख्यता हो गयी। तब तक व्रजवासियां कृष्ण कथा-रूप सुधा-सागर में निमग्न होकर प्रसन्नता के साथ बीते हुए दिवसों को नहीं जानने लगे। उनके दुःखादि निर्द्धित हो गया ॥८४॥

श्रीगोविन्द मुनीन्द्रवन्दितपद द्वन्द्वारविन्दासव-
प्रोन्मत्ताखिलचित्तवृत्तिसुखदे सारङ्ग संगोदिते।
काव्ये नन्दकिशोरचन्द्र रचिते श्रीकीरदूताभिधे
षष्ठोऽयं विरहार्तिशान्तिरचितः सर्गोऽगमत्पूर्णताम् ॥८५

श्रीगोविन्द के मुनिगण वन्दित चरण कमल युग के मकरंद पानोन्मत्त समस्त रसिकजनों की चित्तवृत्ति में सुखदायी

कौतुकपूर्ण, नन्दकिशोरचन्द्र के द्वारा विरचित इस शुकदूत नामक काव्य का विरहार्त्तिशान्तिरचित वर्णन मय यह षष्ठसर्ग सपूर्ण हुआ ॥८१॥

इति श्री रसिक सम्प्रदायाचार्य श्रीमज्जयदेव कविराज राज-राजेश्वर वंशोत्तंस श्रीप्रभुनन्दकिशोरचन्द्र गोस्वामि प्रणीते श्रीशुकदूत महाकाव्ये व्रजवासिविरहार्तिनाशनो नाम षष्ठः सर्गः समाप्तिमगात् ॥

—०—

सप्तमः सर्गः

अथ कौतिचिद्दहानि व्याप्य तत्रैव कृत्वा
व्रजजनसुखवासं गन्तुमिच्छुः शुकेन्द्रः ।
पुरभुवि हरिकर्णप्रोत्सवं निर्मिमाणो
मुररिपुदयितां स प्राह राधाभिधेयाम् ॥१

अनन्तर उस शुकराज ने व्रजवासियों को आनन्द देता हुआ कुछ दिवस व्रज में निवास किया वह द्वारकापुरी में जाकर कुशल वार्ता से हरि के कर्णानन्द करने का इच्छुक हो श्रीराधिका नाम से प्रसिद्धा मुरारी की दयिता को कहने लगा ॥१॥

श्रीराधिके मद्वचनं श्रृणु त्वं तव प्रियं त्वद्विरहेण खिन्नम् ।
व्रजस्त्वसन्देशचयैर्यथाहं तथा निदेशं कुरु हर्षयिष्ये ॥२

हे श्रीराधिके ! आप मेरे वचनों को श्रवण कीजिये । आपके प्रिय आपके विरह से खिन्न हो रहे हैं । जिस प्रकार मैं वहाँ जाकर सन्देशों के द्वारा उन्हें प्रसन्न करूँ ऐसा आदेश कीजिए ॥२॥

प्रस्थानकाले मम नीरनेत्रो जगाद भूयो रसिकाधिराजः ।

शीघ्रं त्वमागत्य तदीयवार्त्तां यत्नेन सं श्रावय मे शुकेश ॥३
मेरे प्रस्थान के समय रसिकराज ने नेत्रों में आँसू लाकर कहा था कि हे शुकराज ! तुम वहां से शीघ्र आकर उनकी वार्त्ताओं का श्रवण कराओ ॥३॥

कृष्णः परावृत्य मयापि दृष्टो मद्यानमार्गे धृतनेत्रयुग्मः ।
भवत्स्मृतिव्यग्रमना कथंचित् भित्तिं समालंब्य स चित्रितोऽभूत् ॥४
मेरे आने के समय वे हमारे मार्ग में नेत्र रखकर आपकी स्मृति में व्यग्रमना हो जैसे तैसे दीवाल का आश्रय कर चित्र की भांति खड़े होगये थे ऐसा मैंने उन्हें देखा था ॥४॥

भवत्प्रसादाद्बहुवासराणि मे कृष्णकान्ते क्षणवद्गतानि ।
तस्मात्त्वमाज्ञापय पत्तनान्तं गन्तुं मुकुन्दस्य वियोगशान्त्यै ॥५
हे कृष्णकान्ते ! आपके प्रसाद से मैंने यहां बहुत दिवसों को क्षण की भांति बिताया । अतः आप आदेश दीजिये । द्वारका में जाकर मुकुन्द के वियोग को शान्त करूँ ॥५॥

भवद्दशां द्वारवतीश्वराय संश्रावयित्वा व्रजमानयामि ।
यथा भवत्प्रेष्ठतमं तथैव कृपाविधेया मयि सिद्धिदात्री ॥६
आप सबकी वार्त्ता का श्रवण करा कर उन्हें जिस प्रकार ब्रज में ला सकता हूँ तथा जिसमें प्रिय हो सिद्धि देने वाली आप ऐसा कीजिये ॥६॥

निशम्य सा तद्वचनं शुचिस्मिता जगाद राधा रमणीयभाषितम् ।
स्वस्त्यस्तु ते जन्मनि जन्मनीदृशो दयावती स्यात्तव धारणावती ।७
उसके वचन का श्रवण कर श्रीराधा मन्दहास्य करती हुई मनोहर बोलने लगीं । हे कीर ! तुम्हारा जन्म जन्म में कल्याण हो तथा तुम्हारी इस प्रकार दयावती धारणा सर्व्वदा विराजमान रहे ॥७॥

कृता त्वया योपकृतिर्ममोपरि मया कदापि प्रतिकर्तुमक्षमा ।
यियासवः प्राणपतत्रिणो मम यतस्त्वयाद्य प्रतिपालिता सखे ॥८

तुमने हमारे ऊपर जो उपकार किया है मैं उसका प्रतिदेय करने में असमर्थ हूँ। हे सखे ! तुम जाने की इच्छा कर रहे हो। देखो जिससे मेरे प्राणपक्षि शरीर में मौजूद रहे ऐसा पालन करना ॥८॥

वियोगशान्तिः श्रवणं प्रियस्य सुखेन कालात्ययनं च जातम् ।
भवत्प्रसंगेन सतां प्रसंग सर्वार्थदायीति वचश्च सत्यम् ॥९

तुम्हारे प्रसंग से प्रिय की वियोग शान्ति के द्वारा सुखपूर्वक मैंने समय यापन किया। साधुओं का प्रसंग सर्वार्थदायी होता है यह वचन सत्य है ॥९॥

कुशस्थलीं तां भवता गतेन वार्तास्मदीया विनिवेदनीया ।
अग्रे यदूनामधिपस्य नूनं दूतो द्वयोरेव समं प्रवक्ति ॥१०

कुशस्थली में तुम जाकर यादवनाथ के समक्ष हमारी इन वार्त्ताओं का निवेदन करना। दूत जो होता है वह दोनों पक्ष में सत्य बोलता है ॥१०॥

रात्रौ दवाग्नेः परिरक्षिता त्वया दीप्तादभूवन् किल ये व्रजौकसः ।
तांस्त्वद्वियोगे विरहाग्निदीधितिः समंततो ज्वालयति प्रकाशिता ।११

रात्रि में आपने जिस दावाग्नि ज्वाला से व्रजवासियों का परिरक्षण किया था वह दावाग्नि ज्वाला तुम्हारे वियोग से फिर प्रकाशित (प्रज्वलित) होकर सब प्रकार से जला रही है ॥११॥

पुरा फणी कालियनामधेयो निःसारितः श्रीयमुनाजलस्थः ।
ज्ञात्वा भवंतं विष पूर्णितास्योऽवसत्पुनस्तत्र गतं विदूरे ॥१२

पहले तुमने जिस कालीनाग को जमुनाजल से निःसारित किया है, वह फिर आपका दूतदेश में गमन सुनकर मुख में विष भर कर वास करने लगा है ॥१२॥

हा प्राणनाथ कथितव्यमहोऽस्मदीयं येन त्वयोज्झितगृहा-
अपिदीनचित्ता ।

त्यक्त्वा वयं तदपराधफलस्य नाशं कुर्मो यथागणितसाधनपुण्यपुंजैः ।१३
हे प्राणनाथ ! कहिये ! अहो जो आपने दीन हृदय हम सबके गृहादिकों का परित्याग कराया, अब हम सबने असंख्य पुण्य-पुंज के द्वारा उस त्यागापराध की फल प्राप्ति करली है ॥१३॥
श्रीराधिका विरहसागरमग्नचित्ता वक्तुं यदा नहि शशाक निरुद्धकंठी ।
तस्या स्तदा सहचरी ललितेति नाम्नी प्रोवाच तद्विरहदुखदशांवदन्ती१४
इस प्रकार बोलती हुई श्रीराधिका विरहसागर में मग्न होगयी तथा कुछ नहीं कह सकी । क्योंकि उनका कंठ रुद्ध होगया । उस समय ललिता इस नाम से प्रसिद्धा उनकी सहचरी उनकी विरह-दशा को हृदय में धारण करती हुई बोलने लगी ॥१४॥

गिरिंसमुद्धृत्य करे पुरा त्वया पराजिता ये व्रजरक्षणेन ते
घनाघना गोपवधूविलोचनैराप्लावयन्ति व्रजमेकतां गताः ॥१५
हे प्राणनाथ ! तुमने पहले गिरि को हाथ में उठाकर जिस मेघ का पराजय किया था अब उस मेघपुंज ने गोपवधूओं के नयनाश्रु के द्वारा गहीडा बनकर व्रज को संप्लावित कर एकाकार कर दिया ॥१५॥

कदाचिदिन्दीवरलोचनेयं धाराधरं वीक्ष्यतडित्प्रकाशम् ।
वित्यस्तधैर्या विलपन्नितान्तं सखीजनान् रोदयति व्यथांगी ॥१६
कभी तो यह इन्दीवरनयना विद्युत से शोभित मेघराशि का दर्शन कर धैर्यरहिता हो अत्यन्त विलाप करने लगती है तथा व्यथितांगी होकर सखियों को भी रुँदाती है ॥१६॥

यदवधि नगरंगतोमुकुन्दः करधृत१वेणुरहो श्रुसिंचिताक्षी
तदवधि विरहार्त्तिशोषितांगी गतशयनापि निरीक्षते सनिद्रा ॥१७
जब से मुकुन्द मथुरा गमन किये हैं तब से राधा दोनों हाथ में कपाल रखकर अश्रुओं से सिञ्चितनयना हो विरहार्त्ति से

१ गंडयुगाश्रुसिंचिताक्षी पाठः

क्षीणांगी होगयी तथा शयन करने पर भी कुछ देखती रहती है ॥१७॥

अगणितगुणसाधनैरपूर्वैः शुकवर ! शाम्यति नांगजा व्यथास्याः ।

वहुतरकलितश्रमोऽपि कार्यो न फलति दैवहतस्य मानुषस्य ॥१८

हे शुक ! असंख्य चेष्टा करने पर भी उसकी अङ्गजात व्यथा दूर नहीं होती है । जब मनुष्य की दैवदशा आती है तब अनेक परिश्रम करने पर भी उसका कार्य सफल नहीं होता है ॥१८॥

रचयति न कदापि देहचेष्टां न च वचनं गुरुवर्गजं शृणोति ।

गुरुजनहृदये गुरुव्यथांगी जनयति दृष्टिपथं गतातिखेदम् ॥१६

वह कभी अपनी शरीर चेष्टा को नहीं करती है, न गुरुजनो के वचनों को सुनती है । इस प्रकार अत्यन्त व्यथांगी होकर गुरु-जनों की दृष्टि में आ उनके हृदय में अत्यन्त खेद प्राप्त कराती है ॥१६॥

यदुकुलनृपतेर्नचात्र दोषो भवति ममैव महानयं च सख्याः ।

अपरिचितगुणे वभूव यस्मात् शुक पथिके कितवे च वद्धरागा ॥२०

इसमें यदुनाथ का कोई दोष नहीं है । न सखी का कोई दोष है यह तो मेरा ही दोष है । हे शुक ! अपरिचित गुण वाला कितव पथिक में वह हमारे द्वारा वह वद्धरागा होगई ॥२०॥

नीतास्माभिरिमं तदीयचरितं यत्नेन नद्यास्तटे

तं विस्मारयितुं कदापि विपिने तत्तद्विहारस्थलान् ।

दृष्ट्वावर्द्धितविप्रलंभविधुरा मूर्छां तदा गच्छति

सत्यं यत्र च याति दैवहतकस्तत्रैव याति व्यथाम् ॥२१

यमुनातट में हमने तो उसे उनके चरित्रों का श्रवण कराया था । अब वह नाना चेष्टा करने पर भी उन्हें भूल नहीं सकती है । वह तो वन में उन विरहस्थलों का दर्शनकर वियोग से अत्यन्त दुःखित हो मूर्च्छा को प्राप्त कर लेती है । यह बात सत्य है कि

जब दैव प्रतिकूल होजाता है तो समस्त दुःख आप ही आप उपस्थित होता है ।।२१।।

यस्या अङ्गमिदं पुराऽब्जमृदुलं प्रेष्ठो रसालिङ्गितं
जातं तत्कथमद्य हन्त सहते विच्छेदवज्राहतिम् ।
एवं हृत्करुणाम्बुधौ मम पुनर्बाधाभिगीर्णाकुलं
मोहं याति विचार्य कीरवर हे व्यग्रीभवन्मज्जति ।।२२

जिसके कमल की भांति कोमल यह शरीर पहले प्रिय के रसों से आलिंगित हुआ करता था वह अंग आज विच्छेद वज्र का सहन किस प्रकार कर रहा है । इस प्रकार विचार करने से मेरा हृदय करुणा सागर में डूब कर बाधाओं से व्याप्त हो मोह को प्राप्त हो जाता है तथा व्यग्र होकर व्याकुलित होता है ।।२२।।

क्वचिद्भ्रमति सर्वतः क्वचिदियं मुहुः क्रन्दते
क्वचित् पिबति मूर्छिता क्वचिदपि प्रियालिंगने ।
प्रसारितभुजा पतत्यलघु दुःखशीर्णान्तरा
करोति नहि कां कृतिं प्रणयवेगवश्यो जनः ॥२३

यह वाला कभी तो चारों ओर घूमती रहती है, कभी बार बार रोने लगती है, कभी तो मूर्छित हो जाती है, कभी भुजा पसार कर प्रिय आलिंगन के लिये भागती है, इस प्रकार विरह से अन्यन्त व्याकुल होकर दुःख उठाती है । अहो ! प्रणयवश होकर मनुष्य क्या क्या चेष्टा नहीं करता है ।।२३।।

एकैवेयं सतु परिजनैर्वेष्टितः कामनामा
निःशस्त्रा सः कुसुमधनुषा राजितस्तीक्ष्णबाणैः ।
वाला चेयं वलपरिमलैर्बासितोन्नद्धवाहु-
र्योद्धुं तेन प्रभवति कथं भीरुचित्ता भयेन ।।२४

अहा यह वाला तो अकेली है, उस में फिर उसके पास कोई अस्त्र शस्त्र भी नहीं है । काम तो परिजनों से परिवेष्टित तथा

कुसुमधनुष के तीक्ष्ण बाणों के साथ विराजमान है। यह बाला तो निर्बला है काम तो अत्यन्त बलवान् है। यह तो भय से भयभीत है। उसके साथ युद्ध किस प्रकार कर सकती है॥२४॥

त्यक्ता हारा शिथिलित तनुर्व्यावृति मौनवाणी
सौदासिन्या जगति विगलद्वस्त्रसंस्कार शून्या।
एकांतस्था विगतशयना लौकिकालक्षमार्गा
किंवा योगिन्यहह चरितैर्वा वियोगिन्यसौ किम् ॥२५

क्या यह वियोगिनी है अथवा योगिनी है। अहो आज आचरणों से योगिनी की भाँति दीख रही है। इसने तो आहार छोड़ दिया है। इसकी शरीरचेष्टा भी शिथिल हो गयी तथा वह निरन्तर मौन ही रहती है। जगत से यह उदासिनी रहती है, तथा विरह से वस्त्रादिकों को सँभाल नहीं सकती है। फिर यह एकान्त में बैठी रहती है, तथा निरन्तर एक ध्यान से स्मरण करती रहती है ॥२५॥

स्थगिते तवमार्ग दर्शनेन नयने चांगुलिपर्वकाणि कृष्ण
अवधीकृतवासरस्य संख्या करणेन व्ययमागतानि नूनम् ॥२६

इसके दोनों नेत्र तुम्हारे मार्गदर्शन से स्थगित हो रहे हैं, अंगुलिपर्वों से निरन्तर तुम्हारे आने के दिवसों को गिनती रहती है ॥२६

मरणं मुहुरर्थयामि दैवात् स्तुतिभिर्मे वचनं न सः शृणोति।
यदि जीवनसिद्धये भवन्तं प्रवदेंगी कुरुते न किं करोमि ॥२७

अब तो मैं निरन्तर मरने को चाहती हूँ! विविध स्तुति करने पर भी वे आप मेरे वचन को नहीं सुनते हैं। जीवनसिद्धि के लिए तुमसे कह रही हूँ। वे आप अङ्गीकार क्यों नहीं करते हैं ॥२७॥

निकटे तव गन्तुमुत्कचित्ता न समर्था भवते शरीरखेदात्।
यदि वीक्ष्य समुत्पतत्पतत्रीनभिवांछी कुरुते तदीयजन्म ॥२८

वह तुम्हारे निकट जाने के लिए उत्कण्ठिता होजाती है। परन्तु शरीर में इस प्रकार बलवान खेद आजाता है जिससे असमर्थी होने लगती है। उड़ने वाले पक्षियों को देखकर उनके जन्म के लिए इच्छा करती है ॥२८॥

कथितुं विरहाग्नितापमस्याः कथमस्मत्सदृशो नरः समर्थः।
निहितो लभतेऽतिदाहकत्वं हृदये विन्दुरमन्दचन्दनस्य ॥२९

उसके विरहाग्निताप को कहने के लिए हमारे बराबर मनुष्य असमर्थ है। हृदय में चन्दन बिन्दु का प्रलेप अग्नि की भाँति होजाता है ॥२९॥

आगतो मधुपुरात् सखि कृष्णस्तं गृहाण समद्भुत नेत्रम्।
तत्र याति न यथा कपटीत्युन्मत्तवाग्विलपते स्थिरचित्ता ॥३०

हे सखि! श्रीकृष्ण मथुरा नगरी से आगये हैं, अद्भुत नयन उनको पकड़ कर रख लेओ। वे कपटी फिर वहाँ नहीं चले जावें इस प्रकार अस्थिरचित्त से उन्मत्ता होकर विलाप करती है ॥३०॥

कोकिलाकलकलं च निशम्य वज्रपात इव शंकितचित्ता।
रक्षरक्ष करुणाम्बुनिधे मां भाषिणी भवति भीतिस चेता ॥३१

वह कोकिलाओं के कलरव का श्रवण कर वज्रपात की शंका से भयभीत होकर "हे करुणासमुद्र! मुझे रक्षा कीजिए रक्षा कीजिए इस प्रकार बोलने लगती है। ३१॥

रोगनिर्जिततरां वृषभानोर्नन्दिनीं हरि चिकित्सक चेत्त्वम्।
जीवयिष्यति निजाधरपानेनौषधेन न कृतघ्नवरस्त्वम् ॥३२

हे हरिवैद्य! यदि तुम निजाधरपान रूप औषधि से अत्यन्त रोगिणी श्रीराधिका को जीविता नहीं करते हो तो तुम्हारी कृतघ्नता होगी ॥३२॥

अस्याः प्राणान्नहि परिजना साधनौघैः समर्थों
नाहं वृन्दावनविटपिनो रक्षितुं किन्तु कृष्ण ।
आशाया त्वन्मिलन सरसा संगिनी सा भवन्ती
यानोद्युक्तां नवति सहसा प्राणजन्तून् वियोगे ॥३३

उसके प्राणों को परिजनसमूह, हम वृन्दावन के वृक्ष सब चेष्टा-विधियों से भी रखाने में समर्थ नहीं हैं। केवल हे कृष्ण ! आप ही उसके चिकित्सक हो सकते हैं। तुम्हारे मिलन में जो आशा है वह ही उसकी सरस संगिनी रूपा होकर गमनोद्यत प्राणजीवों का धारण कराती है ॥३३॥

श्रीकालिन्दीपुलिनविपिने फुल्लवृक्षैः सुशोभे
नीपोत्संगे जलधररुचिं वादयन्तं च वंशीम् ।
विद्युत्पीताम्बरकटितटं पुष्टवक्षःस्थलाभं
कृष्णं भंगीत्रय परिचितं हा पुनः किं विलोके ॥३४

फुल्लायमान वृक्षों से सुशोभित श्रीयमुनापुलिन के कदम्वसंसगित विपिन में जलधररुचि वंशीवादक, कटितट में विद्युत की भाँति पीताम्वरधारी, पुष्टवक्ष, त्रिभंगी से परिचित श्रीकृष्ण को पुनः क्या देखूँगी ? ॥३४॥

वकुलद्रुमचारुमंदिरे भ्रमरिंदिंदिरसुन्दरोदरे ।
द्विजराजमरीचिवन्धुरां किमु नेष्यामि निशां मुरारिणा ॥३५

वकुलवृक्षों से मनोहर, भ्रमरों से सुन्दर उस मन्दिर में क्या मैं मुरारी के साथ चन्द्रकान्ति से मनोहररात्रि का यापन करूँगी ॥३५

एवं विलपती वाला विरहेण विलोडिता ।
वैवश्यं याति लोकस्य द्रष्टुः खेदं समुद्वहन् ॥३६

इस प्रकार वह वाला विरह से पीड़िता होकर देखने वाले के हृदय में खेद उत्पन्न करती हुई विवश होजाती है ॥३६॥

एवमेव ललिता ललितांगी सन्दिदेश हरये हृदये यतः ।

स्थापितं बुधवरेण शुकेन सर्वमेव तदहो मननेन ॥३७

इस प्रकार ललितांगी ललिता ने श्रीहरि के लिए जो संदेश दिया है उसका हृदय में धारण कर उस शुक ने सबका मनन किया ॥३७॥

अथ जगाम पुनः प्रणिपत्यतां शुकवरो वृषभानुसुतां मुहुः ।

सहचरीगणसादरवीक्षितो व्रजपुरन्दरमन्दिरपद्धतिम् ॥३८

अनन्तर शुकराज वृषभानुनन्दिनी के लिए बार-बार प्रणाम कर सहचरियों के द्वारा आदर के साथ दर्शन प्राप्त हो व्रजराज मन्दिर मार्ग में चलने लगा ॥३८॥

भवनमध्यगतश्च यशोदया मुहुरयं मधुरैरितसत्कृतः ।

जिगमिषुर्नगरीमवदत्तदा स्वजननीं कलकोमलया गिरा ॥३९

वहाँ महल के भीतर जाकर यशोदा के द्वारा बार-बार मधुर-वचनों से सम्मानित हुआ तथा मधुपुरी जाने के लिए इच्छुक होकर माता यशोदा के लिए मनोहर कोमल वचन से कहने लगा ॥३९॥

श्रावयितुं व्रजवार्तामानयितुं गोकुले सुतं जननि !

आश्वासयितुं बन्धून्नगरीं तां गन्तुमिच्छामि ॥४०

हे माता ! श्रीहरि को व्रज की वार्तायें सुनाने के लिए तथा गोकुल में उनको लाने के लिए और बन्धुओं को आश्वासित कराने के लिए मथुरापुरी को जाना चाहता हूँ ॥४०॥

इति निशम्य वचो जननी हरेस्तमवदच्छुकवंशविभूषणम् ।

यदि यियासति पत्तनमुत्तमं शृणु तदा मम सुन्दरभाषितम् ॥४१

श्रीहरिमाता यशोदा इस प्रकार सुनकर उस शुकवंशविभूषण दूतराज को कहने लगीं । यदि तुम उत्तम उस नगरी के लिए जाना चाहते हो तो मेरे सुन्दर वचनों का श्रवण करो ॥४१

कृशतनूः नयनद्वय-निःसरत्सलिलसिंचित गंडयुगा तव ।

वदनमेव दिदृक्षति कातरा विधुरिता जननी तव गोकुले ॥४२

तुम्हारी कृशांगी, नयनों से निरन्तर अश्रु बहाने वाली कातर से व्याकुला माता तुम्हारे इस गोकुल में वदनचन्द्र को देखना चाहती है ॥४२॥

सकृदलंकृतपत्तनपद्धते समुचिता भवता निजजन्मभूः ।
वत विलोकितुमिन्दु समानना कुसुमितद्रुम काननसंयुता ॥४३
पुनरपि व्रजवीथिषु वालकैः कलितकेलिमहं निजनन्दनम् ।
परिविलोक्य किमाप्स्य अलौकिकं नयननिर्मितसार्थकताभरम् ॥४४

तुम मथुरापुरी में विराजमान हो । वह तुम्हारी जन्मभूमि है, उसमें रहना बहुत सुन्दर है । परन्तु एक बार ब्रज में तो आओ, मैं कुसुमित द्रुमों से सुशोभित ब्रजमार्ग में बालकों के साथ क्रीड़ापरायण तुम्हारे चन्द्रवदन को देखना चाहती हूँ ॥४३।४४॥

इति निशम्य हरेर्जननीमुखा त्सुवचनं च तथा व्रजवासिनाम् ।
हरिवयस्यगणोक्तिसुखाप्तये सहचरान्तिकमागतवान् पुनः ४५

इस प्रकार वह शुक श्रीहरि की माता यशोदा के मुख से तथा ब्रजवासियों के मनोहर वचनों को सुनकर पुनः श्रीहरि के वयस्यों की मधुर वचनोक्ति का सुख आस्वादनार्थ सखाओं के पास पहुँचा ॥४५॥

सुवल नाम मुखाः शुकमूचिरे किमधिकं कथनीयमहो सखे ।
भवति गोष्टसमागमनं यथा पुरपतेश्च तथैव विधीयताम् ॥४६

उस समय सुवल प्रमुख सखा शुक के लिए कहने लगे कि हे सखा ! हम अधिक क्या कहें । जिससे द्वारकानाथ का ब्रज में आगमन हो ऐसा कीजिए ॥४६॥

कश्चित्प्राहाश्लेषणं कीर वाच्यं गोविन्दाय व्याकुलो वक्ति चान्यः ।
पृष्टव्यस्ते माधवो गोकुलान्तः किंवा थास्यत्यल्पकालेन नूनम् ॥४७

कोई उनके लिये आलिंगन कहने लगा, किसी ने व्याकुल होकर

कहा हे कीर ! गोविन्द के लिये बोलना और उसे पूछना कि क्या एक ही बार अल्प समय के लिये गोकुल में नहीं आवेगा ? ।।४७।।

आज्ञां प्राप्य समस्तगोकुलपुरस्थाना मयं बुद्धिमान्
कृष्णप्रेमचमत्कृतिं च कलयन्मत्तेन्द्रियाधीश्वरः ।
गोष्ठावाससलालसोऽपि विरहं नाशं नयन् श्रीपतेः
प्रस्थानं नगरंचकार विलसत्पक्षद्वयोद्धूननः ॥४८

वह बुद्धिमान शुक समस्त गोकुलवासियों की आज्ञा पाकर तथा कृष्णप्रेम की चमत्कार परिपाटी का दर्शन कर मत्तहृदय हो गोष्ठवास की लालसा रखते हुए श्रीहरि के विरह दूर कराने के लिये द्वारकानगर को चलने लगा। जाने के समय उसके दोनों पंख कांपने लगे ।।४८।।

इत्थं प्रेमरसावगाहनसुखो गोष्ठौकसां निर्मलां
प्रीतिं संस्मरनम्बुजाक्षनिकटे गन्तुं सतृष्णः शुकः ।
मार्गातिक्रमणेन यादवपुरीं कार्तस्वरालंकृतां
शोभायाः प्रतिमूर्तिमद्भुविगतां दूराद्ददर्शाद्भुताम् ॥४९

इस प्रकार वह प्रेमरस में डूबकर गोष्ठवासियों के निर्मल प्रेम का स्मरण करता करता श्रीहरि के निकट जाने के लिये अत्यन्त उत्कण्ठित होगया तथा वहाँ से द्वारकापुरी के लिये चलने लगा उसने मार्ग का अतिक्रमण करते हुए दूर से सुवर्णालंकृत यदुपुरी का अवलोकन किया। वह नगरी अत्यन्त अद्भुत तथा मानो पृथिवी में शोभा की प्रतिमूर्ति रूप थी । ४९।।

कालोयातो बहुपरिमितो गोष्ठयाने शुकस्य
नायातः किं तदपि तदिमं कारणं नैव जाने ।
इत्थं चिन्तार्णव परिपतन्मानसोऽयं यदाभूत्
तस्यासव्यावयवममलं व्यस्फुरच्छीघ्रमेव ॥५०

"अहो ! शुक को ब्रज में गये बहुत दिवस बीत गये । वह अब तक क्यों नहीं आरहा है ?" इस प्रकार चिन्तासागर में मन को डुबा कर श्रीहरि वहाँ विराजमान है। उसी समय उनके दाहिने अङ्ग-प्रत्यंग स्फुरित होने लगे ॥५०॥

कुशस्थलीतीरगतः शुकेन्द्रो विन्यस्तदृष्टिं पथि वासुदेवम् ।
उत्कंठितं विश्लथकेशवंधं ददर्श तत्रैव गृहे वसन्तम् ॥५१

कुशस्थली के तट पर उपस्थित होकर उस शुकराज ने दूर से नेत्र देकर वासुदेव को देखा । वे उसी पूर्वोक्त गृह में बैठे हुये थे तथा अत्यन्त उत्कण्ठित थे । उनका केशबन्धन खुल गया था तथा केशकलाप इधर-उधर बिखरा हुआ था ॥५१॥

कृष्णोप्येनं दूरतोलोकयित्वा फुल्लाङ्गोऽभूदुच्छलच्चित्तहर्षः ।
एह्येहीत्युक्त्वा स्वहस्ताम्बुजान्ते धृत्वा हस्तेनैव कीरं निनाय ॥५२

श्रीकृष्ण भी शुकराज को दूर से देखकर प्रफुल्लांग होगये तथा उनका चित्त उच्छलित होकर हर्षपूर्ण होगया । आओ आओ इस प्रकार कहते हुए अपने हाथ से उसे लाकर हस्तकमल में रखने लगे ॥५२॥

तं चाश्लिष्यन् वक्षसा द्वारकेशो वारम्वारं लालयंश्चुम्बनेन ।
वार्ता सर्वा श्रोतुकामस्तदास्याद्गोष्ठस्थानां बन्धुराङ्गो वदत्तम्॥५३

उसको वक्ष से लगाकर आप बार-बार लालित करते हुए चुम्बन करने लगे । मधुरांग द्वारकेश उसके मुख से गोष्ठवासियों की समस्त वार्त्ता सुनने के लिए इच्छुक होकर बोले ॥५३॥

एतावन्तो वासराः कुत्र नीतास्ते स्वस्ति स्तात्सर्वदा हे दयालो
भूयो भूयो व्याकुलानां दशा मे श्रोत्रो पात्तालिंगितान्तां करोतु ॥५४

तुम अब तक कहाँ रहे । तुम्हारे इतने दिवस कहाँ बीते ? तुम्हारा मङ्गल है ? हे दयालु शुक ! बार बार व्याकुलित व्रज-वासियों की दशा को सुनना चाहता हूँ । तुम शीघ्र हमारे कर्ण-

गत कराओ ॥५४॥

काचित्कान्ता लोकिता गोकुले मे मित्रोक्तं चे दुच्यतां तत्तयायत् ।

विच्छेदेना क्रान्ततन्व्या दशाते वक्तव्या दृष्टा त्वया यादृशी सा ॥५५

तुमने उस गोकुल में किसी कान्ता को देखा है ? हे मित्र ! उसने यदि कुछ कहा हो तो शीघ्र सुनाओ। विच्छेद से आक्रान्ता उनकी जो दशायें तुमने देखी उन दशाओं का शीघ्र वर्णन करो ॥५५॥

तत्सख्यः किं तत्समाः सत्कृतिं ते चक्रुर्वाक्यै सादरं सुन्दरांग ।

किं मामूचुः सेर्ष्यवक्रत्व वाक्यैस्तत्सर्वं त्वं ब्रूह्युदन्तं क्रमेण ॥५६

हे सुन्दारांग ! उन सखियों ने आदर वाक्यों से तुम्हारा उचित सत्कार किया है ? अथवा उन्होंने ईर्ष्या-वक्रवचनों से हमारे लिये जो कुछ कहा, उनका क्रम से वर्णन करो ॥५६ ।

श्रीदामाद्या मद्वयस्याः कथंचित् किं कुर्वन्ति प्राण संधारणानि ।

मत्सन्देशैः क्षीणशारीरताया प्राप्ता आनन्दं सखे किं त्वदुक्तैः ॥५७

श्रीदामादि प्रियवयस्यागण किसी प्रकार प्राणों को धारण कर रखे हैं किंवा (अथवा) नहीं ? उनका शरीर क्षीण होगया होगा। हे सखा ! तुम्हारे वचनों से उन्हें आनन्द प्राप्त हुआ किम्वा नहीं ? ॥५७॥

या पूर्वं मे पोषणं संचकार प्रीत्या वात्सल्यस्य मूर्ती रसस्य ।

सा माता मे दुःखिता लोकिता किं विश्लेषेणव्याकुलांगीयशोदा ॥५८

जिसने पहले मेरा प्रीति के साथ पोषण किया है उस वत्सलरस की मूर्ति माता यशोदा को तुमने क्या दुःखिता देखी है ? वह तो मेरे वियोग से व्याकुलांगी होगयी होगी ।५८॥

माहेयीणां वत्सकानां च वार्ता वक्तव्या ते मत्पितुः कीदृशी सा ।

इत्युक्त्वा अश्रुस्नापितास्यो बभूव स्मृत्वा प्रीतिं वासिनां गोष्ठमध्ये॥५६

मेरे पिता के दुग्धपायी गो-वत्सों की वार्त्ता को तुम अवश्य कहो,

इस प्रकार बोलते हुए आप अश्रुधाराओं से धौतवदन होगये। आप गोष्ठवासियों की प्रीति का स्मरण करने लगे ॥५६॥

आम्रेडितो द्वारवतीश्वरेण पतत्रिमुख्यो व्रजवासिनां सः।
दशां जगादोत्कलिकाकुलाय कृष्णाय कीरः प्रणमन्मुहुस्तम् ॥६०

इस प्रकार द्वारकानाथ के द्वारा बार-बार बोलने के लिये प्रेरित होकर वह पक्षिराज शुक उत्कण्ठा से व्याकुलायमान श्रीकृष्ण के लिये प्रणाम कर व्रजवासियों की दशा को कहने लगा ॥६०॥

श्रीराधिकातापनिवारणाय तदीयसख्याहृत सर्वपद्माः।
बभूवुरिंदिंदिरनिंदिताश्च पद्माकरास्तत्र वृथाभिधेयाः ॥६१

हे द्वारकानाथ सुनिये ! श्रीराधिका के तापों के निवारणार्थ उनके सखियों के द्वारा समस्त कमल लाये गये हैं। उस से भ्रमरों का आदर अब रहा नहीं है तथा पद्माकर सरोवर का नाम वृथा होगया है। तात्पर्य जब सरोवर में कमल सब शून्य होगये तब वह सरोवर पद्माकर रूप से किस प्रकार सिद्ध हो सकता है ॥६१

तत्तापशान्त्यै तरुपल्लवानि भग्नानि ताभिर्व्यजनोचितानि।
तस्माद्वियोगार्तिविशीर्णदेहा इव प्रतीयंति तदीय वृक्षाः ॥६२

राधिका के तापों की शान्ति के लिए तथा व्यजन कराने के लिए सखियों के द्वारा वृक्षों के समस्त नवीन पल्लव तोड़ कर लाये गये। अतः वृक्ष सब पत्र शून्य होकर मानो हरि आपके वियोग से शीर्ण शरीर होगये हैं॥६२॥

गोपांगनासंहतिनेत्रजन्मया समन्ततः कज्जलनीरधारया।
कलिन्दशैलेन्द्रसुताहि संगता दधाति कृष्णेति च नामसार्थताम्॥६३

गोपांगनाओं के नेत्रों से उत्पन्न कज्वलमिश्रित जलधाराओं की संगत पाकर यमुना अत्यन्त बढ़ गयी। उसका कृष्णा यह नाम अब सार्थक हुआ ॥६४॥

तरङ्गसंघूर्णित चंचलभ्रू क्रोधेन संशुष्क सरोज नेत्रा।

यमस्वसा तस्य सहोदरा त्वाद् यमायते त्वद्विरहे जनानाम् ।।६४
यम की भगिनी यमुना तरंगों के घर्णनी से मानो चंचल क्रोधित भ्रू वाली होगयी हैं। उसके कमलरूप नेत्र सूख गये हैं। तुम्हारे वियोग से व्याकुल मनुष्यों के लिये वह सहोदरा अर्थात् सहायकारिणी होगयी है ।।६४।।

पालाल शष्पाशनके निरादरा त्यक्तांङ्ग संस्पन्दनया न साधना ।
गोमंडली त्वद्विरहेण चित्रिता सच्चित्रकारेण विभाति गोपते ।।६५
हे गोपालक ! आज तुम्हारे वियोग से गोमण्डली जिसका तुमने आदरपूर्वक शस्यादि प्रदान के द्वारा पालन किया था वह आज उत्तम चित्रकारों के चित्रण की भाँति अर्थात् स्तब्धांगी होकर विराजमान है। उसने आहार-विहार छोड़ दिये हैं ।।६५।।

वृन्दावनस्या विहगाः सहंतो दुःखं शरीरोपरि कालजन्यम् ।
त्वचंचलत्वं परिहृत्य यत्नात् प्राप्त्यैतपस्ते कलयन्ति मूकाः ॥६६
वृन्दावन के पक्षियाँ विरह से दुःखित शरीर होकर अपनी चंचलता को छोड़ तुम्हारी प्राप्ति के लिए मानो तपस्या कर रहे हैं। वे सब मौन होकर नेत्र मूँद तुम्हारे ध्यान में मग्न हैं ।।६६।।

त्वदीयपादाम्वुज चिन्हहीना न शोभते गोष्ठमही मुकुन्दः ।
असंस्कृतांगी रमणी यथैव वियोगिनी त्यक्त मणीन्द्रभूषा ॥६७
हे मुकुन्द ! आज गोष्ठभूमी तुम्हारे पदचिन्हों से रहिता होकर शोभायमान नहीं होरही है । जैसी असंस्कृतांगी, वियोगिनी रमणी मणिभूषाओं को छोड़ कर शोभा प्राप्त नहीं होती है ठीक उसी प्रकार ब्रजभूमी की दशा होगयी है ।।६७॥

वियोगवैवर्ण्यवलेन गोष्ठं क्षीराम्वुधेः प्रापसमानभावम् ।
निवासयोग्यं न तथापि जातं नारायणाश्चर्यमिदं महन्मे ॥६८
आज गोष्ठ वियोग से वैवर्ण्य होकर अर्थात् तेजहीन पीला होकर क्षीरसागर के साथ तुलनीय होगया है। वह तो भी नारा-

यण के निवास स्थान रूप नहीं रहा है। अर्थात् क्षीरसमुद्र तो नारायण का निवासस्थल है। आज व्रज उनसे भी रहित होरहा है। तात्पर्य्य तुम्हारे विरह से व्रज अशोभित होगया है ॥६८॥

भूमिर्न चास्ति भुवने सदृशीव्रजस्य
भक्ता न सन्ति तव वल्लभसाम्यभाजः।
त्यक्ताः कथं तदपि ते भवता दयालो
चित्तं मम भ्रमति मोहित मत्र कृष्ण ।।६६

भुवन में व्रज की भाँति अन्य कोई भूमी नहीं है तथा तुम्हारे गोपों के समान अन्य कोई भक्त नहीं है। तुम तो परमदयाल हो। हे कृष्ण तुमने उन्हें कैसे छोड़ दिया है, इसका विचार करने पर मेरा चित्त मुग्ध होकर घूम जाता है ॥६६॥

मात्रा तवोक्तं मम यानकाले चाशीशितं ते जनकेन कृष्ण।
यथा कथंचिद् धृतजीविता ते दिदृक्षते त्वद्वदनं च माता ॥७०

हे कृष्ण! मेरे आने के समय तुम्हारी माता ने तथा पिता ने भी शत शत आशीष देकर कहा है। तुम्हारे वियोग से व्याकुल होकर दोनों वे किसी प्रकार जीवन धारण करे हुए हैं। तुम्हारी माता तो तुम्हारे बदन देखने के लिये निरन्तर व्याकुल हो रही है ॥७०॥

कान्तादशां त्वं शृणु सावधानः सरोजशय्यापि यदंगसंगात्।
क्षणेन दाहोदयतां समेति बिनिर्मिता यत्नवतीभिरीश ॥७१

हे नाथ! अब आप सावधान होकर कान्ता राधिका की दशा को श्रवण कीजिये। जिसके अङ्गसंसर्ग से क्षणभर में कमल-शय्या उत्तप्त होजाती है। उस समय सखियाँ अन्य शय्या बना कर उसमें रखती है। वह भी क्षणकाल में उत्तप्त होजाती है जिससे सखियाँ निराशा होजाती हैं ॥७१॥

पांचालिका कांचन निर्मिता किं यष्टिः किमेषा रजतेनक्लृप्ता।

किमिन्दुलेखा पतिता पृथिव्यां दधाति या भ्रान्तिमहो जनानाम् ॥
क्या यह सुवर्णनिर्मित एक प्रतिमा है ? अथवा यह एक रौप्य से युक्ता यष्टि है ? किंवा पृथिवी में चन्द्ररेखा पड़ी हुई है ? इस प्रकार देखने वालों को भ्रम उत्पन्न कराती है ॥७२॥

क्षीणं त्वद्विरहेण कोमलतनुस्तस्या गता क्षीणतां
निद्रा स्वान्तमहो तदीयहृदयं क्षीणं वचः कल्पनम् ।
उत्साहोऽपि गतो विदूर महहो क्षीणं सखे जीवितं
किं त्वाशा मिलनस्य ते प्रतिदिनं शाखद्वरीवर्द्धते ॥७३

तुम्हारे विरह में उसका कोमल शरीर क्षीण होगया है । उसमें फिर निन्द्रा ने उसके हृदय को अत्यन्त क्षीण किया है । उसका वचन भी क्षीण होगया है । उत्साह तो क्षीण होकर दूर में भाग गया है । जीवन भी क्षीण प्राय हो रहा है । परन्तु हे सखा ! तुम्हारे मिलन की आशा प्रतिदिन बढ़ती जाती है ॥७३॥

वर्षा लोचनयोः शरच्च वदने वैवर्ण्यं शुभ्रं गता
हेमन्तः पुलकोद्गमे शिशिरतावुद्धौ तथा चन्दने ।
आलीभिस्तनु चर्चिते सुरभिता श्वासे तथा ग्रीष्मता
इत्थं षड्तुभिस्त्वदीयविरहे राधावपुः सेव्यते ॥७४

आज तुम्हारे विरह से दुःखिता श्रीराधिका के अङ्गों में छै ऋतु एक ही साथ आयकर उनकी सेवा कर रही हैं। दोनों नेत्रों में वर्षा, वदन में शरत्, पुलकोद्गम में हेमन्त, बुद्धि में शिशिरता, सखियों के द्वारा श्रीअङ्ग में लिप्त चन्दन में संरभिता (वसन्त) श्वास में ग्रीष्म, ये छै ऋतु उन स्थानों में मौजूद हैं ॥७४॥

तत्वं त्वं श्रृणु किं वहूक्तिभिरहो वृन्दाटवी मण्डले
चेन्नो यास्यसि शीघ्रमेव न पुनर्गोष्ठौकसां सङ्गतिः ।
प्राणाः क्षीणतरा वियोगविधुरा तेषां यतः सर्वतो
देह क्षीणतरे भ्रमन्ति गमने सन्नद्धता सत्कृताः ॥७५

हे नाथ ! यथार्थ सुनिये । अधिक नहीं कहा जाता है । आप यदि वृन्दावन मण्डल में नहीं आते हैं तब अति शीघ्र ही व्रजवासियों के साथ तुम्हारी संगति नहीं होने वाली है । अर्थात् तुम्हारे विरह से उनके प्राणवायु शीघ्र ही निकल जावेंगे । क्योंकि वे सब प्राण अत्यन्त क्षीण होकर उनके क्षीण शरीर में घूम रहे हैं अतः आप शीघ्र जाकर उन प्राणों को सुदृढ़ कीजिये ॥७५॥

एवं गोष्ठनिवासिनां हरिवयस्यानां च कृष्णाय सः
संदेशान् सुपृथक् पृथक् शुकवरः प्रोवाच विद्वन्मणिः ।
कृष्णं प्रापयितुं व्रजे व्रजजनावस्थां मुदा वीक्षितुं
पूर्वं दृष्टतदीय प्रेम विलसत्स्मृत्या सहर्षान्तरः ॥७६

इस प्रकार वह विद्वान् शुकराज हरिप्रिय गोष्ठवासियों के संदेशों को श्रीहरि के लिये पृथक-पृथक सुनाकर फिर वहाँ श्रीकृष्ण को मिलाने के लिये तथा व्रजजनों की अवस्था को देखने के लिये उत्सुक हृदय होगया, क्योंकि पहले उसने जो देखा है उसका स्मरण होने लगा ॥७६॥

श्रीगोविन्द मुनीन्द्रवन्दितपदद्वन्द्वारविन्दासव-
प्रोन्मत्ताखिलचित्तवृत्तिसुखदे सारङ्ग संगोदिते ।
काव्ये नन्दकिशोरचन्द्ररचिते श्रीकीरदूताभिधे
सर्गोवर्णित कृष्णकीरमिलनः सर्गोभवत् सप्तमः ॥७७

श्रीगोविन्द के मुनिगणवन्दित चरणकमल युगल के मकरन्द पानोन्मत्त समस्त रसिक जनों की चित्तवृत्ति में सुखदायी, कौतुकपूर्ण, नन्दकिशोरचन्द्र के द्वारा विरचित इस शुकदूत नामक काव्य के श्रीकृष्ण के साथ शुक का मिलन प्रसंग वर्णनमय सप्तमसर्ग सम्पूर्ण हुआ ॥७७॥

इति श्रीगीतगोविन्दकर्तृ जगद्गुरु श्रीजयदेवमहाप्रभु वंशोद्भव श्रीनन्दकिशोरगोस्वामि कृते श्रीकीरदूते श्रीकृष्णकीरमिलनोनाम सप्तमः सर्गः ।

—०—

अष्टमः सर्गः

अथ शुकमुखनिःसृतं निशम्य
वचनभरं स्मृतसर्वगोष्ठलीलः ।
ससलिलनयनोऽब्रवीन्मुकुन्दः
शुककुलभूषण माधियुक्तचेता ॥१

अनन्तर शुकमुख निर्गत वचनों का श्रवण कर श्रीमुकुन्द अश्रु-नेत्र होगये तथा उनकी गोष्ठलीलाएं स्मरण होने लगीं। विरह-पीड़ित आपने शुक कुलभूषण उस शुक के लिए कहा ॥१॥

वद शुक करणीयमाशु किं मे व्रजजनशान्तिरहो द्रुतं यथा स्यात् ।
व्रजमनुगमने कृतोद्यमोऽपि किमिति न गन्तुमहो सखे समर्थः ॥२

हे शुक ! कहो, मैं क्या करूँ। जिससे मेरे व्रजजनों की शान्ति हो उसका उपाय करो। हे सखे ! मैं व्रज में जाने के लिये उद्यत होता हूँ परन्तु असमर्थ होजाता हूँ ॥२॥

तव गमनमृते न गोष्ठदुःखं कथमपि यास्यति नष्टतो मुरारे !
नहि जलधरवृष्टिमन्तरेण कलभकुलानि भजन्ति तापशान्तिम् ॥३

अब शुक कहने लगा, हे मुरारि ! तुम्हारे बिना गमन से गोष्ठ-वासियों का दुःख अन्य किसी प्रकार से दूर नहीं हो सकता है। जलधर वृष्टि के बिना हस्तिशावकगण तापशान्ति को धारण कर नहीं सकते हैं ॥३॥

आनेष्येऽहं गोकुले कृष्णचन्द्रं वारम्वारं मत्कृता या प्रतिज्ञा ।
व्यर्था न स्यान्मे त्वदीयस्य यद्वत् कार्यंतद्वत्कृत्यमत्यन्तबुद्धे ॥४

मैं गोकुल में कृष्णचन्द्र को लाऊँगा। इस प्रकार वार वार जो प्रतिज्ञा करके कह आया हूँ वह प्रतिज्ञा जिस प्रकार व्यर्थ नहीं हो ऐसा कीजिए। हे अत्यन्त बुद्धिवाले ! जैसे समझें ऐसा कीजिए ॥४॥

एतस्मिन्नेव समये समुत्कंठितचेतसा
कृष्णं द्रष्टुं च तत्रैव जगाम रसिकोद्धवः ॥५

इस अवसर में रसिक उद्धवजी उत्कण्ठित चित्त होकर कृष्ण के दर्शनार्थ वहाँ आये ।५॥

सत्कृतो यदुवंश्येन कृत्वा तत्पादयो र्नतिम्
बुद्धिमत्प्रवरः सोऽयं कृष्णपार्श्वे स्थितोऽभवत् ॥६

उन्होंने श्रीकृष्ण के चरणों में नमस्कार किया, श्रीहरि भी उनका सत्कार करने लगे महा बुद्धिमान तथा वे श्रीकृष्ण के पार्श्व में विराजमान हुए ॥६॥

उवाच कृष्णं कविसत्कृतोयं दृष्ट्वा शुकं तत्करसन्निविष्टम् ।
विचार्थ हेतुं कुशलं च पृष्ट्वा तल्लक्षणैरुद्धव नामधेयः ॥७

कविजनों के वन्दनीय वे उद्धव श्रीकृष्ण के हस्तों में विराजमान उस शुक को देखकर तथा लक्षणों से कुशल का कारण जानकर उनके लिए पूछने लगे ॥७॥

कस्माद्देशादागतोऽयं शुकेन्द्र दूतः किंवा कस्यचिन्मिष्टवाक्यः ।
हस्तांभोजे सन्निविष्टस्तवासौ पुण्यप्राप्ये पालितो भूत्त्वयाकिम् ॥८

यह शुकराज किस देश से आया हुआ है और यह किसका दूत है ? इसका वचन बहुत रमणीय है तथा वह बड़ा पुण्यवान है । तुम्हारे हस्तकमल में विराजमान होकर लालित हो रहा है । क्या तुमने इसको पाला है ॥८॥

एवं पृष्टो मित्रवर्योद्धवेन ज्ञात्वा कृष्णस्तं रहस्याधिकरम् ।
वारं वारं वाष्पसंरुद्ध कंठः सर्वं तस्मै वर्णयामास वृत्तम् ॥९

मित्रगोष्ठ उद्धवजी के द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर श्रीकृष्ण उनको इस रहस्य में अधिकारी जानकर वार-वार गद्गद् कंठ हो उनको समस्त वर्णन करने लगे ॥९॥

श्रुत्वा मुखाद् यदुपतेर्व्रजलोकदैन्यं विच्छेदवीजमनुभूतचरं तदानीं

तद्वर्णनेप्सितमतिः समयं निरीक्ष्योवाचानुकूल-
मभिवांछितचारुवाक्यम् ॥१०

यदुनाथ के मुख से वियोगवीज रूप व्रजवासियों का दैन्य श्रवण कर जिसका पहले उन्होंने अनुभव किया है उसका वर्णन करने के लिए प्रवृत्त हुए। आप अनुकूल समय देखकर मनोहर वाक्यों से बोले ॥१०॥

दृष्टः स्वप्नोद्यरात्रौ मे तद्वर्णयितुमागतः।
तवाज्ञया गतो गोष्ठमपश्य स्तादृशीं दशाम् ॥११

हे यदुनाथ! आज रात्रि में मैंने एक स्वप्न देखा था उसका वर्णन करने के लिए आपके पास आया हूँ। तुम्हारी आज्ञा से मैं गोष्ठ में गया तथा गोष्ठवासियों की इस प्रकार दशा को देखा ॥११॥

यदवधिविरहार्तिर्लोकिता गोकुलस्य तव वदननिदेशेनैव गोष्ठंगतेन।
तदवधि कथनेच्छा वर्तते मानसे मे रिपु समर समुद्यद्बाहु-
दंडायनोक्तम् ॥१२

जब से तुम्हारे वदन निर्देश प्राप्त हो गोष्ठ में जायकर गोकुल की विरहार्ति को देखा है तब से मेरे मानस में बोलने की इच्छा रही। अब प्रकाश्य करके कह रहा हूँ ॥१२॥

प्रणयभरविलासं गोपसीमन्तिनीनां
न भवति वहुवक्त्रैः कोपिवक्तुं समर्थः।
विधिकृतजगदंडेनेक्षितं क्वापितादृक्
भजति च समतां यस्तस्य रागानुगस्य ॥१३

गोपरमणियों के प्रणयपूर्ण विलासचेष्टा का कोई भी अनेक मुखों से वर्णन करने में समर्थ नहीं हो सकता है। विधातारचित जगतों में उस रागानुगाभाव का समकक्ष कोई प्राप्त नहीं कर सकता है ॥१३॥

स्वीयां सखे कर्तु मृतां प्रतिज्ञां ममापि रामस्य व्रजंगतस्य ।
यदीच्छसे निर्जितशत्रुसंघः तद्वाप्रयाणं कुरु गोकुलान्ते ॥१४

हे सखा ! आप अपनी प्रतिज्ञा को सत्य पालन करने के लिए तथा ब्रज में ही आने वाले हमारी और बलराम जी की प्रतिज्ञा को सत्य कराने के लिये यदि चाहते हैं तब गोकुल के लिये गमन कीजिए क्योंकि शत्रु सब तो पराजित होगये हैं, अब कोई शत्रुओं का भय रहा नहीं है ॥१४॥

निशम्य वाक्यं प्रियमुद्धवस्य प्रसन्नचित्तो हरिरावभासे ।
वयस्य सर्वं मनसोनुकूलं त्वयोक्तमेतत्प्रमदाय जातम् ॥१५

इस प्रकार प्रिय उद्धव के वाक्यों को सुनकर श्रीहरि प्रसन्न चित्त से कहने लगे । तुमने सखोचित अनुकूल यह कहा है । जिससे मैं अत्यन्त प्रसन्न होगया हूँ ॥१५॥

किन्त्वत्र चिन्त्यं मयि गोकुलंगते द्वारावती चेद्रिपु मंडलावृता ।
भयाकुला स्याच्छृणुहु का गतिस्ततः सुहृत्पुरी रक्षणलक्षणं वद ॥१६

परन्तु यह विचारने की बात है । मेरे गोकुल गमन से द्वारकापुरी यदि शत्रुमण्डल से आक्रान्ता होकर भयभीत होजावेगी तो उस समय क्या गती होगी इसका विचार करो । पुरी संरक्षण के लिये कोई सुदृढ़ व्यवस्था होनी चाहिए ॥१६॥

बले बलोन्नद्धभुजोग्र दंडे समर्प्य भारं गतपूर्व घोषे ।
निश्चिन्तचित्तो व्रजराजगेहे तेषां निवासं कुरु सौख्यदाता ॥१७

उस समय उद्धव ने कहा—प्रचण्ड, वलिष्ट भुजा वाले बलदेव के लिए द्वारकारक्षण भार अर्पण कर ब्रज में चलिये । क्योंकि आप निश्चिन्त हृदय होकर उनके गृह में निवास कर सुख दे सकते हैं ॥१७॥

आकर्ण्य तत्तस्य मनोज्ञवाक्यं प्रशस्य समंत्र्य च तेन सार्द्धम् ।
व्रजप्रयाणोद्यतचित्तभृङ्गः सहोद्धवेनाग्रजवासमाप ॥१८

उद्धव जी के इस प्रकार मनोहर वचन को सुनकर श्रीहरि अत्यन्त प्रसन्नता के साथ उनकी प्रशंसा करते हुए उनके साथ मन्त्रणा करने लगे। आपका चित्त भ्रमर व्रज में जाने के लिए अत्यन्त उत्सुक होगया आप उद्धवजी के साथ बलराम जी के घर पर पहुँचे ॥१८॥

दृष्ट्वाबलं तत्र विराजमानं ननाम तस्यांघ्रिसरोरुहौ सः।
निजानुजं नीतिविदां वरिष्ठं रामस्तदा शीघ्रतयालिलिंग ॥१६

वहाँ विराजमान बलदेवजी का दर्शन उनके चरण कमलों में नमस्कार किये। उस समय बलराम ने नीतिज्ञों में वरिष्ठ, अपने अनुज के लिए आशीर्वादों के साथ आलिंगन किया ॥१६॥

स्थित्वाक्षणं तत्र प्रणम्य चोद्धवश्चित्तानुकूलो यदुवंशभूपतेः।
उवाच रामं बुधवन्दितेरितः पुनः पुनर्वर्णिततद्गुणोदयः ॥२०

उद्धवजी क्षणकाल ठहरकर प्रणाम करते हुए बलराम को बोलने लगे। आप (उद्धवजी) बड़े नीतिज्ञ, द्वारकानाथ के चित्तानुकूल भाव को जानने वाले थे। आपने बलरामजी की गुणावलियों का वर्णन करते करते कहा ॥२०॥

हे वृष्णिवंशाम्बुजभास्करोदय स्वभक्ततासन्नयभासनप्रभो।
अयं यियासुर्व्रजमद्य केशव यियासते ते सुख सन्निदेशम् ॥२१

हे वृष्णिवंशकमलों के सूर्यरूप! हे अपने भक्तों के लिए प्रकाशमान! ये तुम्हारे छोटे भ्राता आज व्रज में जाने के लिए उत्सुक हैं। आपकी आज्ञा लेने को आये हैं ॥२१॥

तस्माद्भवत्संमतिरत्र चेद्भवेत्तदा व्रजंप्राप्य वियोगदुःखितान्।
प्रमोदयित्वा व्रजसर्वबान्धवांछीघ्रं पुनर्यास्यति ते समीपताम् ॥२२

यदि आपकी इसमें संमति हो तब वे व्रज में जाकर वियोग दुःख से दुःखित व्रजबन्धुओं को प्रसन्न कर शीघ्र फिर आपके पास आय जायेंगे ॥२२॥

निशम्य रामो यदुमुख्य वाक्य मुवाच तं साध्विति साध्वितीति ।
स्मरन् दशां गोकुलवासिनां तां विलोकिता या गतगोकुलेन ॥२३

श्रीराम यादवमुख्य उद्धवजी का उत्तम उत्तम वचन सुनकर इस प्रकार बोलते हुए कहने लगे । मैंने गोकुल में जाकर उनकी दशाओं का जो अनुभव किया है वह अब मेरे स्मरण में आकर व्याकुल कर रहा है ॥२३॥

यदा गतोऽहं व्रजमंडले तदा वियोगदीना व्रजवान्धवा मया ।
शान्तीकृता यद्यपि चारुवाचिकैस्तथापि वांछन्ति हरे विलोकनम् ॥२४

जिस समय मैं ब्रज में गया था उस समय वियोगदुःखित वे ब्रजबान्धव हमसे मनोहर वाक्यों के द्वारा कुछ शान्तिप्रिय हुए। परन्तु तो भी वे सब श्रीहरि के दर्शन को चाहते हैं ॥२४॥

यावद्भवान्नेष्यति गोष्ठमंडलाद्रक्ष्यामि तावत्ससुखं कुशस्थलीम् ।
प्रमोदय त्वं निजजन्मकाश्यपी निश्चिन्तचित्तो भववासहेतुना ॥२५

जब तक आप व्रजमण्डल से नहीं आवेंगे तब तक मैं सुखपूर्वक द्वारका की रक्षा करता हूँ । आप अपनी जन्मभूमि में निश्चिन्त चित्त से वासकर सबको प्रसन्न कराओ ॥२५॥

नाम्ना त्वया मे जननी यशोदा पिताऽपिनन्दः किलवन्दनीयः ।
श्रुत्वेति रामस्य वचोविलासं कृष्णोपि संसिद्धमनोरथोऽभूत् ॥२६

तुम मेरा नाम लेकर माता यशोदा और पिता नंद के लिये वन्दना करना । इस प्रकार राम के वचन विलास का श्रवणकर श्रीकृष्ण सिद्ध मनोरथ हुए ॥२६॥

एवं यदूनांपतिमुग्रसेनं तातं स्वकीयं वसुदेवसंज्ञम् ।
संप्रार्थ्यचान्यान् यदुवंशवृद्धान्कृतोद्यमोऽभूद्गमने मुकुन्दः ॥२७

इस प्रकार यादवपति उग्रसेन को अपने पिता वसुदेवजी को प्रार्थना कर तथा अन्य यदुवंश में मान्यगण्य वृद्धों को सन्मानित कर मुकुन्द गोकुल जाने के लिये उद्यत हुए ॥२७॥

सर्वेपि ते तेन हृदिस्थितेन सद्यः परावर्तितबुद्धिचेष्टाः ।
नाचारयन् चानुमतिप्रकारं ददुर्न विघ्नं हरिसाध्यकार्ये ॥२८

वे सब अनुमति देने लगे। क्योंकि श्रीकृष्ण ने सबके हृदय में रह कर उनकी बुद्धियां को फिराय दिये । उन्होंने हरि के ब्रज-गमन कार्य में विघ्न नहीं डाला ॥२८॥

तदैव दैवज्ञजनोपदिष्टे शुभर्क्षयोगे कृतनित्य कृत्यः ।
भुक्ताथ संगत्य निजप्रियाभि स्तत्सत्कृतः श्रीरथमारुरोह ॥२९

अनन्तर दैवज्ञजनों के उपदेशानुसार शुभ नक्षत्र, शुभ घड़ी में नित्यकृत्य, भोजनादि कर कान्ताओं से सन्मानित हो रथ पर बैठने लगे ॥२९॥

विहाय सिंहासनराज्यचिन्हौ तत्रैव षट्सप्तपदातियुक्तः ।
ययौ ब्रजं नेश्वरतापरिच्छदं माधुर्यसिन्धौ सुषमां प्रयाति ॥३०

उस समय उन्होंने महाधिराज चिन्हों का त्याग किया । केवल संग में छै-सात पदातिक रहें । क्योंकि ब्रज में इस प्रकार ऐश्वर्य भूषण प्रतिकूल कारक हो सकता है । व्रज तो माधुर्य का समुद्र है । उसमें ऐश्वर्य शोभा को प्राप्त नहीं है ॥३०॥

शुकं करे स्थाप्य सुसत्कृतोऽसौ समीक्षितः सादरमंगनाभिः ।
हरन्मनो वामकटाक्षपुंखैस्तासां पुरद्वारमलंचकार ॥३१

आपने सन्मान के द्वारा शुक को अपने हाथ में रख कर प्रयाण किया । उस समय रमणियों ने उन्हें सादर के साथ देखा । आप मनोहर कटाक्ष समूह से उनके मन का हरण करते हुए पुरद्वार में उपस्थित हुए ॥३१॥

यदा पुरद्वारमतिक्रमन् हरिर्बभूव गन्तुं व्रजमार्गसन्मुखे ।
समुद्यतः पुष्करपूर्णसुन्दरं ददर्श कृष्णः कलशं पुरस्तात् ।३२

जिस समय पुरद्वार का अतिक्रमण कर ब्रजमार्ग के लिए गमनो-

द्यत हुए उस समय आपके समक्ष में पुष्पों से पूर्ण, सुन्दर कलश को आपने देखा ॥३२॥

राजीः पुनः किल कुरंगविलासिनीनांतद्दक्षिणे चकितलोचनसुन्दरीणां
देशे चचार पथिकस्य शुभान्यभूवन्नित्थं क्रमेण शकुनानि
बहूनि तस्य ॥३३

हरिणियों की राशि फिर उनके दक्षिण में चकितनयना सुन्दरियों का समाज देखते हुए आप मार्ग में चलने लगे । उस समय मार्ग में उनके लिए अनेक शुभ शकुन देखने में आये ॥३३॥

प्रसन्नचित्तः शकुनानि वीक्ष्य विचारयामास मुहुर्मुकुन्दः ।
राधाऽत्यगाधागुण संचयैः किं विनायिष्येन्मम दुःखबाधाम् ॥३४

उन शुभ चिन्हों का दर्शन कर मुकुन्द प्रसन्न चित्त हो वार-वार विचार करने लगे । गुणों से अत्यन्त अगाधा राधा क्या मेरी दुःख बाधा को दूर करेगी ? ॥३४॥

इत्थं मनोरथसुधाम्बुधिमग्नचित्तः संल्लापयच्छुकवरं रसिकेन्द्रवित्तः
क्रांत्वाबहून गिरिवरान् विपिनानितद्वत्सप्रापसर्वसुखदोव्रजदेशसीमाम्।३५

इस प्रकार मनोरथ सुधा समुद्र में मग्नचित्त होकर रसिकों के धन आप शुकराज के साथ अलाप करते हुए अनेक पर्वत, वन, उपवन का अतिक्रमण करने लगे । सर्वसुखकारी आप व्रजमण्डल की सीमा पर पहुँचे ॥३५॥

कृष्णो यदैव व्रजमाजगाम विश्वम्भरा कंदल कैतवेन ।
रोमांचिता शोभित पादपानि वनानि जातानि सुपुष्पितानि ॥३६

जिस समय श्रीकृष्ण व्रज में पहुँचे उस समय पृथिवी अंकुर छल से मानो रोमांचित, वृक्षों से शोभित, पुष्पों से पुष्पिता होगयी ॥३६॥

सरोवराण्यंबुज फुल्लपत्र विरोचमानान्यभवन् ह्रदाश्च ।
प्रसन्ननीरा रसिकेन्द्र मौलिं दृष्ट्वा चरा जंगमतां प्रपेदुः ॥३७

सरोवरसमूह कमलों से शोभायमान हो एवं ह्रद सब प्रसन्न जल विशिष्ट होगये। रसिकेन्द्रमौलि श्रीहरि का दर्शन कर स्थावर जंगम धर्म को तथा जंगम स्थावर धर्म को प्राप्त होने लगे ॥३७॥

अगाधयन् शुष्कसरोवरं व्रजं रसेन तेषां प्रणय प्रदीपम्।
प्रकाशयन् सन्निधितां नयत्सुखं विनाशयन् दुःखमहो ययौहरिः ॥३८

श्रीहरि शुष्कसरोवर वाला व्रज को आज रसामृत से अगाध अर्थात् गहीडा बनाकर, ब्रजवासियों के प्रणय प्रदीप को प्रकाश-करते हुए दुःखनाशपूर्वक व्रज में पहुँचे ॥३८॥

पुरीमतिक्रम्य पुनर्यदूनां यदैव वृन्दावनमध्यमाप।
विलोक्य जीर्णं वनभाग मेतं दयालुरिन्दीवरलोचनोऽभूत् ॥३९

द्वारकापुरी का अतिक्रमण कर जिस समय व्रज में पहुँचे उस समय कमलनयन वियोग से जीर्ण शीर्ण वनभाग का दर्शन कर करुण होगये ॥३९॥

रथात्तदोत्तीर्य वनं च पश्यन् स्वलीलयांगीकृतसर्वदेशम्।
अवाप्य वित्तं विगतं मनुष्यो यथा तथा प्राप हरिः प्रमोदम् ॥४०

आपने रथ से उतर कर अपनी लीलाओं से चिन्हित समस्त वनप्रदेश को देखा। वित्तशून्य मनुष्य होने पर धन प्राप्त जिस प्रकार प्रसन्न होता है ठीक उसी प्रकार वे प्रसन्न हुए ॥४०॥

विलोक्य निद्राविलितान्विहंगान् भूमीरुहांश्चापि वियोगजीर्णान्।
कृष्णः कृपाक्रान्तमना विचार्य सुखाय तेषाँ कृतवानुपायम् ॥४१

पक्षियों को वियोग निद्रावश तथा वृक्षों को वियोग से जीर्ण देखकर श्रीकृष्ण अत्यन्त करुणावश हो उनको सुखी कराने के लिये उपाय सोचने लगे ॥४१॥

स्थित्वा कदम्बस्य तले तदानीं त्रिभंगमूर्ति व्रंजराजसूनुः।
निजेच्छयाविष्कृतवंशिनामा मवादयत्ताँ प्रतिबोधकर्त्रीम् ॥४२

आप उस समय कदम्ब वृक्ष के नीचे त्रिभंगस्वरूप में विराज-

मान होकर अपनी इच्छामात्र से वंशी का प्राकट्य कर उसको बजाने लगे, जिससे सबका दुःख दूर होजावे ॥४२॥

तदैव सर्वे विहगा नराश्च निशम्य वेणुं विगतार्तिनिद्राः ।
निशाम्य तं गोकुलराज सूनुं बभूवु रुन्मत्ततरान्तरङ्गाः ॥४३

उस समय समस्त पशु-पक्षि-मनुष्य वेणु शब्द का श्रवण कर दुःखनिद्रा से जाग उठे तथा श्रीकृष्ण का आगमन जानकर हृ। से उन्मत्त होगये ॥४३॥

कलेन मंत्रेण गतार्ति वेगा व्याजेन नादस्य परस्परन्ते ।
शुकाश्च केका निनदाः पिकाश्च तदाऽब्रुवन्नागमनं तदीयम् ॥४४

नाद छल रूप शब्द मन्त्र से सब दुःख शून्य होकर वे सब शुक, मयूर, कोकिल उनके आगमन का उद्देश्य देने लगे ॥४४॥

ततश्च ते वृक्षभुजावलम्बं विहाय यत्नात्परिवव्रुरेनम् ।
प्रसार्य पक्षाणि च नीलकंठा नृत्यं वितेनुः कलमन्यपुष्टाः ॥४५

अनन्तर वे सब वृक्ष शाखा को छोड़कर श्रीकृष्ण के चारों ओर घिर गये । मयूर पांखों का प्रसारण कर नृत्य करने लगे । कोकिलों ने कूह शब्द के द्वारा उन्हें उत्सुक किया ॥४५॥

वंशीरवामृतनिरन्तरसिंचनेन शुष्का नगा कलितकोमलपल्लवाग्राः ।
जाताः किमन्यकथनेन तदा सुखाब्धौ मग्ना
विनष्टविरहार्तिभराश्चसर्वे ॥४६

निरन्तर वंशीरवामृत के सींचन से शुष्कवृक्षसमूह कोमलपल्लव विशिष्ट होगया । अधिक क्या कहा जा सकता है । उस समय सब ही विरहार्ति से रहित होकर सुखसागर में डूब गये ॥४६॥

पुनश्च फेनस्मितसुन्दराननांम्बुजा तरंगोद्भवबाहुपंक्तिभिः ।
प्रियं प्रदेशागतमर्क पुत्री बभौ समालिंगितमुद्यतेव ॥४७

उस समय यमुना फेनरूप मदहास्य से सुन्दर मुख कमल वाली होगयी । तरङ्गरूपी भुजाओं से मानो उसने विदेश से आगत

प्रिय को आलिंगित करने के लिये चला ॥४७॥

कलिन्दनन्दिन्यमलाम्बुवाहिनी स्थिरा वभूव प्रकटप्रमोदिता ।
निरीक्ष्य वंशीधरमिन्दुसुन्दराननं नकः स्थैर्यमवाप विष्टपे ॥४८

आज विमल जलवाहिनी कलिन्दनन्दिनी यमुना अत्यन्त आनन्दित होकर स्थिर होगयी। चन्द्र की भाँति सुन्दर मुख वाले वंशीधर का दर्शन कर पृथिवी में कौन व्यक्ति स्थिरता को नहीं प्राप्त होता है ? अर्थात् सब ही स्थिर होजाते हैं ।४८॥

कृष्णोऽपि तेषां प्रणयं समीक्ष्य ययौ न कां हर्षभरस्यरीतिम् ।
वंशीकलेनैव सहर्षचित्तः पप्रच्छ तेषाँ कुशलं तदानीम् ॥४९

श्रीकृष्ण भी उनकी प्रणय परिपाटी का दर्शन कर अत्यन्त हर्ष को प्राप्त हुए। आपने हँसते हुए वंशीनाद से ही उनका कुशल पूछा ॥४९॥

विरम्य तेषाँ ललितेऽलिझंकृते वभौ कदम्बस्य तले विराजितः ।
स्तुतः शुकश्वेत पतत्रिसारसैः शुकं दिदेशाथमनोज्ञभाषितः ॥५०

उस समय आप वंशीवादन से विरत होकर भ्रमरों के झंकार से मनोहर कदम्ब वृक्ष के नीचे विराजमान हुए। शुक ने उनकी स्तुति की। आपने मनोहर वचनों से शुक के लिये आदेश किया ॥५०॥

शुकेन्द्र नन्दीश्वरराजधानीं वियोगशीर्णेषु मम प्रियेषु ।
सखे मदीयाऽऽगमनं वद त्वं गोपेषु चान्येषु च तत्र गत्वा ॥५१

हे शुकराज ! नन्दीश्वर राजधानी में जाकर वियोग दुःखित मेरे प्रियजनों में मेरे आगमन का सन्देश देओ। गोप-गोपीं सब को मेरा आगमन सुनाओ ।५१॥

उड्डीय हस्ताच्च निधाय कीर आज्ञां प्रभोः स्वहृदयेजगाम ।
यदा तदैव व्रजमंडलेऽभूत् शुभोत्तरा सच्छकुनावली सा ॥५२

उस समय वह कीर प्रभु की आज्ञा पाकर उनके हस्त से उड़कर वहाँ के लिये चल दिया, और उस समय ब्रजमण्डल में शुभमय उत्तम शकुन दीखने लगे ॥५२॥

वंशीकलात्कलकलैः प्रतिबुद्धचेष्टा वृत्तौकसाँमनसि चारु चकारवृन्दा।
आनन्दमत्ताविरुतानि वियोगदीना भूयः करोतिकथमित्थ
महो खगाली ॥५३

वंशी के कलकलनादों से जागृति होकर वृन्दा सोचने लगी। अहो! आज वृक्षों के बीच इस प्रकार प्रसन्नता कैसी छागयी, वियोगदीना पक्षियाँ आज आनन्द मत्त होकर शब्द कर रहे हैं। इसका क्या कारण है ? ॥५३॥

तदैवाग्रे पश्यन् नवजलधरश्यामलरुचि
निविष्टं कालिन्दीतटनिकटनीपद्रुमतले।
प्रमोदेनासिञ्चन् विपिनवरमिन्दीवरमुखं
निजप्राणप्रेष्ठं निरुपमतनुं नन्दतनयम् ॥५४

उस समय वृन्दा ने नवीन मेघ की भाँति श्यामकान्तिवाले, यमुना के तट के पास कदम्ब वृक्ष के नीचे विराजमान, प्रमोद-सुधा से वन को सिंचित करने वाले, चन्द्रमुख, निज प्राणप्रिय, निरूपम शरीर, नन्दनन्दन को देखा ॥५४॥

आनन्दकम्पस्वरभंगमुख्यैः प्रेम्णोविकारैर्लसदंगयष्टिः।
वृन्दाथ वृन्दारकवृन्दवन्द्यं ननाम कृष्णं समुपेत्य देवी ॥५५

देवी, वृन्दा ने आनन्दकम्प-स्वरभंग प्रमुख प्रेम विकारों से शोभितांगी होकर उनके पास जाकर देववन्दनीय श्रीकृष्ण को प्रणाम किया ॥५५॥

पुनः स्वनेत्रैर्हरिरूपमाधुरीं पिबन् विपक्ष्मैर्मुदिता बभूवह।
स्मरन् कृतां तेन विलासवंधुरां लीलां पुराकाननकुंजमन्दिरे ॥५६

फिर वह अपने नेत्रों से पलक रहित हो हरिरूपमाधुरी का पान

कर प्रसन्न होगयी। उसने विलासों से मधुर, लीलाओं का स्मरण किया। जोकि वृन्दावन के कुंजमन्दिरों में श्रीकृष्ण के द्वारा की गयी थीं ॥५६॥

प्रभो वियोगार्तिपराभवात्त्वया दयालुना माधव रक्षितं व्रजम्।
क्षण क्षण क्षीणतरद्रुमापगं दिष्ट्याद्य तत्प्राप मुदं महोत्सवम् ॥५७

हे माधव हे प्रभो! दयालु तुमने वियोगार्त्ति से पराभव प्राप्त व्रज की अब रक्षा की! वृक्षगण क्षण क्षण में क्षीण हो जारहे थे। तुमने अपांगदृष्टि में उनको आनन्दित किया ॥५७॥

यावद्भवान् मधुपुरी मगमद्रथेन तावद्गता वनखगाविरहेणशीर्णाः
मूकत्वमिन्दुमुखचम्पकनीपमुख्याः शुष्कत्वमापु रहहद्रुमराज संघाः ॥५८

जब से आप रथ में बैठकर मथुरा गये हैं तब से ये वन की पक्षियाँ विरह से क्षीण होकर मौनी हो गयी है। हे चन्द्रवदन! चम्पक-नीप प्रमुख वृक्ष सब शुष्क होगये थे ॥५८॥

धिन्वन् मनोनयनजीवनचातकानि गोष्ठौकसां घनरसेनविकाशयश्च।
वृक्षान् वियोगदववर्चिविपाकदग्धान्धाराधरो भवननुव्रजमाविरासीत।५६

आप गोष्ठवासियों के मन-नेत्र-जीवन रूप चातकों को घनरस से प्रसन्न कराते हुए तथा वियोगवनाग्नि से जले हुए वृक्षों को दर्शनामृत मेघधाराओं से विकसित कराते हुए आज व्रज में आविर्भूत हुए हैं ॥५६॥

इत्थं मुहुः साश्रुमुखां वदन्तीं वृन्दां हरिः सत्कृतवान् कृतज्ञः।
स्मितेक्षणस्निग्धवचोविलासैः पृष्ट्वा तदीयं कुशलं मुकुन्दः ॥६०

इस प्रकार वार वार अश्रुमुख बोलने वाली वृन्दा को कृतज्ञ श्रीहरि स्मितेक्षण-स्निग्ध वचन विलासों से सत्कार कर उसे कुशल पूछने लगे ॥६०॥

वृन्दे कथां कथय मत्प्रणयाधिराज्ञी राधा कथंचिदवला विरहेण खिन्ना ।
प्राणान् विभर्तिकिमिति प्रतिरुद्धकंठः कृष्णः शशाक नहि वक्तुमहो
तदानीम् ॥६१

"हे वृन्दे ! कहो, मेरी प्रणय अधिश्वरी, अवला, विरह से खिन्ना राधा प्राणों का धारण कर रही है ?" इस प्रकार पूछ कर श्रीकृष्ण प्रतिरुद्ध कंठ होकर उस समय आगे कुछ कहने के लिये असमर्थ होगये ॥६१॥

वृन्दा दशामकथयद्व्रजवासिनां तां तस्याश्च तद्विरहदुःखमयींहितस्मै ।
कृष्णो निशम्य पुलकांकितविग्रहस्तां त्वंगच्छ तन्निकटमित्थमुवाच भूयः

वृन्दा ने व्रजवासियों की दशा तथा राधिका की विरह दुःखमयी दशा को उनसे कहा । श्रीकृष्ण वृन्दा के वचन सुनकर पुलक शरीर होकर "तुम उसके पास जाओ" इस प्रकार उसे वार वार कहने लगे ॥६२॥

स्वमस्तके स्थाप्य च तन्निदेशं जगाम वृन्दान्तिकमिन्दुमुख्याः ।
तदैव तान् सच्छकुनान्निरीक्ष्य जगाद राधां ललिता प्रसन्ना ॥६३

वृन्दा श्रीहरि के आदेश को मस्तक में रखकर इन्दमुखी राधिका के पास गई । उस समय उत्तम शुभशकुन देखकर ललिता प्रसन्न हो राधा के लिये कहने लगी ॥६३॥

प्रभातमारभ्य कृतोदयां स्त्वं राधे सु साधून् शकुनांश्च पश्य ।
प्रमोदपूर्णं हृदयं ममेदं किंचित्फलं संजनयिष्यतीति ॥६४

हे राधे ! प्रभात समय से लेकर अब तक होने वाले सकुनों को देखिये । आज मेरा हृदय प्रमोद से पूर्ण हो जारहा है । नहीं कह सकती हूँ कि क्या फल प्राप्त होगा ॥६४॥

श्रुत्वाह तां श्री वृषभानुपुत्री सत्यं प्रिये जल्पसि यन्ममापि ।
वामाङ्गमद्य स्फुरते सहर्षं पश्यामि सर्वं जड़जंगमं च । ६५

श्रीवृषभानुनन्दिनी इस प्रकार सुनकर ललिता के लिये कहने लगी। हे प्रिये ! सत्य कहती हो, आज मेरा भी वामांग हर्ष के साथ स्फूर्त होरहा है। आज जड़-जंगम सबको प्रसन्न देख रही हूँ ॥६५॥

तदैव तत्रैव शुकं समागतं तमेव दृष्ट्वा वृषभानुनन्दिनी ।
उवाच सा प्राप्तमहो फलं मया यस्माच्छुकः प्राप स एवतेऽन्तिकम् ॥६६

उसी समय वहाँ आया हुआ उस शुक को देखकर वृषभानु-नन्दिनी बोलने लगी। अहो फल तो मिल गया है। क्योंकि यह शुक आज हमें मिल गया है। यह तो कृष्ण की भाँति सुखरूप हो रहा है ॥६६॥

आगत्य कीरवरसेवितपादपद्मः स्थित्वा करे मुहुरयं निजगाद राधाम् ।
प्राणार्बुदादपि तव प्रियगोकुलेन्द्रो वृन्दावनं मधुरकोकिलमाजगाम॥६७

शुक आकर उनके चरणों की वन्दना कर उनके हाथ पर बैठ गया तथा उन राधिका को वार वार कहने लगा। हे राधे ! आपके अर्बुद प्राणों से प्रिय, गोकुलेन्द्र मधुर कोकिल से गुंजरित वृन्दावन में आगये हैं ।६७॥

अविश्वस्तेव सा प्राह कीरं श्रीकृष्णवल्लभा ।
नास्तीदृशश्च भाग्यो मे तस्मात् किं वहुवंचनैः ॥६८

कृष्णवल्लभा, वृषभानुनन्दिनी वह विश्वास नहीं करती हुई शुक के लिए कहने लगी। मेरे ऐसे भाग्य नहीं हैं। तुम तो हमें छलना कर रहे हो ॥६८॥

शकुनानि पुनः स्मृत्वा द्रष्टुमुत्कण्ठितात्मना ।
आरुरोह यदा हर्म्यं सवयस्याह तां शुकः ॥६९

श्रीराधा शगुनों का स्मरण कर देखने के लिये उत्कण्ठितमना हो सखियों के साथ अट्टा (अट्टालिका) के ऊपर आरोहण करती हुई इधर उधर जब देखने लगी तब शुक ने उनसे कहा ॥६९॥

मिथ्यावादी यदाऽहं स्यां तर्हि पश्य कथं भवेत् ।
कोलाहलः प्रमद्जस्तदा पादप फुल्लताम् ॥७०

यदि मैं मिथ्यावादी हूँ तो देखिये । कोलाहल क्यों होरहा है ? वृक्ष सब पादों से लेकर मस्तक पर्यन्त प्रफुल्लित हो रहे हैं ॥७०॥

आगच्छन्तीं तदा राधा वृन्दां फुल्लमुखाम्वुजाम् ।
दृष्ट्वा त्वरित यानां च जाता निश्चितमानसा ॥७१

उस समय आई हुई वृन्दा को फुल्लमुखाम्वुजा देखकर अर्थात् फुल्लकमल की भाँति मुखवाली देखकर शीघ्र कृष्ण के पास जाने के लिये चंचला होगई । उनके मन में निश्चयता आगयी है ॥७१॥

वृन्दा प्रमोदभरविह्वलया गिराह गत्वा तदीयनिकटं सुखसिंधुमग्ना ।
राधाभिधे फलितवांस्तव पुण्यपुंजैः सौभाग्यकल्पतरुरुल्लसितोऽयमद्य।७२

वृन्दा प्रमोदाधिक्य से विह्वल होकर बोलने लगी । क्योंकि वह सुखसागर में डूबी हुई थी । हे राधे ! तुम्हारे पुण्यपुंजों के द्वारा सौभाग्य कल्पतरु आज फलितवान हो उल्लसित हो रहा है ॥७२॥

इत्थं वदन्ती युगखंजनाक्षी वृन्दा समालिंगनया सहर्षम् ।
ऋतेभवन्तीं सखिसौख्यवार्तां कःश्रावयेत्कर्णं रसायनां मे ॥७३

इस प्रकार बोलने वाली वृन्दा को राधिका ने सहर्ष आलिगन किया । हे सखि ! तुम्हारे बिना इस प्रकार कर्णरसायन सुख-वार्त्ता को मेरे लिए कौन सुनावेगा ? ॥७३॥

दृष्टः कथं विरहमूर्छितदेहया स तत्वंवद क्रमत एव हरिर्भवत्या ।
पृष्टातदेति निजगाद समस्तवृत्तं तस्यैक्रमेणमुदिता वनराजदेवी।७४

हे देवि ! विरह से तुम्हारा शरीर मूर्छा प्राप्त होगया था उसे क्रम से कहो । तुमने हरि को किस प्रकार से देखा इस प्रकार राधिका के द्वारा पूछे जाने पर उस समय

वनराज की देवी वृंदा प्रसन्न होकर राधा के लिये समस्त वृत्तांत सुनाने लगी ॥७४॥

श्रुत्वा विहाय विरहाकुलितामवस्थां राधा बभौ पुलकितावयवा प्रसन्ना ।
सम्पन्नचारुदलशोभितसर्वशाखा वासंतिकेव विमलावयवा वसन्ते ॥७५

वृन्दा के वचनों का श्रवण कर विरहव्याकुल अवस्था को छोड़ कर श्रीराधा प्रसन्न होकर पुलकितांगी होगयी । जिस प्रकार वसन्त आने पर वासन्तिकालता विमल शरीर होजाती है तथा उसकी समस्त शाखायें मनोहर कोमलपत्रों से शोभायमान होती है ठीक उसी प्रकार आज राधिका की अवस्था सुन्दर हुई है ॥७

एवं तयोस्तत्र च सत्लपत्योः कीरस्तु नन्दालयमाजगाम ।
तत्रापि तस्याकुलचित्तपित्रोः श्रीकृष्णचन्द्रागमनं बभाषे ॥७६

इस प्रकार वृन्दा और राधिका के अलाप अवसर में उस कीर ने नन्दालय में जाकर वहाँ व्याकुल हृदय पिता-माता दोनों को कृष्णागमन का संदेश दिया ॥७६॥

श्रुत्वा यशोदाऽऽगमनं सुतस्य नन्दश्च तं सत्कृतवान्निशान्तम् ।
आनन्दमग्नेन्द्रियपालकौ द्वौ तमूचतुः क्वास्ति हरिः शुकेन्द्र ॥७७

यशोदा पुत्र का आगमन सुनकर व्रजराज के साथ उस शुक को बहु सन्मानित करने लगी । दोनों ने हे शुकराज ! श्रीहरि कहाँ है ? ऐसा पूछा ॥७७॥

विश्रान्तितेनार्कसुतातटस्थं वृन्दावने पूर्वमहं निदिष्टः ।
प्राप्तो भवत्पार्श्वमरं भवन्तौ विजानतस्तं निकटागतश्च ॥७८

वृन्दावन में सूर्यतनया के तट पर श्रीहरि विश्राम कर रहे हैं । अभी आपके पास आकर शीघ्र ही मिलेंगे ऐसा आप जानिये ॥७८

आगतोऽयमिति गोकुलवन्धुर्बालवृद्धतरुणाननजालः ।
गोकुले पथि पथि प्रतिगेहं श्रूयते मधुरामृतशब्दः ॥७९

"वे गोकुलवन्धु आये हैं" इस प्रकार व्रज के समस्त बाल-वृद्ध-

युवकों के मुखजात मधुर अमृतमय शब्द कोलाहल प्रत्येक गृह में, मार्ग में, वन-उपवन में छागया ॥७९॥

नृत्यंति केचिदपि कृष्णगुणानुवादं गायन्ति केपिकलसंभ्रममग्नचित्ताः ।
अन्ये द्रवन्ति परितोनिजवन्धुवर्गान्केचित्प्रमोदभरविह्वलमाह्वयन्ति ॥८०

कोई कोई कृष्ण के गुणानुवाद करते हुए नृत्य करने लगे । अन्य कोई गान करने लगे । कोई कोई तो संभ्रम में डूब गये । अन्य कोई भगने लगे । कोई कोई प्रमोदाधिक्य से विह्वल होकर निजवंधुओं को बुलाने लगे ॥८०॥

क्व गतं विरहार्तिरोदनं क्व गतं मूर्च्छनमाधिवृद्धिता ।
सकलं व्रजमडलं ययौ श्रवणेऽऽगमनस्य तस्य शम् ॥८१

उस समय विरहार्त्तिरोदन कहाँ चला गया । व्याधि से वर्द्धित मूर्च्छा भी कहाँ चली गयी । उनके आगमन का श्रवणकर समस्त व्रजमण्डल महान् कल्याण को प्राप्त हुआ ॥८१॥

वृद्धा वाला व्रजजनवधूसंचया गोपवर्या
स्त्यक्तं यस्मै तनुधनपरीवारपुत्रादिकं यैः ।
ते तत्रत्याः प्रणयविवशा मत्तचित्तास्तथान्ये
उत्कण्ठार्ता विदधति कृतिं नैव सर्वे स्वकीयाम् ॥८२

वृद्ध-बालक व्रजवासी यूथगण, गोपगण जिन्होंने कृष्ण के लिए शरीर धन परिवार-पुत्रादि का त्याग किया है वे सब व्रजवासी आज उसको प्राप्त कर प्रणय विवश हो मत्तचित्त होगये । बहुत से तो उत्कंठा आर्तिवश अपने कर्म को नहीं कर सके ॥८२॥

वीथ्यां वीथ्यां व्रजजनवराः स्वैश्च संभूय मित्रैः
हर्षोन्मत्ता स्तदमलगुणानभ्यसन्तः समन्तात् ।
जग्मुर्वृन्दावनपरिसरस्याभिमुख्यं समन्तात्
प्रीत्या विष्वगृक्षण मपि तदा मेनिरेऽनल्पकालम् ॥८३

अपने मित्रों के साथ व्रज की गली गली में समस्त व्रज के

मनुष्य एकत्र हुए। सब हर्ष से उन्मत्त होकर श्रीहरि के गुणों का अभ्यास करते हुए वृन्दावन के अभिमुख में चलने लगे। वे सब प्रीति से आविष्ट होगये। जाने के समय उनके लिए बहुकाल भी क्षणकाल की भाँति प्रतीत होने लगा ॥८३॥

श्रीगोविन्दमुनीन्द्रवन्दितपदद्वन्द्वारविन्दासव-
प्रोन्मत्ताखिलचित्तवृत्तिसुखदे सारंगसंमोदिते।
काव्ये नन्दकिशोरचन्द्ररचिते श्रीकीरदूताभिधे
श्रीकृष्णव्रजयानवर्णनमयः सर्गोऽगमच्चाष्टमः।

श्रीगोविन्द के मुनिगणवन्दित चरणकमल युगल के मकरन्द-पानोन्मत्त समस्त रसिकजनों की चित्तवृत्ति में सुखदायी, कौतुकपूर्ण, नन्दकिशोरचन्द्र के द्वारा विरचित इस शुकदूत नामक काव्य के श्रीकृष्ण का व्रजागमन वर्णनमय यह अष्टमसर्ग संपूर्ण हुआ ॥८४॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभुचरणारविन्दासवमनाचार्य श्रीनन्द-किशोरचंद्रगोस्वामिप्रणीते श्रीशुकसंदेशाभिधे काव्ये श्रीकृष्णव्रजयान-वर्णनात्मकोऽष्टमः सर्गः समाप्तिमगात् ॥

श्रीचैतन्यचन्द्रामृते प्रबोधवाक्यम्—

प्रेमानमाद्भुतार्थः श्रवणपथगतः कस्य नाम्नां महिम्नः
को वेत्ता कस्य वृन्दावनविपिनमहामाधुरीषु प्रवेशः।
को वा जानाति राधां परमरसचमत्कारमाधुर्य्यसीमा-
मेकश्चैतन्यचन्द्रः परमकरुणया सर्वमाविश्चकार ॥

प्रेम यह दोनों अक्षर से युक्त मनोहर शब्द तथा मनोहर अर्थ किसका सुनने में आता? भगवन्नाम की महिमा कौन जानता? श्री वृन्दावन की रसमाधुरी में किसका प्रवेश होता? परमरस-मय चमत्कारमाधुर्यसीमारूप श्रीराधिका को कौन जानता? एकमात्र श्री चैतन्यदेव ने अत्यन्त करुण होकर समस्त आविष्कार किया है।

नवमसर्गः

अथात्मजस्येक्षणलाभकामा वात्सल्यरूपा व्रजराजराज्ञी ।

सोत्कण्ठचित्ता प्रययौ यशोदा यशस्विनी मार्गमुखे जवेन ॥१

अनन्तर पुत्रदर्शनलाभ कामना से उत्कंठित चित्त होकर वात्सल्य रूपिणी, व्रजराजरानी, यशस्विनी यशोदा शीघ्रता के साथ मार्ग-मुख में आने लगी ॥१॥

श्रीराधिकापि स्वसखीसहायै र्जगाम तत्रैव सहर्षचित्ता ।

स्वाभीष्टलाभाय न कः करोति त्वरां जनो दैवदयागताय ॥२

श्रीराधिका भी अपनी सखियों की सहायता से प्रसन्न चित्ता होकर वहाँ जाने लगीं। स्व अभीष्ट प्राप्त मनुष्य देवदया के लिए चंचल होजाता है ॥२॥

चन्द्रावली च स्वसखीभिरीशं द्रष्टुं ययौ चम्पकवल्लरी च ।

श्यामा च भद्रा च तथैव पाली शालीनवक्त्रा सुखदा च धन्या ॥३

अपनी सखियों के साथ चन्द्रावली, चम्पकलता, श्यामा, भद्रा, शर्ममुखी पाली, सुखदायिनी भद्रा, प्राणवल्लभ के दर्शन के लिए वहाँ गयीं ॥३॥

अन्याश्च यूथाधिपया प्रसिद्धा राजीस्तदा गोपविलासिनीनाम् ।

व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः समीयुस्तत्रैव सख्योत्कलिका नियुक्ताः ॥४

अन्य यूथेश्वरी, गोपरमणियों का समाज अस्त-व्यस्त वस्त्राभरण हो अर्थात् व्यतिक्रम से वस्त्राभरण को धारण कर वहाँ जाने लगीं। वे सखियाँ उत्कण्ठा से परिपूर्णहृदया हो गईं ॥४॥

काचिच्चकोरनयना जवनेन धूत-वस्त्राञ्चला गतवती सकलाग्रभागे ।

माङ्गल्यसूचकसकेतुमतं गजेन्द्रशोभां दधार मदद्विपप्रयुक्ता ॥५

कोई चकोरनयना शीघ्रता से, वस्त्रांचल हिलाती हुई सबके आगे जाने लगीं। मानो मांगल्यसूचक ध्वजा को फहराती हुई शोभा-

लक्ष्मी हस्तिनी चाल से गमन कर रही हैं। वे सब रमणियाँ मदनहस्ति से प्रेरिता होकर विलास करने लगीं ॥५॥

काचिन्मनोजरसपूर्णसुवर्णकुम्भौ काश्मीरचित्रिततनु हृदये दधाना।
सोत्कम्पहस्तयुगला कृतधारणौ द्वौ गोपी जवादभिससारसुखं मुकुन्दम् ॥

कोई काश्मीर केसर से शरीर चित्रित कर कन्दर्परस से परिपूर्ण सुवर्ण कलस समान स्तन दोनों को हृदय में धारण करने वाली हाथों को हिलाती हुई शीघ्रता से मुकुन्द के पास जाने लगीं ॥६॥

प्रसरन्मुखगंधलुब्धभृङ्गा ध्वनिदम्भेन पठन् सुवेदशाखाः।
प्रययुर्यजमानमाप्तकामं अनुताभ्रसुरामण्डलानि यद्वत् ॥७

उनके मुख सुगन्धि से भ्रमर लुब्ध होकर शब्द करने लगे। उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो ब्राह्मण समाज वेद की शाखाओं का पाठ करता हुआ पूर्णमनोरथ वाले यजमान के पास जा रहा है ॥७॥

गमनसमये तासां कान्तावलोकचेतसां
सरअसपदारंभाज्जाता पदाभरणध्वनिः।
वलयकटिसंभूषना ता तथा ध्वनिमञ्जरी
जय-निनदवद्रम्या प्रेष्ठाप्तिसूचकतां ययौ ॥८

कान्त के अवलोकन में इच्छा रखने वाली उनके गमन के समय कंकण-किंकिणी आदि लेकर चरणभूषणादि की ध्वनि अर्थात् नूपुरादि की ध्वनि मनोहर बजने लगी। वह मानो प्रियप्राप्ति की सूचना देती हुई जय शब्द कर रही थी ॥८॥

श्रीकृष्णागमनश्रुतिप्रकटितः सानन्दकोलाहलो
विष्वग् गोष्ठमथावृणोति विमलं शंके स्वचातुर्यतः।
विच्छेदे कुनृपे पलायनवति श्रुत्वैव गोष्ठात्तदा
गोविन्दागमनं ततान तदलं वता श्रुतिघोषणम् ॥९

उस समय श्रीकृष्ण आगमन शब्द ने महान् कोलाहल के साथ

समस्त गोष्ठ को घेर लिया। मानो उसने गोष्ठ से वियोगरूप मन्दबुद्धि राजा का पलायन सुनकर गोविन्द आगमन रूप उत्तम राजा के विजय की सूचना देकर सर्वत्र जय घोषित किया ॥९॥

हारस्तदीयोऽप्रकृतप्रयाणो ऽप्युत्कंठमाना न शशाक गन्तुम्।
बद्धो यतो वै निजमित्रवद्यः त्यागं विनैव व्रजनेच्छया किम् ॥१०

उनके कंठस्थ हार चंचलायमान होगये मानो वे श्रीकृष्ण से मिलने के लिए तैयार होकर भी आगे न चल सके। क्योंकि धारणकारी जन के गले में बद्ध कोई माला क्या इच्छा करने पर भी गले से पृथक हो सकती है? अर्थात् नहीं ॥१०॥

श्रीदाम-दाम-वसुदाम-सुदाम नाम गन्धर्वगीत-सुबलार्जुन-भद्रसेनाः।
अन्येऽपि तस्य मणिबन्ध-करन्धमाद्याः
तत्रैव जग्मुरमलावयवाः वयस्याः ॥११

तब श्रीदाम, दाम, वसुदाम, सुदाम, गन्धर्व, सुबल, अर्जुन, भद्रसेन तथा श्रीहरि के मणिबन्धादि वयस्यगण वहाँ उपस्थित हुए ॥११॥

शिखण्ड-खण्डाभरणान्वितांगाः मुकुन्दनिक्षिप्तमनो विलासाः।
प्रफुल्लपंकेरुहनिन्दकास्याः संभूय जग्मुः कृतकृष्णगानाः ॥१२

वे सब केशर-चन्दनादि तथा मयूरपुच्छादि भूषण से शोभित शरीर थे। उनका मन गोविन्द में लगा हुआ था तथा मुखमंडल प्रफुल्ल कमलों को तिरस्कृत कर रहा था। वे श्रीहरि का गान करते हुए वहाँ उपस्थित हुए ॥१२॥

तथोपनन्दादय उत्सवेन वृद्धा प्रसिद्धा व्रजमण्डले ये।
आनन्दिता हस्तगृहीतभव्यद्रव्या ययुर्वीक्षितुमिन्दुवक्त्रम् ॥१३

उस समय व्रजमण्डल में प्रसिद्ध उपनन्दादि वृद्ध आनन्दित होकर हाथों में मंगलद्रव्य लेकर चन्द्रवदन श्रीहरि को देखने के लिए वहाँ गये ॥१३॥

नन्दालयप्रांगणतो बहिर्भू ब्रजस्थ संकीर्णतरत्वमाप्ता ।

गीतावतै गोकुलबन्धुकीर्त्तिः ततान सौख्यं श्रुतिसेव्यमाना ॥१४

नन्दालय के आँगन से बाहिर भूमिपर्यन्त समस्त गोष्ठ ब्रजवासियों के संघर्ष से संकीर्ण होगया। उस समय सबके मुख से गोकुलबन्धु श्रीहरि की यशकीर्ति उच्चारित होकर कर्णसुख देने लगी ॥१४॥

क्रीडां कुर्वन्तश्च वीथीषु बाला धूलीचयै धूसरीभूतदेहा ।

त्यक्त्वा सर्वे तां स्वभावप्रयुक्ता वेगाज्जग्मुस्तत्र कोमलध्वनादाः ॥१५

बालकगण मार्ग में धूलि से धूसरांग होकर क्रीड़ा कर रहे थे। वे सब धूलिक्रीड़ा छोड़ कर कोमल शब्द करते हुए, चंचल हो, वहाँ जाने लगे ॥१५॥

अन्याश्च गण्या भवभाग्यधन्या गोपालकन्या कति ता अनन्याः।

त्वरागताः कर्णपथं यदीयं नादः स तत्रैव गतो जवेन ॥१६

व्रज में पृथिवी भाग्य को बढ़ाने वाली और समस्त मान्य गण्य अन्य कितनी गोपबालिका उत्सुक चित्त से वहाँ जाने लगीं। जिनके कोलाहल शब्द कर्णपथ में आकर सबको उत्कंठित कर शीघ्र ही मानो आगे आगे चलने लगा ॥१६॥

विमानयानाश्च समं वधूभिः तदीक्षितुं पुष्करमासिषेचुः ।

विद्याधराः किन्नरचारणाश्च मिष्टामगायन्त तदीयकीर्त्तिम् ॥१७

विद्याधर, किन्नर, चारण आदि विमानचारी अपनी वधुओं के साथ उनको देखने के लिए उत्कण्ठित होकर कमल का वर्षण तथा उनकी मधुर कीर्ति का गान करने लगे ॥१७॥

रथं समारुह्य तदैव कृष्णो वृन्दावनान्नन्दपुराभिमुख्ये ।

चचाल चित्तमुदयन्स्वकान्त्या रसस्वरूपः पथि नेत्रभाजाम् ॥१८

उस समय श्रीकृष्ण रथ में बैठ कर वृन्दावन से नन्दग्राम के अभिमुख में चलने लगे। रसस्वरूप आपने मार्ग में अपनी कांति

के द्वारा दर्शकों के चित्त का हरण किया ॥१८॥

रेणुं निरीक्ष्योत्थितमभ्रतुल्यं श्रुत्वा च नादं रथयानजातम् ।
नृत्यंस्तदा ते विदधुः सहर्षा यथा नभो मासि मयूरमाला ॥१९

रथगमन से उत्थित, मेघ के सदृश रजसमूह तथा शब्द को सुन कर वे सब हर्ष के साथ नृत्य करने लगे। उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा कि श्रावण मास में सब मयूर नृत्य कर रहे हैं ॥१९॥

विलोक्य रत्नद्युतिदर्पपोषकं रथं च राजत्कलशैः हयैर्युतम् ।
दूरात्सुवर्णांकितसर्वमण्डलं संधावमानाः परिवव्रुरीश्वरम् ॥२०

रत्नकान्ति अभिमान का पोषक, कलश-घोड़ों से युक्त, सर्वाङ्ग सुवर्णमय उस रथ को देखकर समस्त व्रजजन भागते हुए प्रभु के चारों तरफ घिर गये ॥२०॥

व्रजौकसां लोचनचञ्चरीकाः निपीतगोविन्दमुखारविन्दाः ।
इतस्ततश्चञ्चतु भावभूवुः शक्ता न दूरीकृतपक्ष्मकंपाः ॥२१

व्रजवासियों के नयन भ्रमरगण गोविन्द के मुखकमल के मकरन्द रस का पान करते हुए इधर उधर घूमने लगे तथा नेत्र पक्ष्मों के कम्पन को न रोक सके ॥२१॥

विलोकनेन प्रियकेशवस्य विपद्भनेत्रा व्रजवासिनस्ते ।
सुदर्शनेनैव कृताघनाशा देवेषु वंधुश्रममात्तेनुः ॥२२

वे सब व्रजबासी प्रिय केशव का दर्शन कर स्थिर नयन होगये। श्रीकृष्ण दर्शन से उनका दुःखसमूह दूर भागने लगा ॥२२॥

कृष्णश्च तत्प्रणयदर्शनतः प्रसन्न उत्तीर्य कांचनरथात्त्वरितं स्वपित्रोः ।
पादौ ननाम नयनाम्बुविमिश्रवक्त्रः पूर्वस्मृतस्वशिशुतासुखरुद्धकंठः ।२३

श्रीकृष्ण उनके प्रणय का दर्शन कर प्रसन्न हुए तथा सुवर्णरथ से उतर कर नयनाश्रु से मुख को सिक्त करते हुए पिता-माता के चरणों में नमस्कार करने लगे। पूर्व वृत्तान्त का स्मरण करके आप रुद्धकण्ठ होगये ॥२३॥

दोर्भ्यां तमालिंग्य पिता निजार्भकं स स्नापयामास दृगश्रुनिर्झरैः ।
चुम्बन् मुखं तस्य तदीयमस्तकं जिघ्रन्मुहुः प्रेमगति दुरन्त्यया ॥२४
पिता ने अपने उस बालक को भुजाओं से आलिंगन कर नयन-जल प्रवाह से सिक्त किया तथा मुख चुम्बन कर बार बार उनके मस्तक का आघ्राण किया। क्योंकि प्रेम की गति बड़ी असाध्य होती है ॥२४॥

हस्तेन संमार्जितपुत्रदेहः श्रीनन्दगोपः पुलकांचितांगः ।
विष्टभ्य चित्तं मधुराक्षरेण पप्रच्छ तं स्वागतमादरेण ॥२५
गोपराज श्रीनन्द अपने हाथों से पुत्र का शरीर मार्जन करते हुए सर्वाङ्ग पुलकित हो चित्त के आवेग को संभाल कर मधुर अक्षरों के द्वारा आदर के साथ उनकी कुशल पूछने लगे ॥२५॥

तं विप्रलम्भज्वरजर्ज्जराङ्गं स्ववक्त्र संस्थापितनेत्रयुग्मम् ।
विलोक्य कृष्णः पितरं व्रजेशं कृपासमुद्रे निममज्ज तूर्णम् ॥२६
वियोगज्वर से जर्जरांग तथा अपने मुख में नेत्रयुगल अर्पण करने वाले व्रजराज पिता नन्दजी को देखकर श्रीकृष्ण शीघ्र करुणासागर में डूब गये ॥२६॥

मातापि कृष्णं परिरभ्य पुत्रं ययौ यशोदाऽनुपमेयहर्षम् ।
आशीशनं वीक्षितपुत्रवक्त्रा ददौ प्रसन्ना शुभदं च तस्मै ॥२७
माता यशोदा भी पुत्र श्रीकृष्ण का आलिंगन कर उपमारहित हर्ष को प्राप्त होगयीं तथा प्रसन्नता के साथ पुत्र के मुख को देखती हुई मंगलमय आशीर्वाद देने लगीं ॥२७॥

सृष्टौ विधे सार्थकतामवाप वात्सल्यनिर्म्माणपरिश्रमोऽयम् ।
व्रजेश्वरी जन्मत एव लोकधन्या महत्संसद्गीयमानात् ॥२८
विधाता की महती सृष्टि में वात्सल्य निर्माण में जो परिश्रम था वह आज सार्थक होगया है। व्रजरानी जन्म से ही महत्जनों के द्वारा संस्तुत होकर जगत में बड़ी धन्य हैं ॥२८॥

उत्कण्ठितापि वक्तुं न शमर्था वाष्परुद्धकंठी सा ।

नेत्राश्रुप्रसराक्षी शशाक नहि वीक्षितुं माता ॥२६

वह माता यशोदा अत्यन्त उत्कंठित होकर कुछ कह न सकीं। क्योंकि उनका कण्ठ आवेग से रुद्ध होगया तथा वह नेत्रों में अश्रुधाराओं के बहने के कारण पुत्र को अच्छी तरह नहीं देख सकी ॥२६॥

श्रीकृष्णपुत्रमिलने या दशा प्रमोदजा व्रजेश्वर्याः ।

कस्तां शक्तो वक्तुं परमितवाङ् नरः प्रमादेन ॥३०

पुत्र श्रीकृष्ण के मिलन से ब्रजेश्वरी की जो आनन्द दशा हुई है उसका वर्णन करने में कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है ॥३०॥

तद्वीक्ष्य वात्सल्यरसातिवृद्धिं, सुरा नराश्चापि खगा नगाश्च ।

कलेवरे प्रस्फुटरोमवृन्दाः, दृगश्रुसेकैः स्वतनुं न्यसिञ्चन् ॥३१॥

उस वात्सल्यरस की अत्यन्त वृद्धि को देखकर, देवता, मनुष्य, पक्षि, वृक्षादि शरीर से रोमांचित होकर नयन धाराओं से अपने को भिगाने लगे ॥३१॥

ऊचुः द्विजास्तौ प्रमदाकुलाशया, आशीर्भिरेवागत एष उत्सवः ।

दिष्टया बभुव ब्रजमुत्सवो सतो, द्रुतं देयमनपसु गोधनम् ॥३२॥

ब्राह्मणगण आनन्दमङ्गल की इच्छा रखते हुए आशीर्वादों के द्वारा प्रसन्न कराकर दोनों से कहने लगे हे ब्रजराज ! हे ब्रज-राज्ञी ! भाग्यवश ब्रज के उत्सव ब्रजविहारी ब्रज में आये हैं अतएव प्रचुर गोधन दान कीजिये ॥३२॥

सूताश्च पौराणिकवाक्यसंचयैः, सरस्वती स्वां समभूषयंस्तदा ।

तदीयवंशाधिपनिर्मलं यशो, जगुस्तदा नीतनुतां च वन्दिनः ॥३३॥

सूतगण पुराण वाक्यों से अपनी वाणी को भूषित करने लगे तथा वंदीगण उनके वंश के राजाओं का निर्मल यश गाने लगे ।३३॥

निर्मञ्छनीकृत्य तदा सुतोपरि, हर्षेण वित्तं बहुरत्नसंचयम् ।
क्षौमानि वासांसि सुवर्णभूषणा, न्युदारचित्तो बहु गोकुलं ददौ ॥३४॥
उस समय उदार हृदय ब्रजराज ने बहु रत्न-सम्पत्ति, सुवर्ण, अलंकार, गौओं को पुत्र के ऊपर निर्मञ्छन (न्यौछावर) कर ब्राह्मणों को दान दिया ॥३४॥

वृद्धान्प्रणामैः पशुपान् द्विजानृश्च, सखीन् परिरंभणतत्परः सः ।
अन्यान् करस्पर्शनिरीक्षणाद्यै, र्व्रजौकसः सत्कृतवान् कृतज्ञः ॥३५॥
कृतज्ञ ब्रजराज ने वृद्ध गोपों को तथा ब्राह्मणों को प्रणामों के द्वारा, समवयस्क सखाओं को आलिंगन के द्वारा, औरों को हस्त-स्पर्श, निरीक्षणादि के द्वारा सम्मानित किया ॥३५॥

प्रियाश्च ताः सस्मितलोकनाद्यै, मुँहुमुँहुः सूचितदैन्यदैन्यैः ।
स्ववक्त्रसंस्थापितनेत्रयुग्माः, श्रीराधिकाद्याः किल संचकार ॥३६॥
उस समय राधिकादि प्रियाएं वार वार दैन्यता के साथ मन्द-हास्यपूर्वक देखने लगीं । उनके नेत्र श्रीकृष्ण के मुखारविन्द में लगे हुए थे ॥३६॥

राधा प्रियस्येक्षणमाप्य सत्कृतं, सन्मानमानन्दमवाप पद्मिनी ।
विभातकाले दिनरत्नदीधितिं, लब्ध्वा लसत्फुल्लदलेव पद्मिनी ॥३७॥
उस समय कमलिनी श्रीराधा प्रिय का दर्शन तथा उनके द्वारा सम्मानित होकर प्रसन्न होगयीं । मानो प्रभातकाल में सूर्य-किरण प्राप्त कर कमलिनी प्रफुल्लित होरही है ॥३७॥

चन्द्रावली याति च कृष्णपक्षे, स्फीताऽपि मन्दद्युतितां क्रमेण ।
इत्थं तु चित्रं सति कृष्णपक्षे, चन्द्रावली स्फीतगुणत्वमाप ॥३८॥
चन्द्रकिरण कृष्णपक्ष में क्रम से मन्दकान्ति होजाता है, परन्तु यह बड़े आश्चर्य की बात है कि आज कृष्णपक्ष के वर्तमान रहने पर भी चन्द्रावली प्रफुल्लित होरही हैं । श्लेष में सामने श्रीकृष्ण के विराजमान रहने पर भी यूथेश्वरी चन्द्रावली परम

प्रसन्ना है ॥३८॥

धन्या तु धन्याभिधसत्वतो ययौ, ज्येष्ठापि सा ज्येष्ठवरत्वमाययौ।
चित्रापि चित्रार्पिततां सदा ययौ, पद्मा च पद्माननफुल्लतां ययौ ॥३९

श्रीकृष्ण को प्राप्त होकर आज धन्या परम धन्यवती, ज्येष्ठा अत्यन्त गौरवशालिनी, चित्रा सखी चित्र की भाँति, पद्मा प्रफुल्लमुखकमलवाली होने लगीं ॥३९॥

व्रजौकसस्त्यक्तवियोगदुःखा, स्तदा भवन् हर्षितचित्तदेहा।
ग्रीष्मातिशीर्णावयवाः प्रसन्ना, भवन्ति वर्षासमये द्रुमावत् ॥४०॥

सब व्रजवासी वर्षा के समय ग्रीष्म में अत्यन्त शुष्क वृक्षों की गति वियोग दुःख के दूर होजाने पर प्रसन्न हृदय तथा पुष्ट शरीर होने लगे ॥४०॥

प्रसन्नवक्त्रपङ्कजा　　मरालमादितासवः।
सदा रसस्वरूपिणी तदागतां गताश्च ते ॥४१॥

रसरूपिणी वे सब प्रसन्नमुखकमलवाली तथा उन्मादिनी होगईं ॥४१॥

समाजितः सादरवीक्षणैर्हरि र्व्रजाङ्गनाभिः पथि नन्दमन्दिरे।
हर्षयन्सुस्मितभावलोचनैर्जगाम　　गोष्ठालयवासिभिर्वृतः ॥४२॥

इस प्रकार श्रीहरि मार्ग में व्रजाङ्गनाओं के द्वारा आदर वीक्षणों से शोभायमान होकर मन्दहास्य अनुराग नयनों से उनको प्रसन्न करते हुए गोष्ठवासियों के साथ नन्दमन्दिर में उपस्थित हुए ॥४२

प्रियेक्षणेन　　हर्षितप्रियामुखेन्दुसंश्रिताः।
व्रजस्थचन्द्रशालिका　यथार्थनामतां दधुः ॥४३॥

व्रज की चन्द्रशालिका (चन्द्रशाला) प्रिय कृष्ण के दर्शन से प्रसन्न प्रियाओं के मुखचन्द्र का आश्रय कर यथा नाम प्राप्त हो रही हैं ॥४३॥

प्रिया प्रियास्यसंगतदृशो भवन् प्रियोऽप्यभूत्।

प्रियास्यलग्नद्वयो विना रतिं न सौख्यता ॥४४॥
प्रिया प्रिय के मुख संसर्ग से तथा प्रिय प्रियाओं के मुख के संसर्ग से शोभायमान हुए हैं। दोनों के बिना न रति सिद्ध हो सकती है और न सौख्यता बन सकती है ॥४४॥

तदानींतनं वीक्ष्य सौख्यं मुरारेः, सुरस्थानकस्थानभूलोकवासाः।
गताः शीर्णतां कृष्णसंयोगजन्यं, प्रमोदाः स्वगौणत्वशंकाकुलाङ्गाः॥४५
उस समय देवता, पृथिवीवासी दोनों सुखानुभव करने से कृष्ण संयोग से उत्पन्न प्रमोदावली अत्यधिक बढ़ने लगी ॥४५॥

सर्वे तदा गोकुलस्था मनुष्या, विधिं प्रार्थयामासु सत्फुल्लचित्ताः।
स्पृहा नास्ति वित्तासिदेहार्भकेषु,वरं देहि नः कृष्णनित्येक्षणत्वम् ॥४६
उस समय समस्त गोकुलवासी उत्फुल्लचित्त होकर विधाता से प्रार्थना करने लगे कि हे विधाता! हम सबकी धन-देह-बालकों की इच्छा नहीं है। श्रीकृष्ण के सर्वदा दर्शन हों ऐसा वर दीजिये ॥४६॥

कृष्णः सतृष्णः प्रणयाब्धिमग्नो, व्रजौकसां स्तम्भितचित्तवृत्तिः।
न ज्ञातवान् स्वं प्रियवस्तुलाभे, भवत्यहो कापि गतिर्जनानाम् ॥४७
श्रीकृष्ण व्रजवासियों के प्रणय-समुद्र में सतृष्ण मग्न होकर स्तम्भित हृदय होगये। आपने आनन्दाधिक्य से अपने को नहीं जाना। प्रियवस्तु के लाभ होने पर मनुष्यों की कोई विचित्र ही गति होने लगती है ॥४७॥

पपात तस्योपरि पुष्पवृष्टिस्तदा दिवौकः करमुच्यमाना।
जयध्वनिः सोत्सवमुल्ललास समं तदा चानकदुन्दुभीनाम् ॥४
उस समय देवताओं के हाथों से गिरे हुए पुष्पों की वृष्टि श्रीकृष्ण के ऊपर होने लगी। अनेक दुन्दुभियों के साथ आनन्द जय ध्वनि का सर्वत्र प्रचार हुआ ॥४८॥

समन्ततः कोमलकाकली च, तदा जजृम्भे शुककोकिलानाम्।

श्रुत्वा च तां माधवमाविलोक्य, हृष्टा गणा गोपविलासिनीनाम् ॥४६

उस समय शुक-कोकिलों का कोमल मनोहर आलाप सर्वत्र छा गया। गोपविलासिनियों का समाज उसे सुनकर तथा श्रीकृष्ण का दर्शन कर प्रसन्न हुआ ॥४६॥

मन्दमन्दमुखनिहितपद्मा, सुन्दरीवदनपद्ममलिन्दः ।
हर्षयन् पथि यथोचितभावै, र्नन्दमन्दिरमवाप मुकुन्दः ॥५०॥

सुन्दरीगण के वदन-पद्म के भ्रमररूप मुकुन्द, मार्ग में यथोचित भावों से सबको प्रसन्न करते हुए मन्दगति से नन्दमन्दिर में पहुँचे ॥५०॥

मणिप्रकरबन्धुरीकृतनवीनहेमात्मकै,
ध्वंजावलिविराजितै शिखरसंचयै मंण्डितम् ।
प्रफुल्लमिव कान्तिकोमललताप्रसूनव्रजं,
ददर्श मणिमण्डपैरतितरां गृहं भूषितम् ॥५१

आपने मणियों से सुन्दर नवीन स्वर्णमय ध्वजायुक्त शिखरों से भूषित, कोमल लता पुष्पों से सुशोभित, मणिमय मंडपों से अत्यन्त मनोहर एक गृह देखा ॥५१॥

नन्दमन्दिरपुरन्दरपुत्रः, सुन्दरो हृदयकन्दरशायी ।
प्रीतिरीतिपरिपाकभरात्तै, रीक्षितो निजगृहे विरराज ॥५२ ॥

व्रजमन्दिर पुरन्दर के नन्दन, मनोहर, हृदयविलासी, परिपाक अतिशय प्रीतिरीति से लभ्य श्रीहरि अपने उस गृह में विराजमान हुए ॥५२॥

त्यक्तदेहगृहकृत्यकलापा मत्तचित्तधृतकृष्णविलासा ।
नाशकन् हरिमहो हि विहातुं गोदुहो वसुमिवातिदरिद्रः ॥५३॥

गोपगण देह-गेह-क्रियादि सबका परित्याग कर मत्तचित्त हृदय में श्रीकृष्ण के विलासों को धारण कर अतिदरिद्र के धन की भाँति श्रीकृष्ण को परित्याग करने में असमर्थ हुए ॥५३॥

धामे नंद: पुलकिततनुर्दक्षिणे श्रीयशोदा,

वृद्धा गोपास्तदनु सरसाः सन्मुखस्था: सखायः।

श्रीदामाद्यास्तदनु परितोऽन्ये च गोपाल पूंजा,

राधा स्त्रीणां सदसि सुभगा मध्य देशे मुकन्द:॥५४॥

वामभाग में पुलकित शरीर श्रीव्रजराजनन्द, दक्षिण में श्री-यशोदा, उनके पीछे सरस वृद्धगोपसमूह, आगे श्रीदामादि सखागण, उनके पीछे अन्य सब गोपसमाज, किंचित् दूर में स्त्री समाज में श्रीराधा तथा सबके बीच में मुकुन्द विराजमान हुए ॥५४॥

बिलोक्य तत्सभाशोभां हर्षितान्तरलोचना।

नन्दमाहु: फुल्लबक्त्रा वृद्धा गोष्ठनिवासिनः ॥५५॥

उस शोभायमान सभा का दर्शन कर गोष्ठवासी वृद्धगण हर्ष हृदय, तथा प्रसन्ननयन तथा प्रफुल्लमुख होकर नन्द से कहने लगे ॥५५॥

बहूनतिक्रम्य दिनान् कथंचिद् दृष्टा स्वभाग्येन सखे सभा ते।

अस्माभिरिन्दीवरलोचनस्ते पुत्रश्चिरं जीवतु कृष्ण एषः ॥५६॥

हे सखे ! आज बहुत दिनों के पश्चात् हम सबने अपने सौभाग्य-वश तुम्हारी इस सभा का अवलोकन किया है । तुम्हारे नील-कमल नयन वाला यह पुत्र कृष्ण चिरंजीवी हो ॥५६॥

पूर्वं बभूवु: स्थिरजङ्गमाश्च ये दुःखदास्ते सुखदा नृपाद्य।

जातु नरं कोऽप्यनुकूलदैवं त्रिविष्टपे दुःखयितुं समर्थ: ॥५७॥

हे राजन् ! पहले स्थिर जंगम जो सब हम सबके लिए दुःख-दायी थे वे सब आज सुख देने लगे। दैव अनुकूल मनुष्य को दुःख देने में कौन समर्थ होता है ? ॥५७॥

चुलुकितमिव दुःखं जातमद्य व्रजस्य,

पुलकितमिव सौख्यं माधवस्य प्रसादात्।

मुकुलितमिव नूनं भाग्यमस्मज्जनस्य,
तव तनयमृते हा का गति गोंकुलेऽभूत् ॥५८॥

आज ब्रज का दुःखसमूह नष्ट होगया है अर्थात् अगस्त्य जी के द्वारा समुद्र पान की भाँति दुःखों का शेष होगया है । श्री-माधव की दया से ब्रज के सुख फिर से अंकुरित हुए हैं । निश्चय ही हम सबका भाग्य खिल उठा है । अहो ! तुम्हारे पुत्र के बिना वज की क्या दशा नहीं होगयी थी ? ॥५८॥

इत्थं तदा निगदितः पशुपालवर्यैं युँ काकमेव कृपया तनयोऽयमाप्तः ।
सन्मानयन् गुणवतोरितिनंदः भूयो
गाभूषिता मणिगणैः प्रददौ द्विजेभ्यः ॥५९॥

श्रेष्ठ गोपों से इस प्रकार सन्मानित हो ब्रजराज ने कहा—"तुम सबकी कृपा से ही यह पुत्र मिला है ।" ऐसा कहकर मणियों से भूपित अनेक गौऐं, ब्राह्मणों के लिये दान दीं ॥५९॥

मत्वा पुनर्जन्मवदर्भकस्य तदा यथायोग्य मलंचकार ।
दानैरुदारो ब्रजनाथनन्दो वन्धून् द्विजान् मान्यजनांस्तथान्यान्॥६०॥

पुत्र के जन्म समय की भाँति उदार हृदय ब्रजराज ने पुनः ब्राह्मणगणों, अन्य मान्यजनों के लिये प्रचुर दान दिया ॥६०॥

पप्रच्छ तं पुण्यभरा यशोदा त्यक्त्वा पुरीं ते कीतचिह्नानि ।
गतानि मार्गे कुशलं स्वकीयं वदान्यवार्ता वद तत्र जाता ॥६१॥

पुण्यवती यशोदा पूछने लगीं—हे पुत्र ! कहो द्वारकापुरी छोड़ कर मार्ग में तुम्हें कितने दिवस लग गये? मार्ग में तुम्हारा कुशल तो रहा ? वहाँ और कुछ वार्त्ता हुई हो, तो उसे सुनाओ ॥६१॥

रामः किमास्ते ससुखं मुकुन्दस्तेऽन्यानि किं वान्धवसञ्चयानि ।
तदा हरी रामकृतप्रणामंजगाद तस्यै सुखदान्यवार्ता ॥६२॥

हे मुकुन्द ! बलराम मधुपुरी में कुशल से तो है ? तुम्हारे अन्य वन्धुजन आनन्द से हैं ? उस समय श्रीहरि ने राम के द्वारा

किये हुए प्रणाम का निवेदन कर उनकी अन्य वार्त्ता से प्रसन्न किया ॥६२॥

नन्दोऽपि पप्रच्छ शनैर्मुरारिं सुखं यदूनां वसुदेवकस्य ।
किन्न स्मरन्ते समये कदापि सम्प्राप्तराज्या यदवः स्वबन्धून् ॥६३

नन्द ने भी धीरे धीरे यादवों की तथा वसुदेव जी की कुशलता उनसे पूछी। क्या राज्यपद प्राप्त यादवगण कभी हम सब निज बन्धुओं का स्मरण करते हैं ? ॥६३॥

तदा सखायः सुबलांशुकाद्या ऊचुः सखे पूर्वकृता च केलिः।
त्वया किमासीदकृतप्रयत्ना सा विस्मृता नन्दनृपेन्द्रसूनोः ॥६४॥

उस समय सुबल-अंशुकादि सखाजन "हे नन्दनन्दन! क्या तुम पहले की हुई सुखमय क्रीड़ा को भूल गये?" इस प्रकार पूछने लगे ॥६४॥

यथोचितैस्तान् किल सच्चकार सद्भाषितैर्मिष्टतरैर्मुरारिः।
ससंभ्रमं सोत्कलिकोऽब्रवीत् सः गावः सुखं सन्ति ममात्यभीष्टाः॥६५॥

श्री मुरारी यथोचित मधुर वचनों से उनको सन्मानित करते हुए आदर उत्कण्ठा के साथ "अतिप्रिय गौऐं सुख से तो है?" ऐसा पूछने लगे ॥६५॥

ता दर्शय त्वं च जवेन मातस्तदाब्रवीत् सा हरिणेति पृष्टा।
पुरा कुरु त्वं लघुभोजनं हे गोविन्द यत् क्षुध्यति पान्थकं तत् ॥६६॥

हे मात! तुम पहले उन्हें हमें शीघ्र दिखाओ। इस प्रकार श्री हरि के कहने पर वह यशोदा कहने लगी, हे गोविन्द! तुम पहले कुछ भोजन करो। क्योंकि मार्ग में तुम को क्षुधा लगी होगी ॥६६॥

मातः कथं वक्ति न सौरभेयी विलोकनं योग्यमृते स्वकृत्यम्।
निशम्य गोपालवरोचितं तद् वचः प्रसन्नाः पशुपाश्च सर्वे ॥६७॥

हे मात ! आप क्यों नही बोलती हैं ? भोजन तो पीछे कर सकता हूँ पहले गौओं को देखना उचित समझता हूँ। इस प्रकार गोपाल के मनोहर उचित वचन को श्रवण कर समस्त गोप प्रसन्न हो गये ॥६७॥

करे गृहीत्वा तनयं तदा मुदा गोष्टान् ययौ नन्दनृपस्य भामिनी ।
तं दर्शयामास पुरा स्वपालिता गा विप्रलंभज्वरजीर्णविग्रहाः ॥६८॥

उस समय नन्दराज की रमणी यशोदा आनन्द के साथ पुत्र का हाथ पकड़ कर गोष्ठ के लिये गईं तथा वियोगज्वर से जीर्ण शरीर, निज पालित गौओं को दिखाने लगीं ॥६८॥

विलोक्य ता अग्रचरं स्वरक्षकं मुकुन्दकुन्दद्युतिदन्तदीधितिम् ।
तमाह्वयन्त्यस्त्वरितं समुत्थिता हंवाविरावैरिव वीक्षिता जनैः ॥६९॥

वे सब गौ, निज रक्षक, अग्रगामी, कुन्द क्रान्ति की भांति मनोहर दन्त वाले मुकुन्द को हम्वारावों (हुँकारों) से आह्वान करने लगीं ऐसा सबने देखा ॥६९॥

प्रत्येकमश्रुप्रसराम्बुजाक्षः कृष्णश्च ताः सादरमालिलिंग ।
तास्तस्थिरे कृष्णवपुर्लिहंत्यः प्रीतिं हरौ को न करोति लोके ॥७०॥

श्रीकृष्ण अश्रुधारा से मुख को भिगा कर आदरपूर्वक प्रत्येक को आलिंगन करने लगे तथा वे सब उनके शरीर का लेहन करती हुईं विराजमान हो गईं। पृथ्वी में हरि के लिये कौन प्रेम नहीं करता है ? ॥७०॥

निवर्तयित्वा व्रजवासिनः सा सस्वात्मजा मंदिरमाजगाम ।
स्नेहेन कृष्णं तनयं मनोज्ञैः सम्भोजयामास सुमिष्टभोज्यैः ॥७१॥

वह यशोदा वृजवासियों को अपने अपने घर पर विदा कर पुत्र के साथ अपने मन्दिर में आईं तथा स्नेह के साथ मनोहर मिष्ट भोजनों के द्वारा पुत्र श्री कृष्ण को भोजन कराने लगीं ॥७१॥

कृष्णोपि भोज्यान् बुभुजे प्रसन्नो मात्रा निजाग्रे परिवेशितांस्तान् ।
नानाकथाभीरचयन् स्वमातुरानन्दमिन्दीवरपत्रनेत्रः ॥७२॥
नीलकमल पत्र की भांति मनोहर नयन वाले श्री कृष्ण माता के द्वारा सामने परिवेशित उन भोजनों को ग्रहण करने लगे ॥७२॥

प्रक्षाल्य हस्तौ मुखशुद्धिकामो भुक्त्वा च पत्रं नवनामवल्याः ।
मात्राज्ञया निद्रितपद्मनेत्रः शय्यालयं प्राप मणिप्रदीपम् ॥७३॥
आपने हाथ धोकर मुख शुद्धि के लिए ताम्बूल पत्र का भोजन किया तथा माता आदेश से विश्राम करने के लिये मणिप्रदीप से शोभित शय्यागृह को पधारे ॥७३॥

नन्दः शताङ्ग (१ निजमंदुरायां संस्थापयित्वा हरितान् हयेभ्यः ।
तृणान्नधान्यान् घृतजादियोग्यान् अभोजयत्सारथिनं पदातीन् ॥७४॥
बृजराज ने अपने महल के भीतर यथा स्थान पर रथ को रखकर हरे रंग के घोड़ों को तृणादि भोजनों के द्वारा तथा सारथी-पदातिकों को नानाविध घृतोत्पन्न भोज्यों के द्वारा परितृप्त किया ॥७४॥

कृष्णः शरच्छीतमरीचिशुक्ले तल्पे विकल्पेन परिच्छदानाम् ।
विराजमाने निजदासवर्गे संवाहिनीभूतपदः शुशोभ ॥७५॥
श्रीकृष्ण शरत कालीन चन्द्रमा की भाँति शुक्लवर्ण तथा नाना प्रकार भूषणों से शोभित शय्या पर अपने दासजनों से परिसेवित होकर शोभायमान हुए ॥७५॥

माता यशोदा निजगेहकृत्यान् निवर्त्य पुत्राननवीक्षणोत्का ।
जगाम तत्रैव निरीक्ष्य पुत्रं जगाद सुप्तोऽसि कथं न वत्स ॥७६॥
माता यशोदा अपने गृहकृत्य का समाधान कर पुत्र मुख देखने

(१)गजशाला

के लिये उत्कण्ठिता हो वहां गई तथा पुत्र को देखकर कहने लगीं। हे वत्स! तुम क्यों नहीं सोते हो? ॥७६॥

निद्राकृतिं सा तनयं स्वकीयमाश्रावयन् मिष्टतरानुदन्तान्।
ज्ञात्वाथ तं निद्रितनेत्रयुग्मं माता निजस्थानमवाप भूयः ॥७७॥

वह पुत्र का निद्रानुकरण देखकर मिष्ट वचनों को सुनाती हुई अपने स्थान पर फिर आने लगी। उस समय श्री हरि के नयन युगल मुद्रित हो गये थे ॥७७॥

श्रीराधिकासक्तमना मुकुन्दः सुष्वाप गेहे परिचारिकाढ्यः।
राधा स्वकीये च यथा स्रवंती परावरे कोकवरौ प्रतीरे ॥७८॥

श्री मुकुन्द राधिका में हृदय आसक्त होकर परिचारिकाओं से युक्त शय्यागृह में सोने लगे।

व्रजौकसः कृष्णवियोगदीना निशामनिन्दन् क्षणभग्ननिद्राः।
तमोऽभिभूतेषु कुतोदया स्यात् कालस्वरूपेषु मुहुर्वदन्तः ॥७९॥

व्रजवासीजन श्रीकृष्ण वियोग से व्याकुल होकर रात्रि की निन्दा करने लगे। तम से अभिभूत व्यक्ति में दया कहां हो सकती है, कालरात्रि कहां से आ गयी है इस प्रकार बार बार रात्रि की निंदा करते करते वे किसी प्रकार रात्रि बिता कर प्रभात के समय जागृति हुए ॥७९॥

नीत्वा कथंचिद्रजनीविभाते सोत्कंठचित्ता गतनन्दगेहाः।
मात्रा प्रबुद्धं दरशोणिताक्षं सालस्यदेहं ददृशुर्मुकुन्दम् ॥८०॥

उत्कण्ठित चित्त हो नन्दालय में उपस्थित हुए तथा माता के द्वारा जागृत, ईषत् रक्तनयन, आलस्य शरीर वाले मुकुन्द को देखने लगे ॥८०॥

जृंभोदयाक्रान्तमनल्पशोभं स्खलद्विलोलालकसंवृतं ते।
पुनः पुनस्तद्वदनं निरीक्ष्य प्रापुः प्रमोदं कविवागगम्यम् ॥८१॥

वे सब जृम्भा के उदय से आक्रान्त, प्रचुर शोभावाले, व्यति-

कान्त भूषण धारी उनके वदन का बारम्बार दर्शन कर कवि वाणियों से अगम्य अत्यन्त प्रमोद को प्राप्त हुए ॥८१॥

सदैव तं यद्यपि गोष्ठवासिनः पश्यन्ति नायान्ति तथापि तृप्तिम् ।
यतस्तदीयानुपमेयमाधुरी प्राप्नोति चित्ते यददृष्टपूर्वताम् ॥८२॥

यद्यपि गोष्ठवासी सर्वदा उनका दर्शन करते हैं तो भी तृप्त नहीं होते हैं। क्योंकि उनकी अनुपम माधुरी का यह बल है कि जो उसके दर्शन करने पर भी अदृष्टपूर्व्व की भांति प्रतीयमान कर देता है ॥८१॥

ये पूर्वं कृतकोटिसाधनचयैर्नीताः कथंचित्पुन-
गोष्ठौकोभिरहर्गणाः क्षणसमा जाताः परानन्ददाः ।
ते श्रीकृष्णकृपानुरक्तमनसां नित्यं मुकुन्दानन-
प्रेक्षा तच्चरितानुशीलनतया गोष्ठागते माधवे ॥८३॥

जिन्होंने पहले कोटि-कोटि साधन किये हैं वे सब ब्रजजन दिवस समूह को क्षणकाल की भांति अनुभव कर परानन्द में डूबे जाते है अर्थात् श्री हरि के दर्शनादि आनन्द से उनके लिये युगकाल भी क्षणकाल की भांति प्रतीयमान होता है। यह उनके भाव की विशेषता है। आज बहुत दिवसों के पश्चात् श्रीहरि ब्रज में आये हुए हैं। श्री कृष्ण भाव से अनुरक्त चित्त वाले वे सब उन के मुखचन्द्र का दर्शन कर केवल उनकी चरितावली का गान करने लगे ।।८३ ।

एवं गोकुलवासिनां खरशं विच्छेददावानलं,
दूरीकृत्य दयालुमंडलमणिर्लीलासुधावर्षणैः ।
यस्तान् प्रेमसुखाब्धिमध्यमनयद्भूयः स गोपीपतिः,
कैः सेव्यो भवले न मानसभुवि प्रेम्णा कथंचिज्जनिम् ॥८४॥

इस प्रकार दयालु शिरोमणि गोपीपति श्री हरि गोकुलवासि

के वियोग दावानल को लीलामृत वर्षण के द्वारा दूर करते हुए उनको प्रेम सागर के बीच में डूबाने लगे। हृदय भूमि में प्रेम का प्रादुर्भाव होने पर उसका कौन मनुष्य सम्मान नहीं करता है? ॥८४॥

श्रीगोविन्दमुनीन्द्रवन्दितपदद्वन्द्वारविन्दासव-
प्रोन्मत्ताखिलचित्तवृत्तिसुखदे सारंगसंमोदिते।
काव्ये नन्दकिशोरचन्दरचिते श्रीकीरदूताभिधे,
सर्गोऽयं नवमोऽगमन्मधुरिपोर्गोष्ठप्रयाणात्मकः ॥८५॥

इति सद्वृत्तमे श्रीमन्माध्वगौडेश्वराचार्य-सारस्वत द्विजकुल-भूषण-भागवतचन्द्र-श्रीमन्नन्दकिशोरप्रभुप्रणीते श्रीशुकदूतमहाकाव्ये श्रीकृष्णस्य गोष्ठप्रयाणात्मके नवमः सर्गः समाप्तिमगात्।

श्री गोविन्द के मुनिगण वन्दित चरण कमल युगल के मकरन्द पानोन्मत्त रसिक जनों की चित्तवृत्ति में सुखदायी, कौतुकपूर्ण, नन्दकिशोरचन्द्र के द्वारा विरचित इस शुकदूत नामक काव्य का मधुरिपू के गोष्ठागमन वर्णन रूप नवम सर्ग सम्पूर्ण हुआ ॥८५॥

"रथेनमथुरां गत्वा दन्तवक्रं निहत्य च।
स्पष्टं पाद्मे पुराणेऽस्य कृष्णस्योक्ता व्रजागतिः॥"

तद्गद्यं पद्यञ्च यथा (प०पु०, उ० ख० २७१। ७४-२६)

"कृष्णोऽपि तं हत्वा यमुनामुत्तीर्य्य नन्दव्रजं गत्वा सोत्कंठौ पितरावभिवाद्याश्वास्य ताभ्यां साश्रुसेकमालिङ्गितः सकलगोपवृद्धान् प्रणम्याश्वास्य बहुरत्नवस्त्राभरणादिभिस्तत्रस्थान् सर्वान् सन्तर्पयामास॥

कालिद्याः पुलिने रम्ये पुण्यवृक्षसमाचिते।
गोपनारीभिरनिशं क्रीडयामास केशवः॥
रम्यकेलिसुखेनैव गोपवेशधरः प्रभुः।
बहुप्रेमरसेनात्र मासद्वयमुवास ह॥"

—०—

अथ दशमः सर्गः समारभ्यते ।

अथ व्रजे गोपपतेः कृतस्थितेरित्थं विलासैः सुखयन् व्रजौकसः ।
निदाघतापज्वरसच्चिकित्सका प्रावृड्ऋतोः सा सुषमा समागमत् ॥१
तदनन्दर गोपराज के व्रज में व्रजवासियों को निज विविध विलासों से सुखी कराते हुए श्रीहरि निवास करने लगे। अब व्रज में निदाघ ताप ज्वर के चिकित्सक वर्षाॠतु की सुषमा विराजमान होने लगी ॥१॥

आवृण्वन्तोऽन्तरिक्षं प्रकटितचपलां चंचलां लालयन्तः,
केकीनुत्कण्ठयन्तः कलितकलकलात्कर्षकान् हर्षयन्तः ।
सिञ्चन्तश्चातकालीं किशलयरुचिरामार्तिमुत्सारयन्तो,
यत्रात्यन्तं स्वनन्तो जनमनसि मुदं वारिवाहा वहन्ते ॥२॥
जहाँ आकाश को आवृत, प्रकाशमान चपल विद्युत् को लालित, कलकल शब्द से मयूरों को उत्कण्ठित, कृषकों को हर्षित, किशलय रुचिवाली चातकों को सिञ्चित, आर्ति को उत्सारित करती हुई जलधाराएं शब्दों के द्वारा मनुष्यों के मन में आनन्द प्रदान कर बहने लगीं ॥२॥

कुर्वन् स्वच्छमरीचिमंडिततनून् भूमीरुहाणां गणा-
नुद्यत्तुंगतरंगसंगिततटान् पद्माकरान् वर्द्धयन् ।
चंडांशुद्युतिदीपितान् शिशिरयन् शैलेच्चशृंगस्थलान्,
निघ्नन् यत्र वनेषु दावदहना वर्षन्ति धाराधराः ॥३॥
वृक्षों के समूह को स्वच्छ श्याम कान्ति के द्वारा भूषित, ऊँचे तरंगों से युक्त तट वाले सरोवर समूह को वर्द्धित, सूर्य किरण से तपायमान पर्वत के उच्च शिखर स्थलों को शीतल तथा वनों में उत्पन्न दावाग्नि का निर्वापन करती हुई जलधाराएं बहने लगीं ॥३॥

धरा-सरसकारिणो धरधराश्च धाराधरा,
प्रवाल सुभगा धरा सुखधुरं धरावन्धुरा ।
धराभरणधोरणी धिननधारणा धारणा-,
वतीं व्रजनिवासिनां सरसयन्ति यत्रोज्वला: ॥४॥

जहां उज्वल, पृथ्वी को सरस करने वाली, प्रवाल से सुभगा पृथ्वी में सुखदान में धुरन्धर, मनोहर, पृथ्वी को उत्साहित करने में पण्डित, जलधाराएं व्रजवासियों की धारणा को बढ़ाती हुई सरस कराने लगीं ॥४॥

लज्जोत्कंठा सम रभसता हेतुनाषाढमासे,
स्वं गौरांगं क्वचिदपि तिरोधापयन् दर्शयंश्च ।
मेघात् पत्युर्नवघनरसप्राप्तिकामेव यत्र,
मध्या कान्ता तडिदपहरत्यन्तरागं हि तस्य ॥५॥

जहाँ मध्यानायिका 'आषाढ़ महीना है' अतः लज्जा तथा उत्कंठा के अत्यन्त वेग से प्रसमान हृदय होकर अपने पति से नव नव रस प्राप्ति की कामना करती हुई कभी अपने गौर शरीर को मेघ से छिपाती है कभी विद्युत् प्रकाश के कारण उसे छिपाने में असमर्थ हो जाती है। क्योंकि विद्युत् प्रकाश से उसके अंग-रागादि दिखने में आ जाते हैं ॥५॥

कूजत्केकामुखकलकलैः कामकेलिप्रदीपः,
पुष्पामोदाकुलनवलतासंचरच्चंचरीकः ।
उद्यद्विद्युत्परिचितघनाक्रान्तदिक्चक्रवालो,
वर्षाकालः प्रियविरहिणीमर्मकालस्तदाऽसीत् ॥६

उस समय वहाँ शब्द करने वाले मयूरों के मुख निर्गत कलकल शब्दों से कामक्रीडा को प्रकाशित करने वाला, पुष्पों से युक्त, चमकायमान विद्युत् से मेघाक्रान्त दिशाओं को प्रकाशित करने

वाला वर्षाकाल प्रिय से बिछुडी हुई विरहिणियों के मर्म्म को विद्ध करने लगा ॥६॥

कलितहरितपत्रे ग्रीष्मतापातपत्रे रुचिरखगपतत्रे पुष्पमालाविचित्रे ।
स्थगितमिहिरविंवे यत्र राजत्कदंबे स्फुटमधुनिकुरंबे चंचरीकाश्चरन्ति ॥७

जहां ग्रीष्मताप के छत्र रूप हरे हरे पत्र वाले, खगावलि से मनोहर, पुष्पों से विचित्र, सूर्य किरण को रोकने वाला, मकरन्दों से पूर्ण मनोहर कदम्ब वृक्ष में भ्रमरगण विचरण करने लगे ॥७॥

शब्दाडम्बरमानिशम्य परितो धाराधराणां पुनः,
श्रुत्वा चातकवर्यदूतनिनदान् भृंगोघवंदिस्तवान् ।
जाग्रत्पुष्पलतावितानसुषमां दृष्ट्वा बकालिध्वजं,
निस्त्रिंशद्युतिचंचलांगचपलां कादम्बिनीवाहिनीम् ॥८॥
तस्मात्प्रावृडमीक्ष्य भूमिपरुचिं युद्धांगणे व्योमनि.
तेनास्वीकृतदीप्तिसंचयपराभूतं च दृष्ट्वा ततः ।
वंधुं पद्मगणस्य बीरमपि तच्छंकाकुलाभ्यंतरा,
स्वेषां चापि सरोजबन्धुमननाद्धंसा द्रवंते भयात् ॥९॥
(युग्मकम्)

पुनः मेघों के शब्दाडम्बर का श्रवण, चातक रूप श्रेष्ठ दूतों का निनाद, भृंगरूप वन्दिजनों का स्तव, विकसित पुष्पलताओं के आवरण रूप वितान शोभा, वकपंक्ति रूप ध्वजा वाले कान्ति से चंचलांग चपला के शोभित धाराबाहिनी राजारूप वर्षा को देख कर हंसगण भयभीत हो भागने लगे। क्योंकि उन्होंने ऐसा सोचा है कि वर्षारूप राजा से आकाश रूप युद्ध भूमि पर कमलों के वन्धु वीर सूर्य सेनापति का पराभव हो रहा है। अब हम सब किस प्रकार ठहर सकते हैं। अतः यहां से भागना ही उचित है ॥८,९॥

देवे वर्षति शीकरैः सुखकरै यूथीलतामण्डपे,
सिक्ते पुष्पपरागविन्दुनिकरैर्यस्मिन् कुरंगीगणाः ।
स्थित्वा तं समयं नयन्ति ससुखं कान्तैः समं निद्रया,
दृष्ट्वा स्वप्रतिविंबमेवसलिले पश्यन्ति विश्वक्कद् ॥१०

मेघ देवता के द्वारा सुखकर जलकणों की वर्षा होने पर यूथीलता के मण्डप पुष्प पराग विन्दु समूह से सिक्त हो गया। जहां पर कुरंगीगण कान्त के साथ सुख पूर्वक निन्द्रासुख लेने लगीं। वे जल में अपने प्रतिविम्ब को देखकर चकित हो चारों ओर देखने लगी ॥१०॥

यस्मिन् स्वस्वसखीसमूहसुभगा सीमन्तिनीनां गणा,
हिन्दोलां रमणीयरज्जुवलितामारुह्य लीलाक्रमात् ।
यद्गायन्ति मघोनि वर्षति मुदा कण्ठैः पिकोत्कूजनै
स्तल्लोकै रहसि स्थितैः श्रुतिपुटैः सानन्दमापीयते ॥११॥

ज ां वर्षा के आरम्भ में अपनी सखियों के साथ भाग्यवती रमणियाँ, मनोहर रस्सी से युक्त हिन्दोला में आरोहण कर लीला पूर्वक गान करती हैं। वह गान कोकिलकंठ की भांति सब को मनोहर लगता है। जिसको वहां के समस्त लोग रहस्य स्थान में विराजमान होकर कर्णपुटों से पान करते हैं ॥११॥

ग्रीष्मव्याकुलविग्रहा मृगदृशो हर्म्योच्चभागं गता,
मेघाच्छन्नमरीचिमालिनि दिने यस्मिन् सखीभिः सह ।
चंचद्वायुविलोलिताचलसच्चैलस्फुटद्द्विभाः,
पश्यन्त्यो विविधच्छवीन् जलधरान् चिण्वन्ति लीलालसम् ॥१२॥

जहाँ मेघों से आच्छादित सूर्य किरण वाला दिवस में चंचलवायु से विलोलित अंचल वाले वस्त्रों से शोभित अंग कान्तिवाली मृगनयनियां ग्रीष्म से व्याकुल शरीर होकर गृह के ऊपर भाग में जाकर सखियों के साथ विविध छवि वाले जलधर समूह को

देखती हुई लीलालस को धारण करती हैं ॥१२॥

कुरंगवध्वो यवसाश्चरन्त्यो विहाय तान् वर्षति वारिवाहे।

शृण्वन्ति पानीयकणाभिपातजातं निनादं तरुपल्लवेषु ॥१३॥

मेघ के वर्षन होने पर जहां तृण पल्लवों में चरने वाली हरिणियां तृणभक्षणादि भूलकर जल कणों के अत्यन्त पतन जनित शब्द को सुनतीं रहती है ॥१३॥

नवीनशष्पोद्गमचारुवर्णाः स्थले स्थले सञ्चरदिन्द्रगोपाः।

विचित्रशाटीभ्रममत्रभूमि दधाति पांथेषु दिगंगनानाम् ॥१४॥

जहाँ जगह जगह नवीन शस्यों के उद्गम के द्वारा मनोहर इन्द्र-गोपकीट विचरण करते रहते हैं। जिस का दर्शन कर पथिकों के हृदय में दिशांगनाओं की पड़ी हुई विचित्र साड़ी का भ्रम उत्पन्न हो जाता है ॥१४॥

मिष्टोऽपि सच्चातककंठनादो वियोगिनीकर्णकटुत्वमाप।

प्रवृद्धपित्तज्वरजर्जरस्य मत्स्यंडिका मिष्टरसापि यद्वत् ॥१५॥

चातकों के मधुर कण्ठ नाद भी विरहिनियों के कर्णकटु हो रहे हैं। जिस प्रकार वृद्धिप्राप्त पित्तज्वर से जर्जरित मनुष्य के लिये मधुर रस वाली मिश्री सुखास्वाद रूप नहीं होता है ठीक उसी प्रकार उसे जानना चाहिये ॥१५॥

शिलोच्चयेभ्यः क्रमतोऽवतीर्ण स्वच्छाम्बुधाराध्वनिधोरणीभिः।

घनाघनध्वानसमानवाग्भिः प्रमोदयन्ते पथिकान्तरङ्गाः ॥१७॥

उच्च पर्वत के शिखरों से क्रमशः गिरती हुई स्वच्छ जलधारा मनोहर शब्द करती मेघध्वनि के समान कुछ बोलती हुई पथिकों को आनन्दित करती है ॥१६॥

क्वचित्पिशंगैः क्वचिदिन्दुसुन्दरैः कपिंजलाभैश्च विचित्रितैः क्वचित्।

क्वचित्क्वचिद्धूसरपाटलप्रभं रराज यस्मिन् घनसंचयैर्नभः ॥ ७॥

कहीं पीत कान्तियों से कहीं चन्द्र की भाँति उज्वलच्छटा से कहीं

जल की भांति कान्ति से, कहीं विचित्र रूप से, कहीं धूसर-पाटल मय प्रभाओं वाले मेघों से आकाश सुशोभित हो रहा है ॥१७॥

निरस्तनक्षत्रभरप्रभानि तमिश्रवृद्धिक्रमधूसराणि ।
निशामुखानीक्ष्य समुल्लसन्ति मनांसि यस्मिन्नभिसारिकाणाम् ॥१८॥

जहाँ अभिसारिका नायिकाओं के मन को नक्षत्रों से शून्य, अन्धकारों से धूसरित, निशामुख का अवलोकन कर उल्लास प्राप्त होता है ।१८॥

मंडूक-मंडलीनां निनदाः पल्वलसर्वतो-मुखेषु ।
उद्यानेषु च शब्दा जजृंभिरे चातकादीनाम् ॥१९॥

क्षुद्र क्षुद्र सरोवर के चारो ओर भेकों (मेंढ़क) के शब्द तथा उद्यानों में चातकादि के शब्द सोभायमान होते हैं ॥१९॥

रसालवाला सरसालवाला नवप्रवाला इव विप्रबालाः ।
रेजुर्मरालाश्च तदा कराला द्रवन्ति कालात्किल मेघजालात् ॥२०॥

जहां मराल गण मेघ समूह की भीषण गर्जना को सुन कर अत्यन्त भय भीत होकर इधर उधर भागने लगते हैं । उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि मानो रसाल, सरस, नवीन प्रवालधारी विप्रबाला, सर्वत्र विराजमान हैं ॥२०॥

सुरेश्वरः क्षीरसमुद्रमध्ये यस्मिन् श्रिया सेवितपादपद्मः ।
असेवत स्वां यमहीन्द्रभोगे तं को न सेवेत गृहे रसज्ञः ॥२१॥

क्षीरसागर के बीच में लक्ष्मी के द्वारा सेवित पादपद्म वाले सुरेश्वर श्रीहरि अनन्त शय्या में शोभित हैं । वे आज ब्रजवासियों के घर पर विराजमान हैं । अतः कौन एसा उनकी सेवा के लिये अग्रसर नहीं होगा अर्थात् सब ही सेवा के लिये अपने अवसर को देखते रहते हैं ॥२१॥

अच्छत्रिणो यान्त्यपि सातपत्रतां स्वदेशमायान्ति विदेशवासिनः ।
गच्छन्ति पूर्णत्वमपूर्णिता ह्रदा ऋतुप्रजेशे सरसे समागते ॥२२ ।

ऋतु प्रजाओं के पालक,सरस वर्षाऋतु के आगमन होने पर अछत्र-धारी छत्र धारण करने लगते हैं तथा विदेश में रहने वाले मनुष्य अपने घर में आ जाते हैं। इस ऋतु में अपूर्ण हृदय पूर्णता को प्राप्त हो जाता है ॥२२॥

कलापीनां कलापोऽयं मेघपुष्पस्रजान्वितम् ।
विलोक्य बन्धुमम्भोदमाह्वयन्ति रुतच्छलात् ॥२३॥

मयूरों का समाज मेघपुष्प की मालाओं से युक्त अपने बन्धु मेघ का दर्शन कर शब्द छल से आह्वान करने लगता है ॥२३॥

मेघोऽप्युत्तीर्य किञ्चित्तं निदाघविरहा-कुलम् ।
करोति कुशलप्रश्नं कृतगर्जनकैतवात् ॥२४॥

मेघ भी आकाश से किञ्चित् उतर कर निदाघविरह से व्याकुल उनको गर्जन छल से कुशल प्रश्न करता है ॥२४॥

शिखंडिनी यूथयुतः प्रमत्तो नवीननीलाम्बुददर्शनेन ।
केका मुखो विस्तृतचित्रपत्तो लास्यं लतांते कुरुते कलापी ॥२५॥

मयूरी-यूथ से युक्त मयूर नवीन नील मेघ के दर्शन से प्रमत्त होकर मुख में केका शब्द करता हुआ तथा विचित्र पंख का विस्तार के साथ लतान्तराल में नृत्य करने लगता है ॥२५॥

यत्रोल्लसन्ति हरिता हरिताप्रदेशा रेजुश्च येषु हरिणा हरिणायताच्यः ।
फुल्लप्रसूनकरुणाः करुणां दधाना दाने फलस्य हसिता हसिताभपुष्पैः२६

जहाँ हरे हरे वृक्षलताओं से प्रदेश समूह हरावर्ण धारण कर लेते हैं, जिन में हरिण की भांति चंचल नेत्र वाली रमणियाँ हरित-मयी हो जाती है। वृक्ष सब विकसित पुष्पों से सज्जित होकर मानो करुण भाव का धारण कर पुष्पों की कान्ति रूप हास्य के द्वारा फलदान में त्वरायुक्त हो जाता है ॥२६॥

मंदारकुंदार्जुन-नागरंगा मंदारविन्दक्रमुकादयो ये ।
रराज यस्मिन् विपिनव्रजस्तै रराजदर्कद्विजराजदीप्तौ ॥२७॥

जहां मन्दार, कुन्द, अर्जुन, नारंगादि वृक्ष तथा कमल बनराजी हरे भरे होकर विद्यमान है। वह व्रजभूमि आज उनसे सुशोभित होकर सूर्य-चन्द्र की कान्ति का खर्व करती हुई सुविलास करने लगी ॥२७॥

यद्दर्शनोद्दीपितपंचवाणा निरस्य सेतून् विलसत्तरंगाः ।
जवेन सद्योऽभिसरन्ति कान्तं समुद्रमुत्कण्ठितमानसावत् ॥२८॥

जिस शोभा का दर्शन कर प्रचुर काम उद्दीपन होने के कारण रमणियों की भांति नदियाँ उत्कण्ठित मना हो कर शीघ्र निज नाथ समुद्र से मिलने के लिये अभिसार करने लगीं ॥२८॥

शशाम यस्मिन् वनदाववन्हिरवर्द्धतानङ्गकृपीटयोनिः ।
वृक्षेषु सर्वेषु विकासवत्सु शुष्को भवत्कण्ठकवृक्षभेदः ॥२९॥

जहां वनभाग में दावाग्नि प्रशमित तथा हृदय क्षेत्र में अनंगाग्नि (कामाग्नि) की वृद्धि होने लगी। इस ऋतु में समस्त वृक्ष विकसित हुए परन्तु कंठकवृक्ष शुष्क होने लगा ॥२९॥

निवृत्तशश्वद्भ्रमणार्तिविघ्ना यस्मिन्निविष्टा नवशाद्वलेषु ।
वनेषु शष्पाणि चरंति गाव ऊधो भराक्रान्तनितंवविंवाः ॥३०

जहां वनों में स्तन भार से आक्रान्त गो समाज सर्वत्र भ्रमण करने से निवृत्त हो कर नवीन तृणांकुर युक्त भूमि पर विराजमान हो तृणभक्षण करने लगा ॥३०॥

श्यामायमानानि दिगंतराणि पश्यन् स्फुरच्चातकनादितानि ।
शृण्वन् रसज्ञा ऋतुराजलक्ष्मीं यस्मिन् प्रशंसन्ति मनोजमत्ताः ॥३१

जहां श्यामायमान दिशाओं देखकर तथा शोभित चातकों के निनाद को सुनकर काममत्त रसज्ञगण ऋतुराज की शोभा की प्रशंसा करने लगते हैं ॥३१॥

प्रपक्वजम्बूफलविस्खलद्भि रसातिरेकैर्वनभूमिभागाः ।
सिक्ता स्फुरत्पुष्पपरागपूर्णा गणास्तदासन्नवयूथिकानाम् ॥३२॥

जहां विशेष पके हुए जामन फलों से अत्यन्त टपके हुए रसधारा से वन के भूमिभाग सिक्त हो जाते हैं तथा यूथिकाओं के समूह शोभायमान पुष्प परागों से पूर्ण हो जाते हैं ॥३२।

वनोपवनसंचरच्चपलचञ्चरीकध्वनि-
धुरंधरपुरंदरप्रकटचापचुम्बीकृताः ।
विहंगकुलमंडलीकलकलै र्मनोहारिभिः,
प्रसन्नवदनाम्बुजा लसति यत्र दिग्देवताः ॥३३॥

जहां वन-उपवनादि में विचरणशील चपल भ्रमरों की ध्वनि तथा धुरन्धर इन्द्र के प्रकाशमान चाप (धनु) से चुम्बित होकर दिशारूपी देवता सुशोभित है। जोकि पक्षियों के मनोहर कल-कल शब्दों से प्रसन्न मुख कमल वाली है ॥३३॥

वायुर्घूर्णयति प्रभातसमये यस्मिन् घनान् पुष्करे
ते चापि प्रियविप्रलंभविधुरं सीमन्तिनीनां मनः ।
तच्चापीन्द्रियवर्गवृत्तिनिकरांस्ते घूर्णयन्तस्तनुं
मूर्च्छां संजनयन्ति कोमलधियां ग्लानिं नयन् जीवनम् ॥३४॥

जहां प्रभात समय में वायु, मेघों को आकाश में इधर उधर घुमाता रहता है तथा वे मेघगण प्रिय वियोग से विधुर सीमन्तिनियों के मन और उनकी इन्द्रीयों की वृत्तियों को घूर्णित कर देते हैं। कोमल बुद्धि वाली उन रमणियों के जीवन में ग्लालि उपस्थित करते हुए तथा शरीर का घूर्णन कराते हुए मूर्छित करने लगते हैं ॥३४॥

कस्यांचित्सुमुखी तमोभरमिलद्रात्रौ समुत्कंठिता
कस्तूरीरसपंकलिप्तविलसद्देहा दृगभ्यंजना ।
तादृग्वेशविराजितैः परिजनैर्नीलाम्बरालम्बिनी
श्रीराधाभिससार सागरमिव स्वर्वाहिनी तं वने । ३५॥

अन्धकार पूर्ण किसी रात्रि में सुमुखी राधा प्राणवल्लभ श्री-

हरि से मिलने के लिये उत्कण्ठित होकर कस्तूरी रस पंक से लिपांगी हो नेत्रों में काजल लगाकर उस प्रकार वेशों से विभूषित परिजनों के साथ नीलाम्बर पहने हुई "समुद्र के लिये सुरधनी गंगा के गमन की भांति अभिसार करती है ॥३५॥

मंदमंदकृतनूपुररावा याननिर्जितमतंगजशावा ।

लक्षिता न पथि सुन्दरसंकेतीकृतं विपिनमाशु जगाम ॥३६॥

निजगमन से गजशावक को पराजित करने वाली वह राधा मन्दमन्दनूपुर बजाती हुई मार्ग में किसी के द्वारा लक्षित न हो कर संकेत वन के लिये जाने लगी ॥३६॥

यानचंचलनितंबसुवेणी हारहास्यसुभगस्तनयुग्मा ।

सन्नितंबभरसूचकमध्या स्वेदशीकरमुखी विरराज ॥३७॥

गमन के समय आप का नितम्बदेश तथा मनोहर वेणी चञ्चल होने लगी, हार की कान्ति-शोभा से दोनों स्तनों ने मनोहर सुभगता को धारणकर लिया तथा नितम्बभार के ऊपर मध्य देश सुशोभित था। घर्माम्बुमुखी आप संकेतकुंज में जाकर विराजित हुईं ॥३७॥

चन्द्रकांतविरहेण विह्वला याति तं स्वपतिमेव मार्गितुम् ।

किं निशैव धृतविग्रहा जवाद्वा तमाललतिकैव जंगमा ॥३८॥

क्या निज कान्त चन्द्रमा के वियोग से विह्वल हो कर अपने पति को ढूढने के लिये रात्रिदेवी ने विग्रह धारण कर शीघ्र तमाल लतिका छल से जंगम भाव का धारण कर लिया है ? ॥३८॥

कृष्णसारहरिणीयमहो किं किं मनोज्ञगमना करिणीयम् ।

विद्युदेव किमु नीलपयोदेनावृता च किमहो वनदेवी ॥३९॥

अब उत्प्रेक्षा द्वारा श्री राधिका का वर्णन करते हैं। क्या यह कृष्ण सार हरिणी है ? अहो ! क्या यह मनोहर गमन वाली हस्तिनी है ? अथवा क्या नीलमेघ से आवृत विद्युत है ?

किम्वा नीलाम्वर धारिणी बनदेवी है ? ॥३९॥

वार्षिकी घनघटा किमरण्ये पुष्करान्निपतिता च पुनस्तम् ।

गन्तुमाकुलधिया न समर्था भ्राम्यति स्वगणसंगविमुक्ता ॥४०॥

क्या वर्षा सम्बन्धी घनघटा फिर आकाश से अरण्य में गिरने लगी है ? वह फिर क्या आकाश में जाने के लिये असमर्थ हो कर व्याकुलचित्त से स्वगण संग से रहित हो कर भ्रमण कर रही है ? ॥४०॥

इत्थमेव कविवर्णनयोग्या मन्दमन्दगमनं कुरु राधे ।

मा करोतु हृदि वीक्षकशंकां मेघसंघकवलीकृतमभ्रम् ॥४१॥

हे राधे ! मन्दमन्द गमन करो, दर्शकों के हृदय में इस प्रकार कवि वर्णन योग्य शंका को मत उठाओ। देखो, आकाश मेघों से ग्रसित हो गया है ॥४१॥

इत्थमालिभिरतिप्रतिबुद्धा मन्मथोत्कलिकयाकुलचित्ता ।

नास्मरद्विधुमुखी स्वमहो यत्तत्र कारणमलौकिकरागः ॥४२॥

इस प्रकार सखियों के द्वारा अत्यन्त समझाने पर भी वह राधा काम-उत्कलिका से व्याकुल चित्त हो कर अपने को विस्मरण करने लगी। अलौकिक राग ही उसका कारण था ॥४२॥

वृन्दावनं विपुलपुष्पपरागसिक्तं वृन्दादिभिः परिजनैः कृतसेवनं सा ।

वृन्दारकाभिलसितं नवमंजुकुंजवृन्दावगाहितमनल्पसुखं विवेश ॥४३॥

वह राधा विपुल पुष्पपरागों से सिक्त, वृन्दादि परिजनों से सेवित, देवताओं से अभिलशित, नवीन मनोहर कुंजों से अवगाहित, परिपूर्ण सुखमय वृन्दावन में पंहुचने लगी ॥४३॥

मल्लीभिर्मालतीभिर्मधुकरनिकरैरर्चिताभिर्लताभिः

माध्वीकोन्माधवीभिः कुसुमकवलितैः केतकीनां कलापैः ।

यूथीभिर्यूथभूतैः सप्रियसहचरैश्चारुचाम्पेयवृक्षै-

रंभाभिः स्तंभिताभिः कलितफलदलैर्भ्राजितं दाडिमैश्च ॥४४॥

वह वृन्दावन मल्लीलताओं से, मालतियों से, मधुकर समूहों से अर्चित लताओं से, कुसुमों से युक्त माधवीलताओं से, केतकियों के समूह से, यूथ रूप (झुण्ड रूप) यूथियों से, प्रियकर झिण्टि वृक्षों से युक्त चम्पावृक्षों से, स्तम्भित तथा फलित रम्भावृक्षों से, फलित दाडिमियों से शोभायमान था ॥४४॥

यत्रत्यान्नीपवृक्षान्निविडतरदलध्वान्तमैत्रीप्रकाशान्
व्यूहा धाराधराणां निजसुसहचरभ्रांतिसंदिग्धचित्ताः ।
आरोढुं यत्नवन्तस्तनितकलकलैः प्रश्नवन्तश्च तेषु
संलक्ष्यन्ते विहंगैर्व्यवहृतिनिपुणा मित्रवद्रात्रिकाले ॥४५॥

जहां रात्रिकाल में मेघों के व्यूह, पत्रों से निविड तर अन्धकार मैत्री प्रकाश करने वाले नीपवृक्षों में आरोहण करने के लिये यत्नशील होते हैं, उस समय कलकल नाद से पूछने वाले विहंगों के द्वारा दृष्ट होकर मित्र की भांति वन जाते है ॥४५॥

यत्रत्या सिन्धुवस्त्रा नवमृदुलहरित् कन्दलैः कन्दमूलैः
स्निग्धा कासारवीची प्रसरितसलिलैः पंकिलाऽलंकृतास्ति ।
रोमांचैः सिंचितांगी नयनजलधरैरश्रुधारावलीभी-
राजन्ती कृष्णभक्तोत्तमतनुरिव हृत्प्रेमभावप्रकाशात् ॥४६॥

जहां हृदय में प्रभू भाव प्रकाश के कारण नवीन कोमल हरे हरे कन्दमूलों से स्निग्ध, सरोवर की तरंगों के द्वारा प्रसारित जल से पंकिल, रोमाञ्चों से अलंकृत, नयनजलधारी अश्रुधाराओं से सिञ्चितांगी, होकर श्रीकृष्ण के उत्तमभक्त के शरीर की भांति विराजमान है ॥४६॥

वल्लीत्यागं द्विरेफा विदधति न निशायामपि प्राप्तनिद्रा
गंधांधा वल्लरीणां कृपणजनधया स्वीयवित्तस्य यद्वत् ।
चौरोयं गन्धवाहस्तदपि परिमलं ताननादृत्य मुष्णा-
त्यस्माद्धेतोः स्वचौरग्रहणसकुतुकाश्चंचरीका भ्रमन्ति ॥४७॥

रात्रि काल में निद्रित होने पर भी भ्रमरगण लताओं के गन्ध से अन्धे होकर "अपने धन में कृपण जन की भांति उन लताओं का त्याग नहीं करना चाहते हैं। "यह गन्धवाहक पवन चोर है, हम सबका अनादर कर गन्ध रत्न की चोरी करता है, हम आज उसे पकड़ लेंगे" ऐसे विचार से वे सब सदैव लताओं के चारो ओर घूमते रहते हैं ॥४७॥

ज्ञात्वा वर्षानृपस्यागमरभसतां वल्लरीभिः परागैः
सिक्ताश्चारण्यवीथ्य: किमु कुसुमभरैरास्तृता स्ताश्च ताभिः।
आरब्धं गानमिदिन्दिरवरनिकरैर्गायकैरेव तस्मात्
तच्छ्रुत्वैवातिनृत्यं व्रतति सुततिभिः कर्तुमारभ्यते किम् ॥४८॥

वर्षा रूप नृप के शीघ्र आगमन को देखकर लताओं ने परागों से अरण्य-पथों को सिञ्चित कर कुसुमों से जगह जगह शय्या बनाई हैं। फिर उन्होंने भ्रमर गायकों के द्वारा मंगलगान का प्रारम्भ करा दिया। भ्रमरों के उस गान को श्रवण कर फिर लताओं ने अत्यन्य सुन्दर नृत्य का आरम्भ कर दिया ॥४८॥

गर्जन्मेघनिनादमत्तशिखिनां कोलाहलः सर्वतो
मण्डूकध्वनिधोरणी च विमला झिल्ली नवीनस्वन।
उत्कंठाभरतो जवेन गमनस्फीतं तदानीतनं
राधाकंकणकिंकिणीक्वणमहो तस्तार कीं शंकया ॥४९॥

गर्जित मेघ निनाद से उन्मत्त मयूरों के कोलाहल, मण्डूक की पवित्र बिशाल ध्वनि, तथा झिल्ली के नवीन शब्द उस समय उत्कण्ठा वेग से शीघ्रगमन कारिणी राधिका की किंकिणि के शब्द को भय से विस्तारित करने लगी ॥४९॥

भावानुरक्तेन पथि व्रजंत्याश्चित्तेन तस्याः स्मरदेवतायाः।
अदृश्यत ध्वान्तमिषेण सर्वं कृष्णस्वरूपं जगदिंदुमुख्याः ॥५०॥

भावानुरक्त चित्त से मार्ग में जाने वाली, कन्दर्प की देवी, चन्द्र-

मुखी उस श्रीराधा को समस्त अन्धकार कृष्णवत् दिखाई देगें ॥५०॥

क्वाहं क्व गच्छामि किमत्र हेतुर्विचारशून्यापि तदा ययौ सा ।
कृष्णप्रियाकृष्टतयानुरागगुणेन सत्पुत्तलिकेव बद्धा ॥५१॥

उस समय वह राधा "मै कहां हूँ, कहां जा रही हूँ, जाने का हेतु क्या है" इस प्रकार विचार शून्य होकर जाने लगी। क्यों कि वह प्रिय कृष्ण के द्वारा आकृष्टा हो कर पुत्तलिका की भांति अनुराग रस्सी से बन्ध गयी ॥५१॥

पुनः प्रिया पंकिलाभूमिमाक्रमन् जिघ्रन्मनोहारिसुगन्धसंहतिम् ।
कदम्बकिञ्जल्करसानुरञ्जितं संकेतकुंजं समवाप राधिका ॥५२॥

उसके पश्चात् प्रिया श्रीराधा पंकिल भूमि को पार कर मार्ग में मनोहर सुगन्धि समूह का आघाण करती हुई कदम्ब किञ्चल्क रसों से रञ्जित संकेत कुंज में पहुचने लगी ॥५२॥

विचित्रपुष्पद्रुमसत्पलाशै राच्छन्नमिन्दिन्दिरबृन्दजुष्टम् ।
सुसंस्कृतं काननदेवताभिर्विलोक्य सानन्दमवाप कुंजम् ॥५३॥

वह राधा विचित्र पुष्पों तथा वृक्षों के उत्तम नवीन पत्रों से आच्छन्न, भ्रमर वृन्द से सेवित, वनदेवताओं के द्वारा सुसंस्कृत कुंज को देख कर आनन्दित हो गई ॥५३॥

आयाति कृष्णोऽपि कृतप्रयाणो गृहादितिव्याहृतिभिस्तदा ताम् ।
आश्वासयन्ती समलंचकार सौरभपुष्पाभरणैश्च वृन्दा ॥५४॥

"श्रीकृष्ण आ रहे हैं, उनका गृह से प्रयाण हो गया है" इस प्रकार आश्वासन देती हुई वृन्दा ने सुगन्धित पुष्पों के आभरणों से राधिका को भूषित किया ॥५४॥

कदम्बराजत्कुसुमावतंसौ तत्कर्णयो र्गन्धमदान्धभृंगौ ।
सीमंतदेशे च नवीनमल्लीपुष्पं तदीयोरसि पद्ममालाम् ॥५५॥

वृन्दा ने उनके दोनों कानों में गन्ध से भ्रमर को उन्मत्तान्ध

करने वाले कदम्ब पुष्पों के अवतंस पहराया तथा सीमन्त देश में नवीन मल्लीपुष्प और वक्षस्थल में पद्ममाला का धारण कराया ॥५५॥

यूथीलतापुष्पभरं च केशे पुष्पांगदौ तद्भुजयोर्दधार ।
स्तनाग्रभागे रचयत्प्रसूनरसेन वृन्दा नवपत्रवल्लीम् ॥५६॥

उसने फिर केश में यूथिलता के पुष्प, भुजाओं में पुष्पों के अंगद, स्तनाग्र में पुष्परसों के द्वारा नवीन पत्रवल्ली को धारण करवाया ॥५६॥

निवारयंती श्रमशीकरं मुखस्थितं सखी चारुपटांचलेन ताम् ।
काचित्प्रसूनव्यजनेन राधिकामवीजयच्चंचलचारुकंकणा ॥५७॥

कोई रमणी मनोहर पटांचल के द्वारा राधिका के मुख स्थित घर्म विन्दु को पोंछती हुई प्रसून छल से व्यजन करने लगी । वह सखी चंचल मनोहर कंकण धारण से शोभायमान थी ॥५७॥

काचिच्च पंकेरुहकोमलेन करेण मार्गश्रमसापनेतुम् ।
स्वजानुविन्यस्ततदीयपादा संवाहनेनांघ्रियुगं सिषेवे ॥५८॥

कोई सखी राधिका के मार्गश्रम अपसारणार्थ अपने कमल-कोमल हाथों से जंघा के ऊपर उन के चरण रख कर उनका संवाहन करने लगी ॥५८॥

निजद्विजद्योततमिस्रनाशं कुर्वन्जगादेन्दुमुखी निकुंजे ।
तल्पं द्रुतं कल्पय भूषणे मे जहि प्रयासं मृदुपुष्पपत्रैः ॥५९॥

उस समय चन्द्रमुखी राधिका अपनी दन्तावली की कान्ति से अन्धकार नाश करती हुई सखी से कहने लगी कि निकुंज में शीघ्र कोमल पुष्प पत्रों के द्वारा शय्या रचना करो, मेरी भूषण रचना में प्रयास करना छोड़ दे ॥५९॥

क्षणे क्षणे विस्फुरते ममैतद् वामांगमत्युत्तमसौख्यकारि ।
अथावृणोद्ध्वान्तमरण्यदेशं भविष्यते मे प्रियसंगमोऽस्मात् ॥६०॥

हे सखि ! देख यह मेरे अत्यन्त सुखदायी वामांग क्षण क्षण में फड़क रहे हैं। इधर अन्धकार ने अरण्य देश को घेर लिया है। अतः मेरा मनोहर प्रियसंगम होगा ॥६०॥

सख्यश्च वाक्यश्रवणेन हृष्टा निकुंजसंस्कारपरा बभूवुः ।
वृन्दाऽथ तल्पं नवपल्लवानां पुष्पोपधानैः समलंचकार ॥६१॥

सखियां राधिका के वाक्य को श्रवण कर प्रसन्न हो निकुंज संस्कार करने लगीं। तदनन्तर वृन्दा ने पुष्पों के उपधानों से नवीन पल्लवों की शय्या बनादी ॥६१॥

तदा सखीभिर्मुकुरे समर्पिते विलोक्य सा स्वप्रतिविम्बमद्भुतम् ।
कन्दर्पदर्पोद्वहचारुविग्रहा निजप्रियस्येक्षणलर्षतां ययौ ॥६२॥

उस समय सखियों के द्वारा मुकुर (दर्पन)धर दिये गये। आपने उसमें अद्भुद् प्रतिविम्ब का दर्शन किया। कन्दर्प दर्प धारण से मनोहर विग्रहवाली वह श्रीराधा अपने प्राणनाथ कृष्ण के दर्शन लालसा से उत्कण्ठिता हो गयी ॥६२॥

आयाति यावद्व्रजराजसूनुस्तावत्क्षणं कोटियुगेन तुल्यम् ।

मेने न तच्चित्रमहो भवेऽस्मिन्प्रेम्णः गतिर्लौकिकवागगम्या ॥६३॥

जब तक व्रजराजनन्दन का आगमन नहीं हुआ तब तक एक एक क्षण उनके लिये कोटियुग की भांति होने लगा। इस में कोई आश्चर्य नहीं था। क्यों कि इस संसार में प्रेम की गति लौकिकवाणी से अगम्य एवं अकथनीय है ॥६३॥

पुनःपुनः कुंजनिकुञ्जचत्वरे निर्गच्छती सोत्कलिकाहतात्मना ।

आश्वासितापि प्रियबंधुभिस्तदा विचारमाचारमिवात्यसेवत ॥६४॥

श्री राधा उत्कण्ठा कलिकाओं से विद्ध होकर पुनः पुनः कुंज भवन निकुंज के चबूतरे पर जाने लगी। उन सखियों ने उन्हे आश्वासन दिया तो भी वह विविध विचार रूप आचरण से बंध गयी ॥६४॥

आयातो न कथं किमन्यरमणीक्रीडापरस्तांगतः
किं वा गोकुलबंधुमंडलवृतो नैवावकाशं गतः ।
किं वा विस्मरदिन्दुसुन्दरमुखो मां किं गतो निद्रतां
रुद्धो विघ्नवशे नवप्रियतमो दुर्दिष्टरूपेण मे ॥६५॥

उस समय श्रीराधा मन में विचार करने लगी कि प्राणवल्लभ अब तक क्यों नहीं आये हैं! क्या वे अन्य किसी रमणी की क्रीड़ा में आसक्त हो गये ? अथवा गोकुल वन्धु मण्डल से आवृत होकर अवकाश नहीं प्राप्त हुये ? क्या चन्द्रमुख वे हमें भूल गये ? अथवा वे निद्रावस हो गये ? अथवा प्रियतम दुर्दैवरूप किसी विघ्न से वँध गये ? ॥६५॥

विलोक्य तां व्यग्रतरान्तरां तदा वदत्तदीया ललिता हितैषिणी ।
मा मा शुच त्वद्गुणवागुरावृतः स कृष्णसारो निकटं तवैष्यति ॥६६

उनको इस प्रकार व्यग्र हृदय देख कर उस समय आश्वासना देती हुई उनकी हितैषिणी ललिता कहने लगी हे राधे तुम दुःख मत करो, तुम्हारे गुण रूप जाल से फंसे हुए वह कृष्णसार अभी आ रहे हैं ॥६६॥

कृतप्रयाणोपि पथि प्रियो मे नितम्बिनीं कामपि काममत्तः ।
लब्ध्वा यथेच्छं रमते सुखेन कृतं वृथाश्वासनकैतवेन ॥६७॥

राधिका कहने लगी—प्रिय ने संकेतकुंज के लिये प्रयाण कर दिया है । काममत्त वे मार्ग में किसी नितम्बिनी को प्राप्त हो कर यथेच्छ रमण कर रहे हैं । तुम्हारा यह आश्वासन वृथा तथ कैतव पूर्ण है ॥६७॥

त्यक्त्वा त्रपाकुलवती कुलदुस्त्यजापि रात्रौ यदर्थमवगाह्य जवादरण्यम् ।
नैवाजगाम स तथापि शठोऽकृतज्ञः कं यामि दिष्टनिहता शरणं वयस्ये ६८

हे सखि ! कहो तो कुलवती मैं दुस्त्यज कुलमर्य्यादा तथा लज्जा को छोड़ कर रात्रिकाल में उनके लिये वन में आगयी हूँ । तो

भी वे शठ, अकृतज्ञ नहीं आये, आज दैवनिहता में किस की शरण में जाऊंगी ? ॥६८॥

मनो मदीयं विधुरप्रवृत्तं जानन्नहो याति पुनश्च तत्र ।
करोमि हा किं रुजते पतंगः कृपीटयोनिं विदितं यथैव ॥६६॥

दुःख प्राप्त मेरा मन जान कर भी उन्हीं के लिये ही दौड़ता है । मैं क्या करूँ ? पतंग अग्नि को मृत्युप्रद जानता हुआ भी उस को नहीं छोड़ता ॥६६॥

खद्योतकद्योतमनोज्ञशोभा सुगंधवन्धुस्वसनानुरक्ता ।
विभावरी मां व्यथयन् प्रयाणं करोति कान्तस्तु न चाजगाम ॥७०

खद्योत कान्ति से मनोहर शोभावाली, सुगन्धित पवनवन्धु से युक्त, यह रात्रि मुझ को दुःखाती हुई जा रही है । अब तक वे प्राणवल्लभ आये ही नहीं ॥७०॥

इत्थं चिंतयती चकोरनयना चित्रार्पितैवास्थिता
हस्तस्थापितपांडुगंडयुगला किंचिन्मलीनानना ।
अप्राप्त नहि सर्वथा व्यथयते तादृक् यथा संगतं
न प्राप्तो भवते यदि प्रकटयल्लोभोदयं मानसे ॥७१॥

इस प्रकार विचार करती हुई वह चकोरनयना श्रीराधा अपने हाथ को पीले गंडयुगल में रखकर, किञ्चित् मलिन वदना हो कर चित्र की भांति विराजित हो गयी जिस प्रकार मिलन के समय दुःखानुभव उपस्थित होता है उस प्रकार वियोग में नहीं है । मिलन के समय लोभ का उदय हृदय में अत्यधिक रहता है, जो दुःखरूप माना जाता है ॥७१॥

श्रीगोविन्दमुनीन्द्रवन्दितपदद्वन्द्वारविन्दासव-
प्रोन्मत्ताखिलचित्तवृत्तिसुखदे सारंगसंगोदिते ।
काव्ये नन्दकिशोरचन्द्ररचिते श्रीकीरदूताभिधे
सर्गोऽयं दशमोऽगमच्च दयितारण्याभिसारात्मकः ॥७२॥

इतिश्रीमत्पूज्यपादरसनिधिगोस्वामिश्रीनन्दकिशोरचन्द्रप्रभुप्रणीते शुकदूतकाव्ये अरण्याभिसारनामको दशमः सर्गः समाप्तः ॥

श्री गोविन्द के मुनिगण वन्दित चरण कमल युगल के मकरन्द पानोन्मत्त रसिकजनों की चित्तवृत्ति में सुखदायी. कौतुकपूर्ण नन्दकिशोरचन्द्र के द्वारा विचरित इस शुकदूत नामक काव्य का वनाभिसार वर्णन रूप दशम सर्ग सम्पूर्ण हुआ ॥७२॥

-::—:—::-

अथैकादशः सर्गः समारभ्यते ।

श्री कृष्णः करुणाम्बुधिः सरभसं वृन्दावनं प्राप्तवान्
कान्तासङ्गमसाभिलाषहृदयो नीपद्रुमैर्गह्वरम् ।
प्रेमानन्दविकारसङ्गततनुः पूर्णेन्दुबिम्बाननः
प्रेमा याति न पुष्टतां हृदयजोत्कण्ठां विना नह्ययोः ॥१॥

तदनन्तन करुणा के सागर, पूर्णचन्द्रानन श्रीहरि कान्तासंगम में अभिलषित हृदय हो अत्यन्त वेग से नीपवृक्षों से आच्छादित वृन्दावन में पहुँचे। उस समय प्रेमानन्द विकार समूह उन के साथी रहे। क्यों कि हृदय में उत्पन्न उत्कंठा के बिना प्रेम पुष्टता को नहीं प्राप्त होता है ॥१॥

विद्युन्मूर्तिः किमियमथवा काञ्चनी वल्लरी किं
किं गाङ्गेयप्रतिकृतिरहो किन्नु सौन्दर्यदेवी ।
किं चाम्पेयस्त्रगियममला वा शिखा दीपकस्य
चान्द्रीरेखा किमु मधुरिपुर्वीक्ष्यतां भ्रान्तिमाप ॥२॥

"क्या विद्युत् की मूर्ति है ? अथवा यह क्या सुवर्णमयी वल्लरी हैं ? क्या सुवर्ण की प्रतिमा है ? क्या सौन्दर्य्य की देवी है ? अथवा क्या यह विमल चम्पक सम्बन्धि माला है ? किम्वा

दीपक की शिखा है ? किम्वा चन्द्र की रेखा है ?" इस प्रकार श्रीमुरारी उन श्रीराधिका को देखकर विविध प्रकार भ्रमित होने लगे ॥२॥

जीमूतो वार्षिकः किं मदकलकलभः किं किमेषस्तमालः
कालिंद्याः किं प्रवाहः करपदकमलो यष्टिका चैन्द्रनीली ।
किं वायं कृष्णसारो व्रजहरिणदृशां किं कटाक्षोर्मि मूर्ति-
र्दृष्ट्वा विद्युत्प्रकाशे भ्रममगमदियं स्वप्रियं सापि दूरे ॥३॥

वह राधा भी प्रिय को दूर से अवलोकन कर विद्युत् के प्रकाश होने पर भी नाना प्रकार भ्रमित होने लगीं—"क्या यह वर्षा कालीन मेघ है ? अथवा यह मदमत्त हस्तिशावक है ? क्या यह तमाल है ? किम्वा यह यमुना का प्रवाह है ? जिसमें हस्त-पद रूप कमल समूह वर्तमान है । किम्वा यह चन्द्र सम्बन्धी नीली यष्टि है ? किम्वा यह कृष्णसार है ? अथवा यह क्या व्रज रमणियों की कटाक्ष मूर्ति है ? ॥३॥

विलोक्य राधा निजवल्लभं तं दृष्ट्वाथ तां स व्रजराजसूनुः ।
परस्परं प्रेमसुखाब्धिमग्नौ स्वनेत्रसाफल्यमवापतुस्तौ ॥४॥

तब श्री राधा निजप्राणनाथ श्री हरि को देखकर तथा व्रजराज नन्दन उन राधा को देख कर दोनों परस्पर प्रेमसुख समुद्र में डूब गये और उनके नेत्र सफल हुए ॥४॥

लतागृहद्वारकृतप्रयाणौ मिथो भुजाभिः परिरंभितौ तौ ।
मंदाकिनीहंससुताप्रवाहौ यथा प्रयागे मिलितावभूताम् ॥५

दोनों ने लतागृह के द्वार पर जाकर परस्पर भुजाओं के द्वारा आलिंगन किया । जैसे कि मानो प्रयागतीर्थ में गंगा-यमुना परस्पर मिलन होता है ॥५॥

विद्युन्मेघौ किमेतौ किमहह सरसौ स्वर्णयूथीतमालौ
किम्वा भास्वत्प्रभाद्याऽसितमणिकनकस्तम्भयुग्मौ चकास्तः ।

कादम्बीनीलकण्ठौ किममलतिमिरद्योतयोश्चारुमूर्ती
दैवादेकत्र जातावघटितघटनाद्यामिनीवासरौ किम् ॥६॥

"क्या ये दोनों सरल विद्युत्-मेघ हैं ? किम्वा स्वर्णयूथी तमाल है ? बिम्वा असितमणि-कनक स्तम्भ युगल प्रकाशमान हो रहा है ? अथवा ये मेघ-नीलकण्ठ हैं ? किम्बा अन्धकार-विद्युत की मनोहर मूर्ति हैं ? अथवा दैव की अघटन घटना से एकत्र विद्यमान रात्रि-दिवस दोनों हैं ?" इस प्रकार सखीरूप दर्शकों को भ्रम होने लगा ॥६॥

अन्योन्यालिङ्गनेन स्थगितकरपदाद्यङ्गहृच्चित्तवृत्ती
शीत्कारासारविन्दौ मुकलितनयनौ स्वेदसम्मार्जितास्यौ
इत्थं भ्रान्तिं सखीनां निहितनिजवपुर्लोचनानां तदानीं
प्रेमानन्दातिभाजां मनसिजरभसं धारयामासतुस्तौ (युग्मकं)॥७॥

परस्पर आलिंगन से दोनों के हस्त-पद-शरीर हृदय-चित्त की वृत्तियाँ स्थगित हो गई। दोनों शीत्कार सुधा रस में डूब गये तथा दोनों के नयन मुकुलित होने लगे। दोनों के मुख कमल स्वेद से धुल गये। इस प्रकार दोनों उस समय प्रेमवती सखियों के नयनों में नाना भ्रम उत्पन्न करते हुए कामवेग को धारण करने लगे ॥७॥

मिथोरःस्थलस्पर्शमत्तान्तरङ्गौ भुजास्तंभविष्टंभितांगौ सहर्षौ।
सरोमाञ्चगण्डौ गलन्नेत्रनीरौ तदालेख्यवन्निश्चलत्वं गतौ तौ ॥८

दोनों पारस्परिक उर स्थल का स्पर्श पाकर उन्मत्त तरंगों में डूबने लगे। दोनों की भुजाऐं तथा शरीर हर्ष से स्तम्भित हो गया और गण्डस्थल पुलकायमान हुए। दोनों के नेत्रों से जलधारा बहने लगी तथा दोनो चित्र की भाँति निश्चल हो गये ॥८॥

श्रीकृष्णो दयितामुखेक्षणरुचिः किञ्चिद्गताङ्गक्रियः
आकृष्णावयवान् निजाद्विधुमुखीदेहाद्दर्शाननम्।

चंचच्चंचलखंजरीटनयनं राजद्विलोलालकं
भास्वत्कुण्डलकर्णपूजितरुचिं तस्याः स्मितोल्लासिनम् ॥९॥

श्रीहरि दयिता के मुख दर्शन के लिये इच्छुक होकर भ्रमणशील चंचल खञ्जन नयन वाली, नासिका में चंचल लोलक धारिणी, दीप्तिमान कुण्डलों से कर्णों की रुचि को बढ़ाने वाली, मन्द-हास्य से उल्लसित उन राधिका के शरीर से अपने अवयव को खींच कर किञ्चित् चेष्टा रहित हो कर उन के मुख चन्द्र का दर्शन करने लगे ॥९॥

सम्पूर्णसत्कुमुदबन्धुसमास्यमस्या दृष्ट्वालकव्रजविधुन्तुदमग्रभागे।
भीत्यैव तस्य किमहो शरबान्धवौ द्वौ भ्रूकैतवादकलयत्सकटाक्षवाणौ॥१०

श्रीहरि उनके सम्पूर्ण चन्द्र समान मुख का दर्शन कर तथा उस के आगे अलकावली रूप राहू के भ्रम से भय भीत होकर "क्या ये दोनों भ्रू के छल से उस राहू के कटाक्ष बाण हैं" इस प्रकार देखने लगे ॥१०॥

क्रोधोद्यतारुण्यविकाशभाजौ युद्धोद्यतौ लोचनखञ्जरीटौ।
सकंपपक्षौ च विलोक्य मध्ये नासाशुको वारयते किमेत्य ॥११

राधिका के दोनों लोचन रूप खञ्जन पंख नचाकर क्रोध से अरुण वर्ण धारण कर परस्पर युद्ध कर रहे हैं। बीच में नासा रूप शुक इस प्रकार कलह करने के लिये उनको निवारण कर रहा है ॥११॥

विराजमानो हृदयालवाले कृष्णानुरागद्रुमउत्तमोयम्।
शङ्के सुबिम्बाधरकैतवेनाप्रकाशयत् किं नवपल्लवौ द्वौ ॥१२

श्रीराधिका के हृदय रूप आलवाल में जो कृष्णानुराग रूप उत्तम वृक्ष विद्यमान है क्या उसके बिम्बाधर छल से दो नवीन पत्र उत्पन्न हुए हैं? ॥१२॥

अनेकयुक्तया कविवर्णनीयं निशम्य सौन्दर्यमहो स्वकीयम् ।
तद्द्रष्टुकामः स्वयमप्यमन्दौ दधार गण्डच्छलदर्पणौ किम् ॥१३

अनेक युक्ति के द्वारा कवियों के वर्णनीय निज सौन्दर्य्य का श्रवण कर क्या उसे देखने के लिये स्वयं गण्डों के मिस से दो दर्पण धारण कर रखा है ॥१३॥

कर्णौ स्पृशद्भ्यां नवलोचनाभ्यां गण्डप्रदेशे मणिकुण्डलौ किम् ।
अस्पृश्य केलिं कुरुतः प्रसर्प्य प्रसर्प्य चाग्रे सहसीरुहाद्या: ॥१४

क्या कानों ने दोनों नवीन लोचनों का स्पर्श पाया अतः उस से ईर्षा करते हुए मणिमय दोनों कुण्डल कमल-मुख के गण्ड प्रदेश में बिना स्पर्श के द्वारा उछल उछल कर क्रीडा कर रहे हैं ॥१४॥

अनिश्चयात् स्वस्वनिवासभूमेः परस्परं जातकलीं समीक्ष्य ।
कृतो विभागोपरवामभागौ सीमन्तसिन्दूरकरेखया किम् ॥१५

दोनों भाग अपने अपने वास भूमि का निश्चय करने में असमर्थ होकर परस्पर कलह करने लगे । उनको इस प्रकार कलह देख कर सृष्टिकार ने सीमन्तदेश में सिन्दूर रेखा के छल से दोनों के स्थान का विभाग कर दिया है ॥१५॥

निपीतसौन्दर्यपरागपूर्णवक्त्रैः स्थिरत्वं गतवद्भिरेतत् ।
समाश्रितं षट्पदमुग्धवालैर्वक्रालकव्याजविराजितैश्च ॥१६

मुग्धभ्रमर बालक मुख के द्वारा सौन्दर्य्य पराग का पूर्णतः पान करके वक्र अलक व्याज से स्थिर होकर विराज मान हैं ऐसा प्रतीत हो रहा है ॥१६॥

कलङ्कशून्यं न पराभवं गतं दिवाकरेण क्षयदीप्तिसञ्चयम् ।
मुखं किमोहो किमु चन्द्रमण्डलं सुवर्णवल्यामुदितं प्रकाशते ॥१७

यह क्या प्रिया का मुख है ? अथवा क्या कलंक रहित, सूर्य के द्वारा पराभव शून्य, अक्षय किरण कलावाला चन्द्रमण्डल

सुवर्णलता में उदय होकर प्रकाशित हो रहा है ? ॥१७॥

किं वा दिवारात्रिकृतप्रकाशं हिमेन विग्लापयितुं न शक्यम् ।
सुवर्णवर्णाम्बुरुहं नवीनं शोभासरस्यामुदयं जगाम ॥१८॥

किम्वा दिन रात सर्वदा प्रकाशमान, हिमराशि के द्वारा ग्लानि में प्राप्त करने है असमर्थ, सुवर्ण वर्ण एक कमल, शोभासरोवर में उदय हुआ है ? ॥१८॥

किशोरचिन्हद्वयतापनाशकं प्रसर्पदच्छिद्वयमीनवालकम् ।
रसेन पूर्णं किमहो सरोवरं लसत्स्वसन्मानसमानसौकसम् ॥१९

क्या रस पूर्ण दिव्य सरोवर विराजमान है, जिसमें श्वास प्रश्वास तरंग रूप हैं तथा जहां नेत्र रूप दो मीनबालक बिहार कर रहे हैं ॥१९॥

श्रीराधिकावदनसाम्यमपीन्दुरेषः प्राप्तं मया नहि यदा हृदये करोति ।
शोकेन नष्टरुचिरालभते तदैव लोके जनास्तदुपरागमिति ब्रुवन्ति २०

यह चन्द्रमा "मैंने श्रीराधिका के वदन की साम्यता को प्राप्त नही किया है" इस प्रकार जब हृदय में बिचार करता है तब वह उस शोक से कान्ति हीन हो जाता है अतः उस समय जगत में सब लोग "ग्रहण पड़ा है" ऐसा कहने लगते हैं ॥२०॥

श्री राधिकामुखविनिर्जितबिंवशोभो
मग्नोवभूव विधुरेण हि दुग्धसिंधौ ।
देहं पिनष्टुमगमन्नमृतस्तथापि
तत्रैव मंदरतले विबुधैः किमाप्तः ॥२१

अमृत श्रीराधिका के मुख-बिम्ब की शोभा माधुरी से पराजित होकर अत्यन्त व्याकुल चित से दुग्धसिन्धु में डूबने लगा, तो भी वहाँ अपने शरीर को पीसने के लिये उद्यत हुआ, जिससे कि मन्दर पर्वत के नीचे वहां देवताओं से मिला है ॥२१॥

प्रसाद्य सूर्यं जगदेकनाथं यास्यामि राधामुखसाम्यमित्थम् ।
विचार्य संघः सरसीरुहाणां मित्रत्वमर्केण चकार साकम् ॥२२

"हम श्रीराधिका के मुख के समान होंगे" इस प्रकार विचार करके कमलों के समाज ने जगत के नाथ सूर्य नारायण को प्रसन्न कर उन के साथ मित्रता कर ली है ॥२२॥

अङ्गीकृतं जलरुहैर्वनवासकष्टं
दत्तं परागममलं भ्रमरातिथिभ्यः ।
सङ्गः कृतः परमहंसगणैश्च शुद्धैः
प्राप्तं तथापि सुदृशो न मुखेन साम्यम् ॥२३

कमलों ने जलवास रूपी व्रत कष्ट को अंगीकार कर लिया, उन्होंने भ्रमर रूप अतिथियों को विमल पराग धन का दान भी दिया। वे निरंतर शुद्ध परम हंस गणों के संग लाभ भी प्राप्त करने लगे। (पक्षान्तर में पवित्र श्रेष्ठ हंसों का संग) तो भी वे राधिका के मुखसाम्यता को नहीं प्राप्त हुए ॥२३॥

विलोक्य राधारमणीयवक्त्रं कुन्दाभिरामद्युतिदन्तपङ्क्तिम् ।
अनङ्गरङ्गाकरमीश्वरेशः प्रमोदसीमां परमामवाप ॥२४

श्रीराधिका के कुन्द पुष्पों से मनोहर द्युति वाली दंतपंक्ति से युक्त, अनंगरंग का आकर रूप, मनोहर मुख का दर्शनकर ईश्वर के ईश्वर श्रीहरि परमप्रमोद सीमा को प्राप्त होने लगे ॥२४॥

वेणीं गृहीत्वा वृषभानुजायाः करेण वामेन तथा परेण ।
तस्या मुकुन्दश्चिबुकं चुचुम्ब चंचच्चकोरार्भकनेत्रवक्त्रम् ॥२५

तदनन्तर वे वाम हस्त से वृषभानुनन्दिनी की वेणी को धारण कर तथा अपर हस्त से उनके संचरणशील चकोर बालक रूप नेत्र वाले मुख का धारण कर चिबुक का चुम्बन करने लगे ॥२५॥

सापि प्रियं तं ननेतिवाक्यैर्न्यवारयच्चारुदृशांचलैश्च ।
प्राप्तौ निषेधो भवतीत्यलाभे वाञ्छा स्वभावःकिल प्रेमभाजाम् ॥२६

वह उस समय नहीं नहीं इस प्रकार वाक्य से नेत्रों के मनोहर संचालन पूर्वक प्रिय को निवारित करने लगी । प्राप्ति में निषेधवाक्य, तथा अप्राप्ति में वाञ्छा यह प्रेम धारियों का स्वभाव होता है ॥२६॥

निवारणं वारणयानवत्या कृतं हरेर्हर्षभरं व्यतानीत् ।

सद्वामतैवाम्बुजलोचनानां चित्तं हरत्युत्तमनायकानाम् ॥२७

उस समय राधिका ने वाम्यता के वश जो निवारण किया है वह श्रीहरि के लिये अत्यन्त सुखप्रद था । कमल नयन वाले उत्तम नायकों के चित्त को वाम्यता ही हरण कर लेती है ॥२७॥

परस्परं संक्रमणान्मरीचेर्बभूवतुर्मारकतीयवर्णौ ।

तदाननौ किं प्रणयातिरेकादैक्यंगतौ स्वस्वरुचिं विहाय ॥२८

परस्पर की कान्ति के संक्रमण से दोनों के मुख मारकतीय वर्ण शोभा का धारण करने लगा । किम्वा अत्यन्त प्रणयता से दोनों अपनी अपनी कान्ति को छोड़कर एकता को प्राप्त हुए ॥२८॥

करे गृहीत्वा रसिकेन्द्रमौलिः प्रियां शरच्चारुशशांकवक्त्राम् ।
सखीजनोद्वीक्षणजातलज्जां निवेशयामास सपुष्पतल्पे ॥२६

उस समय रसिकेन्द्र मौली, शरत चन्द्र की भांति मनोहर वदन वाली प्रिया के हाथ धारण कर पुष्प शय्या में बैठाने लगे । श्रीराधिका सखियों को देखती हुई कुछ लज्जिता होकर प्राणनाथ के साथ बैठने लगीं ॥२६॥

तत्रोपविष्टौ रसराजमूर्ती विलोक्य तौ सुन्दरवृन्दवन्द्यौ ।

सख्यः समन्तात् स्मितलोकनाद्यैः सभाजयामासुरनल्पहर्षा ॥३०

वहां उपविष्ट, सुन्दर वृन्दों से वन्दनीय, रसरास मूर्ति स्वरूप दोनों का दर्शन कर सखियाँ परिपूर्ण हर्षित होकर मन्दहास्य अवलोकनादि के द्वारा सम्यक् प्रकार से दोनों को शोभायमान कराने लगे ॥३०॥

श्रोतुं तदीयवचनप्रतिवाक्यमालां
तत्रैव तस्थुरमलावयवा वयस्याः।
सा कुत्सयन् दशनकान्तिभिरिन्दुदीप्तिं
राधा स्वकीयदयितं निजगाद तन्वी ॥३१

बिमल अंगवाली वयस्यगण उन के वचन-प्रतिवचन को सुनने के लिये वहां ठहरने लगीं। वह राधा दन्तों की कान्ति से चन्द्र दीप्ति को तिरस्कृत करती हुई अपने प्राणवल्लभ से कहने लगी ॥३१॥

जातान्यहो कतिदिनानि पुरीप्रयाण-
मारभ्यते भवति किं कुशलं जनानाम्।
द्वारावतीरमण ते विरहेण खिन्ना-
बध्वः कथं नु समयं किल यापयन्ति ॥३२

अहो! आप के मथुरापुरी से यहां पर आगमन हुए बहुत दिन हो गये हैं। वहां मनुष्यों का कुशल तो है? हे द्वारावतीरमण! तुम्हारे विरह से वधूगण अत्यन्त खिन्न होकर किस प्रकार दिवस बिताती होगीं? ॥३२॥

गोष्ठे दयालुतिलकः कृपयागतोस्ति
दिष्टया सुखं वरमभूद्व्रजवासिनां च।
एको न सिद्धिमगमद्धृदयाभिलाषः
कुब्जाप्रियापरिवृतो न विलोकितस्त्वम् ॥३३

गोष्ठ में दयालु शिरोमणि आप कृपया पधारे हैं। भाग्यवश व्रजवासियों को महान् सुख मिला। हृदय में एक अभिलाषा रह गयी है जो कि सिद्ध नही हुआ है। वह यह है कि प्रिया कुब्जा से परिवृत आप को मैंने नहीं देखा है ॥३३॥

ईर्ष्यास्मितक्रूरकटाक्षसंगिनं निगद्य वाक्यं प्रकटं पराङ्मुखी।
मानं यदा सा वृषभानुनंदिनी प्रकाशयामास तदाह केशवः ॥३४

ईर्ष्या-मन्दहास्य क्रूरकटाक्ष युक्त बचनों को बोलती हुई उनसे फिर पराङमुखी हो वह वृषभानुनन्दिनी, जब मानिनी होने लगी तब उनसे श्रीकृष्ण ने कहा ॥३४॥

प्रिये भवन्तीं हृदये निधाय यथाकथंचिद्दुरितेन खिन्न:।

पुरे दिनान्यक्षिपमिन्दुवक्त्रे जनापवादं मयि मा श्रृणु त्वम् ॥३५

हे चन्द्रमुखी प्रिये! तुमको निरन्तर हृदय में रखकर मैंने वहां द्वारिकानगरी में जैसे तैसे दुःख के साथ दिवस विताये हैं। तुम जनापवाद में ध्यान मत दो ॥३५॥

त्वमेव मे जीवनमल्पमध्यमे त्वमेव मत्प्राणपरार्द्धवल्लभा।

त्वं मद्गतिर्नान्यनितम्बिनी प्रिये जानामि लोके तव रूप निर्जिताम् ॥३६

हे प्रिये! तुम ही मेरा परिपूर्ण जीवन हो, आज तुम ही मेरे परार्द्ध प्राणों की वल्लभा हो, तुम ही मेरी गती हो, मैं अन्य किसी रमणी को नहीं जानता हूँ, और सब तुम्हारे रूप से पराजित हो जाती हैं ॥३६॥

गन्तुं न शक्नोति हि चक्रवाको रात्रौ स्वसान्मुख्यगचक्रवाकीम्।

वद त्वमेवात्र च कस्य दोषो विचारयान्त: करणे विदग्धे ॥३७

चक्रवाक रात्रिकाल में अपने समक्ष विद्यमान चक्रवाकी के पास जाने के लिये असमर्थ होता है। हे विदग्धे! कहो, अपने अन्तः करण में विचार करो। इस में दोष किसका है ? ॥३७॥

घनाघनः पूर्वकृतोदयोपि क्रूरानिलेनोत्तरदिग्विभागे।

चेन्नीयते कस्य वदापराध: शरत्समीचीनशशांकवक्त्रे ॥३८

हे शरच्चन्द्रमा की भांति मुख वाली! कहो, मेघ पूर्व दिशा में उदय होकर क्रूर पवन के द्वारा उत्तर दिशा में चला जाता है। इसमें किसका अपराध है ? ॥३८॥

वियोगदावानलस्वर्चितसः कन्दर्पतीक्ष्णांशुभवौचितांग:।

प्राप्त: समीपं तव कृष्णसारो विरोचितं रक्षणमस्य राधे ॥३९

वियोग दावानल ज्वाला से तप्त, काम के तीक्ष्ण बाणों से वीक्षितांग यह कृष्णसार तुम्हारे समीप उपस्थित है। हे राधे! इसकी रक्षा करना तुम्हारे लिये उचित है ॥३९॥

वियोगदुःखाग्निकणानदन्तं चकोरवर्यं सखि चन्द्रलेखे।

विहाय मेघाम्वरमेकवारं प्रमोदय त्वं स्वमरीचिकाभिः ॥४०

हे चन्द्रलेखे ! वियोग दुःखाग्नि कणों को खाता हुआ यह चकोर श्रेष्ठ तुम्हारे पास आया है। अतः तुम अपने मेघाम्बर का एक बार त्याग कर अपनी कान्तियों से उसको प्रसन्न करो ॥४०॥

यथा कथंचिद्गमितो निदाघः पिपासितेनापि च चातकेन।

स्तवेप्सया चेत्क्रियते विलंवः कथं हि कादम्बिनिजीवनं स्यात् ॥४१

जैसे तैसे निदाघ का गमन तथा वर्षा का आगमन हुआ पिपासित चातक के लिये वर्षा यदि अपने बूँदों को देने में विलम्ब करता है तब वह किस प्रकार जीवन धारण कर सकता है ॥४१॥

ग्राम्याः स्त्रियो वयमहो नरदेवकन्या संवाहितांघ्रियुगलश्च भवान्मुकुन्दः।

संगः कथं समुचितः किमनेन तस्मादाडंवरेण वचनस्य यदा प्रियाह ॥४२

तदनन्तर राधिका कहने लगी–हम सब ग्राम्यस्त्रियां हैं, अहो! मुकुन्द आप के चरण युगल राजकन्याओं से सेवित हैं। अतः आप के साथ हम सब का संग किस प्रकार हो सकता है इन आडम्बर पूर्ण बचनों को छोडो ॥४२॥

तदा मुकुन्दो विनयोक्तिभिस्तां प्रसादयन् कोविदवृन्दवन्द्यः।

अंगीचकारेचितदैन्यदैन्यस्तत्पादपद्मायतनं तदानीम् ॥४३

उस समय पण्डित गणों के वन्दनीय श्री मुकुन्द विनीत वचनों के द्वारा राधिका को प्रसन्न करते हुए दीनातिदीन हो उन के पादपद्म पीठ को धारण करने लगे ॥४३॥

ददर्श पादे पतितं नदन्तं प्रियेति सौन्दर्यसुधानदन्तम्।

समुल्लसत्कुन्दसमानदन्तं राधा स्वमाधुर्यगुणानदन्तम् ॥४४

निशाम्य तं तादृशदैन्यभाजं दयावती साभवदश्रु नेत्रा ।
वामेन किंचिन्नयनांचलेन सभाजयामास तदा स्वनाथम् ॥४५

"प्रिये" इस प्रकार कहकर सौन्दर्य्य सुधा का आस्वादन करने वाले, चरण में पतित, उल्लसित कुन्द की भाँति दन्त वाले, अपने माधुर्य्य गुणों के आस्वादक, उस प्रकार दैन्य परायण उन को देखकर दयावती वह राधा अश्रुभरे हुए नेत्रों से तथा किञ्चित् वाम्यता युक्त उन नयनाञ्चल से अपने प्राणनाथ को प्रसन्न कर विराजमान कराने लगीं ॥४४।४५॥

सख्यश्च वीक्ष्य नवकेलिपरंपरां तामापीय कर्णपुटकैः वचनासवं च ।
ज्ञात्वा सरोजनयनौ सुरतोत्सुकौ तौ निर्गत्य कुंजभवनाद्बहिराससेदुः ४६

उस समय सखियाँ उनकी इस प्रकार की नवीन क्रीडा परम्परा का दर्शन कर तथा उनके बचन आसव का पान कर और कमल नयन दोनों को सुरत में उत्कण्ठित जानकर कुंजभवन के वाहिर जाने लगीं ॥४६॥

कुंजाद्बहिर्द्वारगता वयस्या विलोक्य राधा गमनोद्यताभूत् ।
तदा दधत् कंकणकांतिरम्यं हठेन कृष्णो दयिताकराब्जम् ॥४७॥

वयस्यों को कुंज से बाहिर जाना देख कर राधा भी बाहिर जाने के लिये उद्यत हुई । उस समय श्रीकृष्ण ने कंकण कान्तियों से मनोहर उन के कर कमल को हठ पूर्वक धारण किया ॥४७॥

कृष्णः कुचस्पर्शसलालसात्मा यदा ग्रहीतौ पुरतो प्रसह्य ।
सा वारयामास ननेति वाक्यैः द्रव्याधिपश्चौरमिवाति लुब्धः ॥४८॥

जब श्रीकृष्ण स्तनस्पर्श करने में इच्छुक होकर बल-पूर्वक उद्यत हुए तब वह "नहीं नहीं" इस प्रकार निषेध वचनों से मना करने लगी । जेसा कि लुब्ध द्रब्यपति चोरों को डाटता है ॥४८॥

तदीयनीवीगुणमोचनाय पस्पर्श तां गोकुलराजसूनुः ।
करेण वामेन दधार नीवीं परेण तस्याम्बुजपंचशाखम् ॥४९॥

गोकुलराजनन्दन ने उन के नीवी बन्धन मोचन करने के लिये उनका स्पर्श किया । तब वह वामहस्त से नीवी तथा अन्य हस्त से उनके हाथ को रोकने लगीं ॥४६॥

तदाभिलाषांकुरजन्मसूचकस्मितं भ्रमद्भ्रूयुगधूननोद्धतम् ।
सभीतिचंचच्चपलाब्जलोचनं ययौ मुदं वीक्ष्य तदाननं हरिः॥५०॥

उस समय श्रीहरि, श्रीराधिका के अपने अभिलाषा अंकुर उत्पन्न हो गया है उसको सूचित करने वाला मन्द हास्य को तथा भ्रमणशील भ्रू युगल का कम्पन उद्धृत को तथा भय युक्त चपल कमल लोचन को और मुख को देखकर परम आनन्दित हुए ॥५०॥

अयेहि मा मां स्पृश इत्युदीरितां वेणीपतत्पुष्पभरां मृषारुषाम् ।
स्रंसद्दुकूलां रतिरंगवाहिनीं हठेन तल्पोपरि तां न्यवेशयत् ॥५१॥

"अये ! मुझे स्पर्श मत करो" इस प्रकार बोलने वाली, वेणी से पुष्प गिरते जा रहे हैं जिनके, गिरते जा रहे हैं वस्त्र जिन के, रतिरंग का वहन करने वाली, उन राधिका को हठ पूर्वक श्री हरि शय्या पर विराजमान कराने लगे ॥५१॥

भ्रूबाणासनधूननः खरशरापाङ्गाहतिस्फूर्जितः
सम्यङ्मर्दितकुंकुमो नखवराघातैश्च सम्पूजितः ।
छिन्नालंकृतिकः परस्परमिलत्सर्वाङ्गसंघो भवत्
राधामाधवयोस्तदा सुरतसत्संग्राम उत्साहवान् ॥५२॥

उस समय राधा–माधव के सुरत संग्राम उत्साहित होने लगा। जिस में भ्रू बाणों का कम्पन, तीक्ष्ण शररूप कटाक्ष दृष्टि का स्फूर्जन, कुंकुम का सम्यक् मर्दन, नखों के आघातों से शोभन, अलंकारों का छिन्न भिन्न, परस्पर के सर्वाङ्ग का मिलन ये सब क्रिया होने लगीं हैं ॥५२॥

निःपीताधरपल्लवामृतरसे मञ्जीरजाम्रद्धनौ,
गाढालिङ्गनसज्जनौ रतिकलामाणिक्यमुख्ये खनौ।
सिद्धिभूतमनोरथे सुरतसत्क्रीडाम्बुधौ संगिनौ
मग्नौ नास्मरतां तदा किमपि च श्रीराधिकामाधवौ ॥५३॥

आज श्रीराधिका माधव सुरत क्रीडा रूप सागर में एक ही साथ मग्न हो कर सब कुछ भूल गये हैं। वहां दोनों ने दोनों का अधरपान रूप अमृत रस में गाढ़ालिंगन रूप मज्जन किया है। मञ्जीर शब्द उसमें रत्न सदृश था। वह सुरत सागर रति-कला रूप प्रमुख माणिक्यों की खानि रूप है तथा जिसमें डूबने पर दोनों की मनोरथ सिद्धि हो गयी है ॥५३॥

श्रीराधा सुरतश्रमाकुलतनुर्व्यापारहीना तदा,
कान्तोरःस्थल उल्ललास सुभगा रोमाञ्चगन्डद्वया।
कान्ता मुद्रितलोचना च निकषे रेखा प्रिया काञ्चनी,
भाति व्योम्नि यथा शरच्छशधरस्फीतोज्वला चन्द्रिका ॥५४॥

वह राधा सुरतश्रम से व्याकुल शरीर होकर व्यापार शून्य हो गयी। वे प्राणवल्लभ के वक्षः स्थल में शोभायमान हुई। उनके दोनों सुभग गण्ड रोमाञ्चित होने लगीं। उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा मानो निकष (कसौटी) प्रस्तर में कांचनरेखा पड़ी हुई है, किम्वा आकाश में शरच्चन्द्रमा की सफेद-उज्वल चन्द्रिका विराजमान हो रही है ॥५४॥

व्यत्यस्तालकवृन्दवन्दितमुखौ विभ्रष्टपत्रश्रियौ
स्वेदोद्यत्कणसत्कपोलयुगलौ निर्धूत नेत्राञ्जनौ।
लज्जापूर्वकसादरेक्षणसुखौ नीरागविम्बाधरौ
तौ दृष्ट्वा मुदिता लतान्तरगतैश्छिद्रैः सखीनां गणाः ॥५५

उनकी अलकावली मुख पर इधर उधर बिखर गयी, तथा पत्रावली रचना की शोभा भ्रंश होने लगी। उनके युगल कपोल

स्वेद कणों से मनोहर छा गये तथा नेत्रों का काजर धुल गया। दोनों परस्पर को देखकर लज्जित तथा सुखी हुए। उनका बिम्वाधर राग शून्य होने लगा। उनको इस प्रकार देखकर सखी गण प्रसन्न होने लगी ॥५५॥

राधे ते कुचकुंभखेलदमला हारावली किं तप-
श्चक्रे स्फीतगुणा न वेद्मि तदहं त्वत्साधुवक्षःस्थले।
खेलन्ती रतिलम्पटा गुणवती यस्मात् सदा राजते
यां दृष्ट्वा मम मानसोभिलषते तज्जन्मपुण्योदयात् ॥५६

अनन्तर श्रीहरि प्रिया से कहने लगे- हे राधे ! तुम्हारे कुचकुंभ में खेलने वाली विमल प्रसिद्ध गुण वाली हारावली ने क्या तपस्या की है उसे मैं नहीं जानता हूँ। जो तुम्हारे गुणवती उत्तम वक्षः स्थल में रतिलम्पट हो कर निरन्तर विराजमान रहती है। जिसको देखकर मेरा मन उस योनि को प्राप्त करना चाहता है। क्योंकि बड़े पुण्योदय से उसका जन्म होता है ॥५६॥

किञ्चाक्रान्तदिगन्तरान् जलधरान् दृष्ट्वा पशूनागतां
स्तेभ्यश्चर्वणशंकया तव कुचद्वन्द्वातिदुर्गान्तरे।
लीनाभूदुडुसंहतिः सुवदने किंवा सुधास्वर्णदी
त्वद्वक्षोरुहमेरुशृंगसुषमां विस्तारयन् वर्द्धते ॥५७

हे सुवदनि राधिके ! और सुनो, दिशाओं को आक्रमण करते हुए जलधर रूपी पशुओं को आते हुए देखकर वह हारावली "अपने को चुग जायेंगे" इस प्रकार उन से भयभीत होकर तुम्हारे दोनों कुच दुर्ग के बीच छिपने लगे हैं। अथवा नक्षत्र समूह स्तन दुर्ग में छिपने लगे ? किम्बा सुधा सुरधुनी तुम्हारे वक्षोरुह सुमेरु के शृंग की सुषमा का विस्तार करती हुई बढ़ रही है ॥५७॥

कान्ते ते कुचपट्टिकानिलयनौ कोकौ किमेतौ स्थितौ
कश्चिद्धीवरभीतितः किमथ वा रत्नोल्लसत्सम्पुटौ।
किं कुम्भौ कनकस्य मन्मथरसाकीर्णौ किमेते फले
किं पूर्णौ शरदिन्दुविम्बमुकुरौ बद्ध्वा हृदि स्थापितौ ॥५८

हे कान्ते ! किसी धीवर के भय से भयभीत होकर दोनों ये कोक तुम्हारे कुचलग्न साडी के बीच छिपकर निवास करने लगे हैं। किम्वा ये रत्नों के द्वारा भरपूर दो पिटारी हैं ? अथवा ये सुवर्ण के दो कलश हैं ? किम्वा मन्मथरस से परिपूर्ण दो फल हैं अथवा परिपूर्ण शरच्चन्द्र की विम्ब की भांति दो मुकुर (दर्पण) बंधे हुये हृदय में विद्यमान हैं ? ॥५८॥

त्वत्सौन्दर्यविनिर्जिता जलधिजा सारूप्यकामा तव
पद्मालंववती सती कृतवती त्यक्त्वाभिमानं तपः।
त्वद्दास्याय निषेव्यते सुरपतिः कान्तेऽप्सरोभिः सदा
तद्वत्पुण्यजनेश्वरश्च सुभगे विद्याधरीणां गणैः ॥५९

क्या लक्ष्मी तुम्हारे सौन्दर्य्य से पराजित होकर सारूप्यकामना से अभिमान छोडकर तपस्या कर रही है। हे कान्ते ! क्या इन्द्र अप्सराओं के साथ तुम्हारे दास्य प्राप्ति के लिये निरन्तर सेवा कर रहा है। इस प्रकार विद्याधारियों के साथ पुण्यजनों के ईश्वर विद्याधर भी दास्याभिलाष से तपस्या कर रहा है ॥५९

त्वज्जंघालतिकानिरस्तप्रतिभा रंभागता स्तंभतां
प्राप्ता त्वद्गमनेन धिक्कृतपदा रंभावनं पद्मिनः।
कान्ते कुत्सितदीधितिर्मुखरुचा चन्द्रोभवल्लाञ्छनी
त्वन्नेत्रार्पितमत्सरा झषततिर्याता सरिन्मग्नताम् ॥६०॥

तुम्हारी जंघालतिका से हतप्रभ होकर रंभा ने (केला) स्तम्भ भाव को धारण कर लिया है, तुम्हारे गमन से लज्जित तथा तिरस्कृत होकर हस्ति कदलीवन में छिपने लगे। हे प्रिये !

तुम्हारे मुख की कान्ति से चन्द्रमा मन्दकान्ति होकर लाञ्छित हो गया तथा तुम्हारे नेत्रों से मत्सरता रखने वाली मछलियां नदी में डूबने लगीं हैं ॥६०॥

एवं वर्णितवल्लभागुणगणः श्यामोऽरविन्दाननो
गोविन्दः परिरंभनर्मवचनापांगावलोकादिभिः ।
नीवीमोचनचुम्बनस्फुरदुरोजद्वन्द्वसम्मार्जनैः
स्वेदांभःकणयापनैश्च सुदृशा कृष्णः सुखेनारमत् ॥६१॥

इस प्रकार वल्लभा राधिका के गुण गण वर्णन करते हुए कमल-नयन, श्यामसुन्दर गोविन्द, परिरम्भण, नर्म वचन, अपांग अवलोकनादि से, तथा नीवी मोचन, चुम्बन. शोभायमान उरोजयुगल का मार्ज्जन और स्वेद जल कणों के निःसारण के द्वारा राधिका के साथ सुख पूर्वक विलास करने लगे ॥६१॥

जाग्रद्युद्धपरिश्रमौ शिथिलतालंकारदेहांशुकौ
निद्रासन्मुखलोचनौ मदभरव्याकीर्णपद्माननौ ॥
आलस्याभिमुखौ सलज्जनयनौ कण्ठग्रहे तत्परौ
कुंजे गुंजदलिव्रजे सुषुपतुः श्रीराधिकामाधवौ ॥६-॥

इस प्रकार सुरत युद्ध से परिश्रान्त होकर श्रीराधा-माधव दोनों गुंजायमान भ्रमरों से युक्त निकुंज में परस्पर कंठ लगा कर शयन करने लगे। उनके शरीर से अलंकार समूह तथा वस्त्र गिर गये तथा नयनों में निद्रा भर आई। उनके आनन-पद्म मद भार से व्याकीर्ण हो गये तथा दोनों आलस्य वश हो गये और दोनों के नयन लज्जित हो गए। इस प्रकार निकुंज में दोनों की शयनलीला हुई ॥६२॥

तत्कुञ्जोपवनस्थकुंजविततौ दृष्ट्वा तयोः स्वापतां
सख्यः सुन्दरवर्ययोस्तदमलक्रीडेक्षणानन्दिताः ।

गायन्त्यश्च परस्परं लघुलघुक्रीडास्तयोः संस्मरन्
रात्रिं मुद्रितलोचनाः समनयन् हर्षेण वृन्दावने ॥६३

वृन्दावन में इस निकुंज तथा उपवन के लतामंडप में सुन्दर शिरोमणि उन दोनों की शयन लीला का दर्शनकर आनन्द परायणा सखियां उनकी क्रीड़ाओं का मन्द मन्द गान तथा स्मरण करती हुई हर्ष पूर्वक नेत्र मूंद कर रात्रि विताने लगीं ।।६३।।

अन्याश्चापि हरिप्रियाः सरभसं चन्द्रावलीमुख्यका
लब्ध्वा तं दयितं सुखेन समयं निन्युर्नवीने वने ।
आनन्दाङ्कितमानसाश्च विरहावस्थां च तां नास्मरन्
जीवः प्राप्य यथा द्वितीयजननं पूर्वानुभूतां क्रियाम् ॥६४

चन्द्रावली प्रमुख अन्य सब हरिवल्लभाए उन प्राणवल्लभ को प्राप्त कर नवीन वृन्दावन में सुख पूर्वक समय विताने लगीं। वे आनन्द-मना हो कर विरह अवस्था को भूल गईं। जिस प्रकार कि जीव दूसरा जन्म प्राप्त कर पूर्वानुभूत क्रियाओं को भूल जाता है ॥६४॥

इत्थं दाम-सुदाम-नामक सखीनानन्दयन् वासरे
रात्रौ गोपकुलाङ्गनाश्च सुरतेनामोदयन् माधवः ।
संध्यायां पितरौ सुखेन रमयन् चक्रे निवासं व्रजे
कः श्रीहर्यनुकम्पया नहि भवेत् सङ्कल्पसिद्धो जनः ॥६५॥

इस प्रकार श्रीमाधव दिवस में दाम-सुदामादि सखाओं को आनन्दित तथा रात्रि में गोपकुलांगनाओं को सुरतक्रीडा के द्वारा आमोदित और सन्ध्या के समय सुख से पिता माता को प्रसन्न करते हुए ब्रज में निवास करने लगे। हरि की अनुकंपा से कौन मनुष्य मनोरथ सिद्धि नहीं करता है ? ।।६५।।

आद्याचार्यरसेश्वरेण सुतरां श्रीगीतगोविन्दतो
राधामाधवमानगायनविधौ भक्ता निमग्नीकृताः।
तत्काव्यामृतमाधुरीधरसुधाधारासुसंस्नापित-
स्तद्वंशोद्भव वालकोय मकरोल्लीलारसोत्कर्षणम् ॥६६॥

रसके आद्याचार्य्य श्रीजयदेवचरण ने निज गीतगोविन्द काव्य के द्वारा राधा माधव की गुण गान विधि में भक्तों को निमग्न किया है। उस गीत गोविन्द काव्यामृत माधुरी का वहन करने वाली सुधा-धारा से सम्यक् निमज्जित हो कर उन जयदेवचरण के वंशोद्भव बालक मैं लीलारस से उत्कर्षमय इस शुकदूत नामक काव्य की रचना कर रहा हूँ ॥६६॥

गौरश्यामरुचोज्वलाभिरमलैरक्ष्णोर्विलासोत्सवै-
र्नृत्यन्तीभिरशेषमादनकलावैदग्ध्यदिग्धात्मभिः।
अन्योन्य-प्रियतासुधापरिमलस्तोमोन्मदाभिः सदा
राधामाधवमाधुरीभिरभितश्चित्तं ममाक्रम्यताम् ॥६७

गौर एवं श्माम कान्ति से उज्वल, बिशुद्ध, नेत्रों के बिलास उत्सवादायो नृत्य करने वाली, समस्त काम-कला वैदग्धि से दिग्धात्मा, पारस्परिक प्रियताचरण रूप सुधापरिमल समूह से उन्माद प्राप्त राधा माधव माधुरियों के द्वारा मेरा चित्त सर्व प्रकार से निरंतर आक्रान्त हो ॥६७।

नित्यानन्दकलिन्दजातटलसत्सौन्दर्यसन्दर्पित-
श्रीवृन्दावनमञ्जुकुञ्जकुहरोन्मत्तालिवाक्पालिभिः।
सद्यः श्रीजयदेवहार्दिकरुचिप्राचुर्यसत्सङ्गिभीः
राधामाधवमाधुरीभिरभितश्चित्तं ममाक्रम्यताम् ॥६८

नित्य आनन्द प्रदायिनी यमुना के तट सौन्दर्य्य से शोभायमान श्रीबृन्दावन के मनोहर कुंज कुहरों में उन्मत्त भ्रमरों के शब्द से संपुष्ट, रसिकवर श्रीजयदेवजी की प्राचुर्य्य हार्दिक रुचि को

व्यक्त करने वाली श्री राधिका-माधव की माधुरी के द्वारा मेरा चित्त सर्व प्रकार से निरन्तर आक्रान्त हो ॥६८॥

पाद्मे यद्यपि वर्णितं मधुरिपोर्गोष्ठप्रयाणं पुनः
श्रीमद्भागवते च पेशलतया संकेतितं तत्स्थले ।
व्याख्यातं च तदेव तत्र रसिकैः श्रीरामरायाभिधैः
काव्येऽस्मिन् कथितं मयातु विपुलं तत्तत्कृपातः पुनः ॥६९

यद्यपि पद्मपुराण में श्री मुरारी का व्रजागमन वर्णित है, पुनः श्रीमद्भागवत में वहाँ पर वह आगमन सुन्दर रूप से संकेतित किया गया है, श्रीरामरायादिक रसिकों ने इस विषय की सुन्दर व्याख्या की है तो भी मैं इस शुकदूत नामक काव्य में उन सब की कृपा से विस्तृत रूप से वर्णन कर रहा हूँ ॥६९॥

चिरं चान्द्रीधाराधवलितधरामण्डलघनं
वनं वृन्दादेव्या नवलनलिनं चाकलयती ।
स्थली लावण्यानां रसिकरसकल्लोलतरला
सुशीला राधामाधवललितलीला निगदिता ॥७०

जो अपनी माधुरी रूप चन्द्र किरणों से पृथ्वी मण्डल को धवलित कर देती है तथा समस्त वृन्दावन को कमलों से परिपूर्ण देखती है, जो लावण्यों का आधार रूप है, तथा रसिक जनों के रसकल्लोल से तरलायमान है वह राधा-माधव की मनोहर लीला कविजनों से निरन्तर गायी जाती है ॥७०॥

श्रीमद्गौरपदारविन्दरजसां किं वर्ण्यते वैभवं
स्पृष्टा या वितरन्ति दुर्लभतरां प्रेमश्रियं माधवे ।
यस्यां मोक्षसुखं चतुष्टयमहो स्वेनैव संजायते
यत्कश्चित्कणसेवनेन च गतो मूकोऽप्यहं वाक्सुखम् ॥७१

श्रीगौरांग महाप्रभु के चरण कमल रजका वैभव कहां तक वर्णन किया जा सकता है, जो स्पर्श मात्र से श्रीराधामाधव में

महादुर्ल्लभ प्रेम धन का वितरण करती है, जिससे चार प्रकार का मोक्ष सुख स्वयं ही उत्पन्न होता है। उस रज के कण मात्र सेवन से मूक भी मैं महान् पण्डित बन गया हूँ ॥७१॥

नास्मिन् यद्यपि शब्दचित्ररचना नैवार्थगंभीरता
पाण्डित्यं न च बाल्यकेवलगुणे काव्ये मया निर्मिते ।
कंठं सारजुषां तथापि भजतु त्वेतत्सतां माधव-
क्रीड़ासंग्रथितं प्रसूनसहितं सूत्रं यथा धार्यते ॥७२

यद्यपि इस काव्य में शब्दाडम्बर, अर्थ गंभीरता एवं पाण्डित्य नहीं हैं क्योंकि बाल्य-चपलता से यह केवल लिखा गया है तो भी माधव लीला से संग्रथित यह सारग्राही सज्जनों का कंठ रूप हो, जैसा कि नीरस सूत पुष्पों के साथ ग्रहणीय होता है ॥७२॥

पूर्वैर्यद्यपि वर्णितः कविजनैः सामान्यलोके रसो
नास्ति स्निग्धमिदं घृणास्पदतया वन्धप्रदत्वात्तथा ।
अस्माभिस्तु रसस्वरूपसुभगः संसारमोक्षप्रदो
नित्यो नित्यगुणः प्रियागणवृतो राधाधवः सेव्यते ॥७३॥

यद्यपि पूर्व कवियों के द्वारा सामान्य लोग में भी रस की स्थिति बतलाई गई है किंतु वह मत मनोहर नहीं है क्योंकि साधारण लोग में निरन्तर विभाबादि वैरूप्य जनित घृणादि उत्पन्न होती है जो कि बन्धन रूप माना जाता है। अथवा इस प्रकार व्याख्या हो सकती है कि कविकर्णपूर व श्री रूपगोस्वामी आदि पूर्व महानुभाबों ने बिभाबादि वैरूप्यता के कारण प्राकृत जन में रस स्थिति नहीं है ऐसा वर्णन किया है। उनके मतों को मानने वाले हम सब संसार मोक्षप्रद, नित्यस्वरूप, नित्य गुण विशिष्ट, प्रियागण से परिवृत रस समूह के धनी अर्थात् रसराज राधा माधव की सेवा करते हैं ॥७३॥

लोकख्यातिकृते मया न रचितं काव्यं प्रयासाधिकं
किन्तु श्रीशपदुन्मुखीकृतिकृते दुर्दान्तिमच्चेतसः ।
तस्मात्साहसदोषतामगणयन् दीनानुकम्पैरिदं
श्रीमत्कृष्णपदारबिन्दरुचिभिः संसेव्यतां साधुभिः ॥७४

मनुष्यों में प्रसिद्धि लाभ के लिये मैंने अत्यन्त प्रयास साध्य इस काव्य की रचना नहीं की है, परन्तु दुर्दान्त मन को राधा-माधव चरणोन्मुखी बनाने के लिये यह प्रयत्न है अतः दीन जन कृपाकारी साधुगण मेरा यह साहस दोष न देखकर इस की सेवा अर्थात् ग्रहण करें ॥७४॥

तर्ककर्कशमानसेन मलिनान्युद्विग्नचेतांसि च
मीमांसा निगमागमप्रतिहता व्याध्यर्दिताश्चापरे ।
यद्गीतं भगवान् व्रजेशतनयः कृष्णः स्वयं स्वाक्षरै
श्चक्रेऽलंकृतमेव तं प्रभुवरं विस्मर्तुमीशीत कः ॥७५

तर्कों से कर्कश मन मलिन होरहा है उस से चित्त में निरन्तर उद्विग्नता रहती है और जन समस्त मीमांसा-निगमागम की व्याधि से पीडित हो रहा है । भगवान व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ने स्वयं ही "शिरसि देहि निजपादपल्लवमुदारम्" इस प्रकार वाक्य कह कर जिन के काव्य की संपूर्ति की है उन प्रभुवर जयदेव गोस्वामी जी को कौन भूल सकता है ? ॥७५॥

श्रीमद्रूपसनातनौ कविवरौ गोविन्दपादाम्बुजे
माध्वीकाशनमत्तचित्तमधुपौ भूयो नमस्कुर्महे ।
यज्जिह्वाग्रविहारिणी रसमयी वाणी वरीवृत्यते
यच्चेतोङ्गणमध्यगा मुररिपोर्लीला नरीनृत्यते ॥७६॥

गोविन्द चरणारविन्द में जो माध्वीक उसके पान से मतवाले मधुप के समान श्री रूप सनातन गोस्वामी को तथा कविवर श्रीरामराय गोस्वामी एवं चन्द्रगोपाल गोस्वामी को वारंबार

नमस्कार करता हूँ। जिनकी जिह्वा के अग्रभाग में विहार करने वाली रसमयी वाणी (श्री आदिवाणी-जी) सर्वदा विद्यमान है तथा जिनके चित्त रूपी आंगन के मध्य मुरारी की लीला नृत्य कर रहा है ॥७६॥

चुन्नीलालमहानुभावतनयौ जातौ कुलालङ्कृतौ
राधामाधवसेवनैकनिपुणौ भूपादिपूज्यौ सदा।
नाम्ना नन्दकिशोरचन्द्रविदितश्चाद्योहमेवास्मि मद्-
भ्राता शास्त्रविशारदो व्रजकिशोरख्यातः स्वनाम्नानुजः ॥७७

श्रीराधा माधव सेवा में एक मात्र निपुण राजा महाराजाओं से सदा पूज्य, कुलाल कार श्री गोस्वामी चुन्नीलालजी के प्रथम पुत्र श्रीनन्दकिशोरचंद्रनाम से विख्यातमैं एवं द्वितीय शास्त्र विशारद श्री ब्रजकिशोर गोस्वामी नाम से प्रसिद्ध है ॥७७॥

श्रीमत्पूर्णानन्दपादाब्जभृंगो नाम्ना सोयं नन्दपूर्वः किशोरः।
कालीघदस्यान्तिके मन्दिरे स्वे वृन्दारण्ये काव्यमेतच्चकार ॥७८

श्री पूर्णानन्द जी गोस्वामी चरणकमल मधुप 'नन्द' है पूर्व में जिस के ऐसा किशोर ने कालीदह के समीप वृन्दावन धाम स्थित निज मन्दिर में इस काव्य का निर्माण किया ॥७८॥

क्वाहं मुग्धः कुतः काव्यप्रयोगः क्वाहं बालः कुत्र शब्दार्थसिन्धुः।
किन्तु स्फीता कृष्णचैतन्यनाम्नः संगप्राप्ता हेतुरत्रानुकम्पा ॥७९॥
शरग्रहाष्टैकमिताब्दमध्ये शुभे नभो मास्यसिते च पक्षे
सचन्द्रवाराष्टमिकातिथौ च वृन्दावने काव्यमिदं समाप्तम् ॥८०॥

कहाँ मैं भोला बालक कहां यह शब्दार्थ सिन्धु काव्य का प्रयोग किन्तु भगवान श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के नाम के सङ्ग से यह अहैतुकी कृपा ही इसकी रचना में कारण है। अठारहसौ पिच्चनवे विक्रम सम्बत् के मध्य शुभ श्रावण शुक्ल पक्ष में

चन्द्रवार अष्टमी तिथि समय में यह काव्य श्री वृन्दावन में समाप्त हुआ ॥७९, ८०॥

श्रीगोविन्दमुनीन्द्रवदितपदद्वंद्वारविन्दासव-
प्रोन्मत्ताखिलचित्तवृत्तिसुखदे सारंगसंगोदिते ।
काव्ये नन्दकिशोरचन्द्ररचिते श्रीकीरदूताभिधे
राधाकृष्णविहारवर्णनमयः सर्गोयमन्त्योगमत् ॥८१

इति श्रीमदखिलमहीमण्डलदेदीप्यमानयशोगानजगद्गुरु-श्रीजयदेवगोस्वामीवंशोद्भवश्रीभागवतचन्द्रमाश्रीनन्दकिशोर-गोस्वोमीप्रभुप्रणीतं श्रीशुकदूतमहाकाव्यं समाप्तम् ।

श्री गोविन्द के मुनीन्द्र वंदित युगल चरणकमल के आसव से उन्मत्त सम्पूर्ण चित्त वृत्तियों को सुख देने वाले भक्तों के सङ्ग से उदय हुए आचार्य श्री नंदकिशोर चंद्र गोस्वामी रचित श्री-शुकदूत महाकाव्य में श्री राधा-कृष्ण विहार वर्णनमय यह अन्तिम सर्ग समाप्त हुआ ॥८१॥

ज्येष्ठ मास पूरण तिथि शुक्ल पक्ष गुरुवार ।
कृष्णदास टीका लिखी गौर चरण बलिहार ॥
सम्बत् सत्रह सौ सुखद विक्रम मंगल रूप ।
जलयात्रा शुभ पर्व में विरचित अमृत कूप ॥

गौड़ीयग्रन्थगौरव:—
सानुवाद संस्कृत भाषा में प्रकाशित—

१—अर्च्चाविधि: (संगृहीत) ।)
२—प्रेमसम्पुट: (श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्तीकृत) ।)
३—भक्तिरसतरङ्गिणी (श्रीनारायणभट्टजीकृता) १)
४—गोवर्द्धनशतक (श्रीविष्णुस्वामी संप्रदायाचार्य्य श्रीकेशवाचार्य्य कृत) ।)
५—चैतन्यचन्द्रामृत और सङ्गीतमाधव (श्रीप्रबोधानन्द-सरस्वतीजी कृत) १।)
६—नित्यक्रियापद्धति: (संगृहीत) ॥=)
७—व्रजभक्तिविलास: (श्रीनारायणभट्टजी कृत) २॥)
८—निकुञ्जरहस्यस्तव: (श्रीमद्रूपगोस्वामी कृत))
९—महाप्रभुग्रन्थावली (श्रीमन्महाप्रभुमुखपद्मविनिर्गता) ।-)
१०—स्मरणमङ्गलस्त्रोत्रम् (श्रीमद्रूपगोस्वामिजीकृत) ॥=)
११—नवरत्नम् (श्रीहरिरामव्यासजी कृत) =)।
१२—गोविन्दभाष्यम् (श्रीपादबलदेवजी कृत) ४॥)
१३—ग्रन्थरत्नपंचकम् १॥)
[१] श्रीकृष्णलीलास्तव: (श्रीपादसनातनगोस्वामि कृत:)
[२] श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका (श्री श्रीरूपगोस्वामिजीकृता)
[३] श्रीगौरगणोद्देशदीपिका (श्रीकविकर्णपूरजी कृता)
[४] श्रीव्रजविलासस्तव: (श्रीश्रीरघुनाथदासगोस्वामिजी कृत)
[५] श्रीसङ्कल्पकल्पद्रुम: (श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीजी कृत)
१४—श्रीमहामन्त्रव्याख्याष्टकम् (सञ्चित) ।)
१५—ग्रन्थरत्नषट्कम् (सञ्चित) ॥)
१६—श्रीगोवर्द्धनभट्टग्रन्थावली ॥=)
१७—सहस्रनामत्रयम् अथवा ग्रन्थरत्ननवकम् ॥)
१८—श्रीनारायणभट्टचरितामृतम् (श्रीजानकीप्रसादगोस्वामिकृत) ॥
१९—उद्धवसन्देश: (श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचित:) ।=)
२०—हंसदूतम् (श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचितम्) २॥)
२१—श्रीमथुरामाहात्म्यम् (श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचितम्) ॥=)

२२–मुरलीमाधुरी (संचित)
२३–राधाकृपाकटाक्षस्तोत्रम्
२४–श्रीपदांकदूतम् (श्रीकृष्णदेवजी कृत)
२५–श्रीश्रीशुकदूतमहाकाव्यम् (श्रीनन्दकिशोर गो० कृ

ब्रजभाषा में प्रकाशित प्राचीन पुस्तकें

१. गदाधरभट्टजी की वाणी (राधेश्याम गुप्ताजी से
२. सूरदासमदनमोहनजी की वाणी ,,
३. माधुरीवाणी (माधुरीजी कृता)
४. वल्लभरसिकजी की वाणी
५. गीतगोविन्दपद (श्रीरामरायजी कृत)
६. गीतगोविन्द (रसजानिवैष्णवदासजी कृ
७. हरिलीला (ब्रह्मगोपालजी कृता)
८. श्रीचैतन्यचरितामृत (श्रीसुबलश्यामजी कृत)
९. वैष्णववन्दना (भक्तनामावली) (वृन्दावनदास
१०. विलापकुसुमाञ्जलि (वृन्दावनदासजी कृ
११. प्रेमभक्तिचन्द्रिका (वृन्दावनदासजी कृता
१२. प्रियादासजी की ग्रन्थावली
१३. गौराङ्गभूषणमञ्जावली (गौरगनदासजी
१४. राधारमणरससागर (मनोहरजी कृ
१५. श्रीरामहरिग्रन्थावली (श्रीरामहरिजी कृत
१६. भाषाभागवत (दशम, एकादश, द्वादश) (श्रीर
वैष्णवदास
१७. श्रीनरोत्तमठाकुरमहाशय की प्रार्थना
१८. संप्रदायबोधनी (कविवरमनोहरजीकृता)
१९. ब्रजमण्डलदर्शन (परिक्रमा)
२०. भाषाभागवत (महात्म्य, प्रथम, द्वितीय स्कंध

पुस्तक मिलने का पता तथा वी० पी० आदि भेजने

(१) राधेश्याम गुप्ता बुकसेलर, पुरानाशहर,

मुद्रक—रमनलाल बंसल, पुष्पराज प्रेस, म